

महाभारत

विराटपर्व

[मूल संस्कृत श्लोक और हिन्दी अर्थ सहित]

प्रधान सम्पादक

डॉ. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहायक सम्पादक

श्री श्रुतिशील शर्मा, एम. ए., शास्त्री

शिक्षामंत्रालय भारत सरकारके द्वारा दिए
गए आर्थिक अनुदानसे मुद्रित

स्वाध्याय  मण्डल

पारडी [जिला बलसाड]

संवत् २०२६, शाक १८९१, सन् १९६९

प्रथम आवृत्ति

प्रकाशक-मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर,
स्वाध्याय मंडल, भारत-मुद्रणालय,
पोस्ट- ‘स्वाध्याय मंडल (पारडी)’
पारडी [जि. बलसाड]

भूमिका

महाभारतके अट्ठारह पर्वोंमें इस पर्वका स्थान चौथा है। इस पर्वमें अज्ञातवासका तेरहवां वर्ष पाण्डवोंने विराटके पास छद्मवेश बनाकर किस तरह बिताया, इस सबका बडा ही मनोहारी वर्णन है। पाण्डवोंके विराटगृहमें वासका वर्णन इस पर्वमें किया गया है, इसीलिए इस पर्वका नाम विराट-पर्व है।

इस पर्वके प्रारंभमें ही जनमेजयका वैशम्पायनसे यह प्रश्न "मेरे परदादा पाण्डवोंने दुर्योधनके भयसे व्याकुल होकर विराटनगरमें अपना अज्ञातवास किस तरह बिताया?" इस पर्वके वस्तुतत्त्व की ओर संकेत करता है।

इस पर्वमें भी अनेक उपपर्व हैं, जिनमें पहला उपपर्व वैराटपर्व है। इस उपपर्वमें अपने अज्ञातवासके बारेमें पांचों पाण्डवों और द्रौपदीका परस्पर विचार विमर्श करना, अर्जुन-का अज्ञातवासके लिए योग्य पांचाल, चेदि, मत्स्य आदि अनेकों राष्ट्रोंका वर्णन करना, वर्णन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिरका मत्स्यदेशके विराटनगरको पसन्द करना, अर्जुनके पूछने पर युधिष्ठिरका कंक ब्राह्मणके रूपमें विराटराजाके पास रहने की बात कहना, भीमका बल्लव नाम धरकर रसोइया बनकर जानेकी, अर्जुनके द्वारा नपुंसकका रूप धारणकर बृहन्नडाके नामसे रहनेकी, ग्रंथिकके नामसे अश्वपाल बनकर नकुलके रहनेकी, सहदेवका तन्तिपालके छद्मनामसे तथा द्रौपदीका सैरन्ध्रीके नामसे रानी सुदेष्णाकी दासी बनने की बातोंका वर्णन है।

इसी पर्वमें विराटनगर जानेसे पूर्व पुरोहित धौम्यका पाण्ड-वोंको राजाके सामने उचित व्यवहारका उपदेश देना, विराट-नगरके समीप पहुंचकर पाण्डवोंका अपने शस्त्रास्त्र एक शमी वृक्षपर रख देना, तथा राजा विराटके दरबारमें कंकके रूपमें युधिष्ठिरके, बल्लवनामक रसोइयेके रूपमें भीमके, बृहन्नडाके रूपमें अर्जुनके, ग्रंथिकके रूपमें नकुलके, तन्तिपाल के रूपमें सहदेवके और सैरन्ध्रीके रूपमें द्रौपदीके नियुक्त होनेका वर्णन है।

×

इसके बादके उपपर्व कीचकवधमें विराटराजपत्नी सुदेष्णाके भाई कीचकका द्रौपदीको देखकर काममोहित हो जाना, सैरन्ध्रीको फुसलाने की चेष्टा, सुदेष्णाका द्रौपदीको सुरा लाने के बहाने कीचकके भवन भेजना, वहाँ कीचकके द्वारा द्रौपदी पर बलात्कार करनेकी चेष्टा, सूर्यद्वारा द्रौपदी की रक्षा, भयभीत होकर द्रौपदीका विराटराजकी शरणमें जाना, भरे दरबारमें कीचकका द्रौपदीको लात मारना, द्रौपदीका रातके समय भीमके पास जाकर दुखडा रोना, भीमके द्वारा कीचकको मारनेकी प्रतिज्ञा, रात्रीके अन्धकारमें विराटकी नृत्यशालामें अकेले आए हुए कीचकका भीम द्वारा वध, कीचकके भाइयोंके द्वारा कीचकके साथ जला डालनेके लिए द्रौपदी को भी बांधकर ले जाना, भीमके द्वारा उपकीचकोंका संहार तथा द्रौपदीकी मुक्तिका वर्णन है।

इसके बाद कौरवों द्वारा पाण्डवोंका पता लगानेका प्रयास, उनका असफल होना, भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, कर्ण आदिकी मंत्रणा, त्रिगर्तराज सुशर्माका कीचकवधका समाचार दुर्योधन-को सुनाकर मत्स्यदेशकी सम्पत्तिको लूट लेनेका परामर्श देना, सबकी स्वीकृति पर सुशर्माका मत्स्य पर आक्रमण करना, विराटका पाण्डवोंकी सहायतासे सुशर्माके साथ युद्ध करना, द्वैरथ युद्धमें सुशर्माका विराटको बन्दी बनाना, युधिष्ठिरके कहने पर भीमका विराटको छुडाना, दुर्योधन आदि कौरवोंका विराटके गोधनको हर ले जाना, बृहन्नडाको सारथि बनाकर विराटपुत्र उत्तरका कौरवोंसे लडनेके लिए जाना, कौर-वोंकी सेना देखकर भयभीत होकर उत्तरका भागना, बृहन्नडाका उसे आश्वासन देना, तथा अपना तथा अपने भाइयोंका वास्तविक परिचय देना, उत्तरको सारथि बनाकर अर्जुनका कौरवोंसे युद्ध, भीष्म, द्रोण आदि महारथियोंकी पराजय, अन्तमें सम्मोहनास्त्रके द्वारा अर्जुनका सभी कौरवोंको मूर्च्छित करके गोधनको छुडा लेना आदि बातोंका वर्णन है।

अन्तिम पर्व वैवाहिक पर्वमें सुशर्माको जीतकर विराटके लौटने पर उस सब समाचारका पता चलना, उत्तरके विजयका समाचार सुनकर विराटका खुश होकर कंकके मना

करने पर भी जुआ खेलना, विराटके द्वारा उत्तर की प्रशंसा, कंकके द्वारा बृहन्नडा की प्रशंसा, विराटका नाराज होकर कंकको पांसे फेंककर मारना, कंककी नाकसे रुधिरका प्रवाह, उत्तरका आना, कंकसे क्षमा याचना, अगले दिन पाण्डवोंका अपने अपने स्वरूपमें आकर सिंहासनों पर बैठना, वास्तविकता ज्ञात होने पर विराटकी पाण्डवोंसे क्षमा याचना, विराटका अर्जुनके सामने अपनी पुत्री उत्तराके विवाहका प्रस्ताव रखना, अर्जुनका उत्तराको अपने पुत्र अभिमन्युकी पत्नीके रूपमें स्वीकार करना, श्रीकृष्ण आदि यादववीरोंके सामने अभिमन्यु–उत्तराका विवाह आदि बातोंका वर्णन है। इसी पर्वके साथ ही विराटपर्व समाप्त होता है।

आभार–प्रदर्शन

महाभारतका यह चौथा पर्व विराटपर्व पाठकोंके सम्मुख प्रस्तुत है। इस भागके प्रकाशन-कार्यमें हमें सबसे बडी सहायता आधुनिक भामाशाहके नामसे प्रसिद्ध श्री सेठ जुगुलकिशोरजी बिरलाके सुयोग्य भ्रातुष्पुत्र श्री सेठ गंगाप्रसादजी बिरलासे मिली है। उन्होंने इस पर्वके प्रकाशनके लिए अपनी मिलसे हमें कम दामोंपर कागज दिलवाकर हमारी जो सहायता की, और हमारा जो उत्साह बढाया, उसके लिए हम श्री सेठजीके सदा आभारी रहेंगे। इनके अतिरिक्त भी जिन महानुभावोंने ज्ञात या अज्ञातरूपसे इस कार्यमें हमें अपना सहयोग दिया है, उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं ॥

सम्पादकमण्डल

विराटपर्वकी विषयसूची

विराट पर्व



महाभारत

विराटपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

ॐ गणोंके ईशके लिये नमस्कार हो ।

ॐ नरोत्तम नारायण, नर और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकी घोषणा करनी चाहिये ॥

: १ :

जनमेजय उवाच

कथं विराटनगरे मम पूर्वपितामहाः ।
अज्ञातवासमुषिता दुर्योधनभयार्दिताः ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे ब्राह्मणश्रेष्ठ वैशम्पायन महामुने ! मेरे पितामहके पिता, पाण्डव लोग, दुर्योधनके भयसे पीडित होकर विराट नगरमें छिप कर कैसे रहे ? ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा तु स वराँल्लब्ध्वा धर्माद्धर्मभृतां वरः।
गत्वाश्रमं ब्राह्मणेभ्य आचख्यौ सर्वमेव तत् ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– पूर्वज वह धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर धर्मसे वरदानोंको पाकर आश्रममें आये, और ब्राह्मणोंको सब कथा उन्होंने कह सुनाई ॥ २ ॥

कथयित्वा तु तत्सर्वं ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः।
अरणीसहितं तस्मै ब्राह्मणाय न्यवेदयत् ॥ ३ ॥

और ब्राह्मणोंसे वह सब वृत्तान्त कहकर, महाराज युधिष्ठिरने वह अरणी ब्राह्मणको दे दी ॥३॥

ततो युधिष्ठिरो राजा धर्मपुत्रो महामनाः।
संनिवर्त्यानुजान्सर्वानिति होवाच भारत ॥ ४ ॥

हे भारत ! फिर महामनस्वी धर्मके पुत्र राजा युधिष्ठिरने सब भाइयोंको बुलाकर इसप्रकार कहा ॥ ४ ॥

द्वादशेमानि वर्षाणि राष्ट्राद्विप्रोषिता वयम्।
त्रयोदशोऽयं संप्राप्तः कृच्छ्रः परमदुर्वसः ॥ ५ ॥

हम लोगोंको राज्यसे निकले हुए बारह वर्ष बीत गये, अब यह तेरहवां वर्ष आया है, इस बारह वर्षके समयमें हम लोगोंने अनेक दुःख भोगे ॥ ५ ॥

स साधु कौंतेय इतो वासमर्जुन रोचय।
यत्रेमा वसतीः सर्वा वसेमाविदिताः परैः ॥ ६ ॥

इस तेरहवें वर्षमें वहाँ निवास करना चाहिये जहाँ कोई शत्रु न जान सके। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! तुम उस स्थानको पसन्द करके हमको बतलाओ ॥ ६ ॥

अर्जुन उवाच

तस्यैव वरदानेन धर्मस्य मनुजाधिप।
अज्ञाता विचरिष्यामो नराणां भरतर्षभ ॥ ७ ॥

अर्जुन बोले– हे पृथ्वीनाथ ! हे भरतकुलमें श्रेष्ठ ! उसी धर्मके वरदानसे हम लोग मनुष्यों द्वारा न जाने जाते हुए ही विचरेंगे ॥ ७ ॥

किं तु वासाय राष्ट्राणि कीर्तयिष्यामि कानिचित्।
रमणीयानि गुप्तानि तेषां किंचित्स्म रोचय ॥ ८ ॥

तथापि मैं आपके रहने योग्य राष्ट्रोंका वर्णन करता हूं। ये सब स्थान रमणीय और गुप्त हैं इनमेंसे किसीको पसन्द कीजिए ॥ ८ ॥

सन्ति रम्या जनपदा बह्वन्नाः परितः कुरून् ।
पाञ्चालाश्चेदिमत्स्याश्च शूरसेनाः पटच्चराः ।
दशार्णा नवराष्ट्रं च मल्लाः शाल्वा युगंधराः ॥ ९ ॥

कुरु राज्योंके चारों ओर और भी ऐसे रमणीय राज्य हैं, जिनमें पर्याप्त अन्न और जल मिल सकते हैं। पाञ्चाल, चेदी, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगन्धर ॥ ९ ॥

एतेषां कतमो राजन्निवासस्तव रोचते ।
वत्स्यामो यत्र राजेन्द्र संवत्सरमिमं वयम् ॥ १० ॥

हे राजन् ! इन राज्यमेंसे किसमें रहना आपको पसन्द है? हे राजेन्द्र! जहां हम लोग एक वर्ष तक रह सकें ॥ १० ॥

युधिष्ठिर उवाच

एवमेतन्महाबाहो यथा स भगवान्प्रभुः ।
अब्रवीत्सर्वभूतेशस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाबाहो अर्जुन ! जो कुछ प्राणिमात्रके स्वामी भगवान् धर्मने हमसे कहा था वह सब ठीक ही है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

अवश्यं त्वेव वासार्थं रमणीयं शिवं सुखम् ।
संमन्त्र्य सहितैः सर्वैर्द्रष्टव्यमकुतोभयम् ॥ १२ ॥

हम सब लोगोंको उचित है, कि परस्पर सम्मति करके रहनेके लिए किसी रमणीय, कल्याणकारी, सुखकारी तथा भयरहित स्थानको देखें ॥ १२ ॥

मत्स्यो विराटो बलवानभिरक्षेत्स पाण्डवान् ।
धर्मशीलो वदान्यश्च वृद्धश्च सुमहाधनः ॥ १३ ॥

मत्स्य देशका राजा विराट, धार्मिक, शक्तिशाली, उदार, धनवान् और वृद्ध है, वह पाण्डवोंका रक्षण करेगा ॥ १३ ॥

विराटनगरे तात संवत्सरमिमं वयम् ।
कुर्वन्तस्तस्य कर्माणि विहरिष्याम भारत ॥ १४ ॥

इसलिये, हे अर्जुन ! हम लोग एक वर्ष तक उसीके यथायोग्य कार्य करते हुए विराटनगरमें विहार करेंगे ॥ १४ ॥

यानि यानि च कर्माणि तस्य शक्ष्यामहे वयम् ।
कर्तुं यो यत्स तत्कर्म ब्रवीतु कुरुनन्दनाः ॥ १५ ॥

हम उस विराटराजके जो जो कार्य कर सकेंगे, और तुममेंसे जो जो कुछ कार्य कर सकता है उसे, हे कुरुनन्दनो ! कहो ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच

नरदेव! कथं कर्म राष्ट्रे तस्य करिष्यसि।
विराटनृपतेः साधो! रंस्यसे केन कर्मणा ॥ १६ ॥

अर्जुन बोले– हे नरनाथ! आप किस प्रकार उसके राष्ट्रमें काम करेंगे? हे महाराज! विराट राजाका आप किस कार्य द्वारा मन बहलायेंगे ॥ १६ ॥

मृदुर्वदान्यो ह्रीमांश्च धार्मिकः सत्यविक्रमः।
राजंस्त्वमापदा क्लिष्टः किं करिष्यसि पाण्डव ॥ १७ ॥

महाराज! आप बडे कोमल एवं उदार हैं, लज्जाशील, धर्मपरायण तथा सत्यपराक्रमी हैं। हे पांडव राजन्! आप आपत्तिमें फंस कर, क्या कार्य सम्हालेंगे ॥ १७ ॥

न दुःखमुचितं किंचिद्राजन्वेद यथा जनः।
स इमामापदं प्राप्य कथं घोरां तरिष्यसि ॥ १८ ॥

जिस प्रकार साधारण मनुष्य आपत्तियोंको सह सकता है, वैसे आप नहीं सह सकते; आप महाराज होकर इस घोर आपत्तिमें पडे हैं, आप किस प्रकार इस घोर दुःखसे पार होंगे ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

शृणुध्वं यत्करिष्यामि कर्म वै कुरुनन्दनाः।
विराटमनुसंप्राप्य राजानं पुरुषर्षभम् ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे कुरुनन्दन पाण्डवो! मैं पुरुषश्रेष्ठ राजा विराटके यहां रहकर जो कर्म करूंगा, तुम लोग उसे सुनो ॥ १९ ॥

सभास्तारो भविष्यामि तस्य राज्ञो महात्मनः।
कङ्को नाम द्विजो भूत्वा मताक्षः प्रियदेविता ॥ २० ॥

मैं उस महात्मा राजाका सभासद् बनूंगा। मैं अपनी जाति ब्राह्मण, नाम कङ्क, और कर्म जुआ खिलानेका बताऊंगा ॥ २० ॥

वैडूर्यान्काञ्चनान्दान्तान्फलैर्ज्योतीरसैः सह।
कृष्णाक्षाँल्लोहिताक्षांश्च निर्वर्त्स्यामि मनोरमान् ॥ २१ ॥

पन्नेसे जडे हुए, सोनेके तथा सफेद हाथीदांतके बने हुए काले और लाल चिन्होंवाले मनोहर पांसोंसे अपना निर्वाह करूंगा ॥ २१ ॥

आसं युधिष्ठिरस्याहं पुरा प्राणसमः सखा।
इति वक्ष्यामि राजानं यदि मामनुयोक्ष्यते ॥ २२ ॥

यदि राजा विराट मुझसे पूछेंगे तो मैं राजासे कहूंगा कि मैं पहले राजा युधिष्ठिरका प्राणोंके समान प्रिय मित्र था ॥ २२ ॥

इत्येतद्वो मयाख्यातं विहरिष्याम्यहं यथा ।
वृकोदर विराटे त्वं रंस्यसे केन कर्मणा ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ २३ ॥

मैं जिस प्रकार रहूंगा आपलोगोंसे कह दिया । हे भीम ! अब विराटनगरमें तुम क्या काम करके निवास करोगे ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ॥ १ ॥ २३ ॥

: २ :

भीमसेन उवाच

पौरोगवो ब्रुवाणोऽहं बल्लवो नाम नामतः ।
उपस्थास्यामि राजानं विराटमिति मे मतिः ॥ १ ॥

भीमसेन बोले– हे भारत ! मेरी समझमें यह आता है कि राजा विराटके यहां जाकर मैं कहूं, कि मैं भोजन बनानेका कर्म करता हूं, मेरा नाम पौरोगव बल्लव है ॥ १ ॥

सूपानस्य करिष्यामि कुशलोऽस्मि महानसे ।
कृतपूर्वाणियैरस्य व्यञ्जनानिसुशिक्षितैः
तान्यप्यभिभविष्यामि प्रीतिं संजनयन्नहम् ॥ २ ॥

मैं बहुत अच्छा भोजन बनाना जानता हूं, राजाका भोजन बनाऊंगा, और जो उनके यहां पहिलेसे शिक्षित लोग भोजन बनानेवाले हैं, उनके द्वारा बनाए गए व्यंजनोंसे भी अच्छा भोजन बनाऊंगा और मैं उनको प्रसन्न करूंगा ॥ २ ॥

आहरिष्यामि दारूणां निचयान्महतोऽपि च ।
तत्प्रेक्ष्य विपुलं कर्म राजा प्रीतो भविष्यति ॥ ३ ॥

मैं बडी बडी लकडियोंके गट्ठरको सिरपर उठाकर चौकेमें डाल दूंगा, मेरे इस घोर कर्मको देखकर राजा बहुत प्रसन्न होंगे ॥ ३ ॥

द्विपा वा बलिनो राजन्वृषभा वा महाबलाः ।
विनिग्राह्या यदि मया निग्रहीष्यामि तानपि ॥ ४ ॥

हे राजन् ! यदि बलवान् हाथी अथवा बलशाली सांडोंको मुझे पकडना होगा तो उसको मैं पकड लिया करूंगा ॥ ४ ॥

ये च केचिन्नियोत्स्यन्ति समाजेषु नियोधकाः ।
तानहं निहनिष्यामि प्रीतिं तस्य विवर्धयन् ॥ ५ ॥

जो योद्धा समाजमें युद्ध करनेकी इच्छा करेंगे, उन्हें भी मैं राजाके प्रेमको बढाते हुए मारूंगा ॥ ५ ॥

न त्वेतान्युध्यमानान्वै हानिष्यामि कथंचन ।
तथैतान्पातयिष्यामि यथा यास्यन्ति न क्षयम् ॥ ६ ॥

मुझसे जो लडनेको आवेगा उसको मैं युद्धमें कभी नहीं मारूंगा, परन्तु उसको मैं इस प्रकार पटकूंगा कि जिसमें वह न मरे, ॥ ६ ॥

आरालिको गोविकर्ता सूपकर्ता नियोधकः ।
आसं युधिष्ठिरस्याहमिति वक्ष्यामि पृच्छतः ॥ ७ ॥

यदि मुझसे कोई पूछेगा तो मैं कहूंगा, कि मैं राजा युधिष्ठिरके यहां आरालिक (अन्न पकानेवाला) गोविकर्ता (तैलान्न बनानेवाला) सूपकर्ता (साग पकानेवाला) और योद्धा था ॥ ७ ॥

आत्मानमात्मना रक्षंश्चरिष्यामि विशां पते ।
इत्येतत्प्रतिजानामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ ८ ॥

मैं अपनी रक्षा आप ही करता हुआ विचरूंगा। हे पृथ्वीनाथ! मैंने जो कर्म आपसे कहे वही करता हुआ मैं विहार करूंगा, यह मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यमग्निर्ब्राह्मणो भूत्वा समागच्छन्नृणां वरम् ।
दिधक्षुः खाण्डवं दावं दाशार्हसहितं पुरा ॥ ९ ॥
महाबलं महाबाहुमजितं कुरुनन्दनम् ।
सोऽयं किं कर्म कौन्तेयः करिष्यति धनंजयः ॥ १० ॥

युधिष्ठिर बोले– श्रीकृष्ण सहित जिस महाबाहु तथा न जीते जानेवाले शक्तिशाली अर्जुनके पास ब्राह्मणवेषधारी अग्नि खाण्डव वनको दग्ध करनेकी इच्छासे आये थे, वह कुन्तीनन्दन धनंजय अर्जुन क्या कर्म करेंगे ? ॥ ९–१० ॥

योऽयमासाद्य तं दावं तर्पयामास पावकम् ।
विजित्यैकरथेनेन्द्रं हत्वा पन्नगराक्षसान्
श्रेष्ठः प्रतियुधां नाम सोऽर्जुनः किं करिष्यति ॥ ११ ॥

जिसने अपने बलसे एक रथपर चढकर अनेक राक्षस और सर्पोंको मारकर इन्द्रको जीता था, और खाण्डववनमें जाकर अग्निको तृप्त किया था, जो प्रतियोद्धाओंमें श्रेष्ठ हैं, वह अर्जुन अब क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥

सूर्यः प्रतपतां श्रेष्ठो द्विपदां ब्राह्मणो वरः ।
आशीविषश्च सर्पाणामग्निस्तेजस्विनां वरः ॥ १२ ॥

जैसे तपनेवालोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं, पुरुषोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, जैसे सांपोंमें आशीविष श्रेष्ठ है, तेजस्वियोंमें अग्नि श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

आयुधानां वरो वज्रः ककुद्मी च गवां वरः ।
ह्रदानामुदधिः श्रेष्ठः पर्जन्यो वर्षतां वरः

शस्त्रोंमें वज्र श्रेष्ठ है, बैलोंमें सांड श्रेष्ठ है, तालाबोंमें समुद्र श्रेष्ठ
श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्रश्च नागानां हस्तिष्वैरावतो वरः ।
पुत्रः प्रियाणामधिको भार्या च सुहृदां वरा ॥ १४ ॥

सर्पोंमें धृतराष्ट्र श्रेष्ठ है, हाथियोंमें ऐरावत श्रेष्ठ है, प्रियजनोंमें पुत्र श्रेष्ठ और जैसे सब मित्रोंमें स्त्री श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

यथैतानि विशिष्टानि जात्यां जात्यां वृकोदर ।
एवं युवा गुडाकेशः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १५ ॥

हे भीमसेन ! जिस प्रकार प्रत्येक जातिके अन्दर ये उपर्युक्त श्रेष्ठ हैं वैसे ही सब धनुष-धारियोंमें युवक अर्जुन श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

सोऽयमिन्द्रादनवरो वासुदेवाच्च भारत ।
गाण्डीवधन्वा श्वेताश्वो बीभत्सुः किं करिष्यति ॥ १६ ॥

हे भारत ! यह इन्द्र और कृष्णके समान बली, गाण्डीवधनुषधारी सफेद घोडेवाले अर्जुन क्या करेंगे ? ॥ १६ ॥

उषित्वा पञ्च वर्षाणि सहस्राक्षस्य वेश्मनि ।
दिव्यान्यस्त्राण्यवाप्तानि देवरूपेण भास्वता ॥ १७ ॥

जिसने पांच वर्षतक इन्द्रके घरमें रहकर अपने तेजस्वी देवरूपसे उन दिव्य शस्त्रोंको प्राप्त किया ॥ १७ ॥

यं मन्ये द्वादशं रुद्रमादित्यानां त्रयोदशम् ।
यस्य बाहू समौ दीर्घौ ज्याघातकठिनत्वचौ ।
दक्षिणे चैव सव्ये च गवामिव वहः कृतः ॥ १८ ॥

जिस अर्जुनको मैं बारहवां रुद्र, तेरहवां आदित्य मानता हूँ, जिसके दोनों हाथ विशाल और समान हैं, जिसके दोनों हाथोंकी त्वचा धनुष खींचनेसे कठोर होगई है, जिसके दाहिने और बांए हाथ धनुष खींचनेसे बैलके कन्धेके समान कठोर होगये हैं, ॥ १८ ॥

हिमवानिव शैलानां समुद्रः सरितामिव ।
त्रिदशानां यथा शक्रो वसूनामिव हव्यवाट् ॥ १९ ॥

जैसे पर्वतोंमें हिमाचल श्रेष्ठ है, नदियोंमें समुद्र श्रेष्ठ है, देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, वसुओंमें हवि लेजानेवाला अग्नि श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥

मृगाणामिव शार्दूलो गरुडः पततामिव।
वरः संनह्यमानानामर्जुनः किं करिष्यति ॥ २० ॥

जैसे मृगोंमें शार्दूल श्रेष्ठ है, जैसे पक्षियोंमें गरुड उत्तम हैं, वैसेही शस्त्रधारियोंमें अर्जुन श्रेष्ठ हैं, वह अब क्या करेंगे ? ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

प्रतिज्ञां षण्ढकोऽस्मीति करिष्यामि महीपते।
ज्याघातौ हि महान्तौ मे संवर्तुं नृप दुष्करौ ॥ २१ ॥

अर्जुन बोले– हे पृथ्वीनाथ ! मैं यही प्रतिज्ञा करूंगा कि मैं नपुंसक हूं, हे राजन ! धनुषके प्रत्यञ्चासे जो मेरी भुजा कठोर होगई हैं उनको छिपाना बडा कठिन कार्य है ॥ २१ ॥

कर्णयोः प्रतिमुच्याहं कुंडले ज्वलनोपमे।
वेणीकृतशिरा राजन्नाम्ना चैव बृहन्नडा ॥ २२ ॥

मैं अग्निके समान प्रकाशमान कुण्डलोंको कानोंमें पहनकर सिरपर जूडा बांधकर मैं अपना नाम ' बृहन्नडा ' प्रसिद्ध करूंगा ॥ २२ ॥

पठन्नाख्यायिकां नाम स्त्रीभावेन पुनः पुनः।
रमयिष्ये महीपालमन्यांश्चान्तःपुरे जनान् ॥ २३ ॥

मैं स्त्री बनके राजाको और रनिवासमें रहनेवाले अन्य लोगोंको कहानी कहकर प्रसन्न करता हुआ निवास करूंगा ॥ २३ ॥

गीतं नृत्तं विचित्रं च वादित्रं विविधं तथा।
शिक्षयिष्याम्यहं राजन्विराटभवने स्त्रियः ॥ २४ ॥

हे राजन् ! मैं राजा विराटके महलमें स्त्रियोंको गाना, नाचना और अनेक प्रकारके विचित्र विचित्र बाजे सिखलाऊंगा ॥ २४ ॥

प्रजानां समुदाचारं बहु कर्मकृतं वदन्।
छादयिष्यामि कौन्तेय माययात्मानमात्मना ॥ २५ ॥

हे युधिष्ठिर ! प्रजाओंको सद्व्यवहारकी शिक्षा देकर और उनके द्वारा किए गए कामोंकी प्रशंसा करके मैं कपट वेषसे अपने आपको छिपा लूंगा ॥ २५ ॥

युधिष्ठिरस्य गेहेऽस्मि द्रौपद्याः परिचारिका।
उषितास्मीति वक्ष्यामि पृष्टो राज्ञा च भारत ॥ २६ ॥

हे भारत ! यदि राजा विराट मुझसे पूछेंगे तो मैं यही कहूंगा, कि मैं महाराज युधिष्ठिरके भवनमें द्रौपदीकी दासीके रूपमें रही थी ॥ २६ ॥

एतेन विधिना छन्नः कृतकेन यथा नलः ।
विहरिष्यामि राजेन्द्र विराटभवने सुखम् ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ५० ॥

हे राजेन्द्र ! इस रीतिसे छिपकर राजा विराटके घरमें सुखसे रहूंगा, जैसे राजा नलने कपट बेषसे सुख पाया था । ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ ५० ॥

: ३ :

युधिष्ठिर उवाच

किं त्वं नकुल कुर्वाणस्तत्र तात चरिष्यसि ।
सुकुमारश्च शूरश्च दर्शनीयः सुखोचितः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे प्यारे नकुल ! तुम सुकुमार, शूरवीर देखने योग्य और सुख भोगने योग्य हो, कौनसा कर्म करते हुए तुम वहां विचरोगे ? ॥ १ ॥

नकुल उवाच

अश्वबन्धो भविष्यामि विराटनृपतेरहम् ।
ग्रन्थिको नाम नाम्नाहं कर्मैतत्सुप्रियं मम ॥ २ ॥

नकुल बोले– हे महाराज ! मैं ग्रंथिकके नामसे राजा विराटके घोडोंका साईस बनूंगा, यह काम मुझे बहुत प्रिय है ॥ २ ॥

कुशलोऽस्म्यश्वशिक्षायां तथैवाश्वचिकित्सिते ।
प्रियाश्च सततं मेऽश्वाः कुरुराज यथा तव ॥ ३ ॥

मैं घोडोंको सिखानेमें और घोडोंकी औषधि करनेमें बहुत चतुर हूं, हे कुरुनाथ ! जैसे आपको घोडे प्यारे हैं, ऐसेही मुझेभी घोडे प्यारे है ॥ ३ ॥

ये मामामन्त्रयिष्यन्ति विराटनगरे जनाः ।
तेभ्य एवं प्रवक्ष्यामि विहरिष्याम्यहं यथा ॥ ४ ॥

हे महाराज ! विराट नगरमें जो मुझे बुलाकर पूछेगा उससे मैं यही कहूंगा और मैं सुखसे विराट नगरमें रहूंगा ॥ ४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सहदेव कथं तस्य समीपे विहरिष्यसि ।
किं वा त्वं तात कुर्वाणः प्रच्छन्नो विहरिष्यसि ॥ ५ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे सहदेव ! राजा विराटके पास रहकर और अपने आपको छिपाकर कौनसे कार्य करते हुए निवास करोगे ? ॥ ५ ॥

सहदेव उवाच

गोसंख्याता भविष्यामि विराटस्य महीपतेः।
प्रतिषेद्धा च दोग्धा च संख्याने कुशलो गवाम् ॥ ६ ॥

सहदेव बोले– हे महाराज ! मैं राजा विराटकी गौओंको गिनने, रोकने, और दुहनेवाला बनूंगा, मैं गौवोंके गिननेमें निपुण हूं ॥ ६ ॥

तन्तिपाल इति ख्यातो नाम्ना विदितमस्तु ते।
निपुणं च चरिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ७ ॥

आप अपने मानसिक चिन्तारूपी ज्वरको दूर कीजिये, मैं सुखसे वहां रहूंगा, मैं वहां तन्तिपालके नामसे प्रसिद्ध होकर रहूंगा, यह बात आप जान लें ॥ ७ ॥

अहं हि भवता गोषु सततं प्रकृतः पुरा।
तत्र मे कौशलं कर्म अवबुद्धं विशां पते ॥ ८ ॥

हे महाराज ! प्रथम आपने बहुत कालतक मुझे गौओंकी रक्षा करनेकी आज्ञा दी थी, तभी मैंने इस विषयमें बहुतसे कर्म कुशलतासे सीख लिये थे ॥ ८ ॥

लक्षणं चरितं चापि गवां यच्चापि मंगलम्।
तत्सर्वं मे सुविदितमन्यच्चापि महीपते ॥ ९ ॥

हे राजन्! गौवोंके लक्षण, उनके स्वभाव और जो उनके मङ्गल चिन्ह हैं उन सबको तथा अन्य भी बातोंको मैं भली भांति जानता हूं ॥ ९ ॥

वृषभानपि जानामि राजन्पूजितलक्षणान्।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १० ॥

उन बैलोंके उत्तम लक्षणोंको भी मैं जानता हूं, जिनके मूत्रको सूंघ कर वंध्याके भी पुत्र उत्पन्न हो जाता है ॥ १० ॥

सोऽहमेवं चरिष्यामि प्रीतिरत्र हि मे सदा।
न च मां वेत्स्यति परस्तत्ते रोचतु पार्थिव ॥ ११ ॥

मैं इस प्रकारसे राजा विराटको प्रसन्न करूंगा, इस कार्यमें मुझे सदा प्रसन्नता भी रही है। और मुझे वहां कोई भी नहीं जानेगा आपको भी यह पसंद होगा ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

इयं तु नः प्रिया भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले– यह हमारी प्राणोंसे भी प्यारी स्त्री, जो माताके समान पालनेके योग्य और बडी बहनके तुल्य पूजाके योग्य है ॥ १२ ॥

केन स्म कर्मणा कृष्णा द्रौपदी विचरिष्यति।
न हि किंचिद्विजानाति कर्म कर्तुं यथा स्त्रियः ॥ १३ ॥

वह कृष्णा द्रौपदी किस कामको करती हुई वहां रहेगी? वह स्त्रियोंके कर्मको कुछ भी नहीं जानती है ॥ १३ ॥

सुकुमारी च बाला च राजपुत्री यशस्विनी।
पतिव्रता महाभागा कथं नु विचरिष्यति ॥ १४ ॥

यह बाला बहुत सुकुमारी, पतिव्रता, यशवाली, भाग्यवती और राजपुत्री है यह कैसे रहेगी? ॥ १४ ॥

माल्यगन्धानलंकारान्वस्त्राणि विविधानि च।
एतान्येवाभिजानाति यतो जाता हि भामिनी ॥ १५ ॥

इसने जबसे जन्म लिया है, तबसे यह पुष्पहार, गन्ध, चन्दन, आभूषण और अनेक तरहके उत्तम वस्त्रोंका पहननाही जानती ॥ १५ ॥

द्रौपद्युवाच

सैरन्ध्र्योऽरक्षिता लोके भुजिष्याः संति भारत।
नैवमन्याः स्त्रियो यान्ति इति लोकस्य निश्चयः ॥ १६ ॥

द्रौपदी बोली– हे भारत! लोकमें सैरन्ध्री सुरक्षित दासियाँ होती हैं और वे दासी रानियोंके पास जाती हैं, और कोई स्त्री नहीं जाने पाती हैं, यही संसारका नियम है ॥ १६ ॥

साहं ब्रुवाणा सैरंध्री कुशला केशकर्मणि।
आत्मगुप्ता चरिष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि ॥ १७ ॥

हे महाराज! मैं सिर गूंथनेमें बहुत निपुण हूं अपने आपको सैरन्ध्री बतलाऊंगी, हे महाराज! आप जो मुझसे पूछते हैं मैं इस प्रकारसे अपने आपको छिपाऊंगी और सुखसे रहूंगी ॥ १७ ॥

सुदेष्णां प्रत्युपस्थास्ये राजभार्यां यशस्विनीम्।
सा रक्षिष्यति मां प्राप्तां मा ते भूद्दुःखमीदृशम् ॥ १८ ॥

राजा विराटकी स्त्री यशस्विनी सुदेष्णाके पास मैं जाऊंगी, वह मुझे अपने पास रक्खेंगी, आप इस प्रकार दुःख न कीजिये ॥ १८ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कल्याणं भाषसे कृष्णे कुले जाता यथा वदेत्।
न पापमभिजानासि साधु साध्वीव्रते स्थिता ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ६९ ॥

महाराज युधिष्ठिर बोले– हे द्रौपदी! तुम ठीक कहती हो, हे भामिनि! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो, मैं तुमको पापकर्म करनेवाली नहीं जानता हूं, क्योंकि तुम साधु और उत्तम व्रत करनेवाली हो ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥ ६९ ॥

: ४ :

युधिष्ठिर उवाच

कर्माण्युक्तानि युष्माभिर्यानि तानि करिष्यथ।
मम चापि यथाबुद्धि रुचितानि विनिश्चयात् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे पाण्डवो ! तुम लोगोंने जो अपने कर्म कहे, उन्हींको करोगे, मुझको भी अपनी बुद्धिके अनुसार निश्चय हो गया है कि तुम लोग इन सब कर्मोंको कर सकोगे ॥१॥

पुरोहितोऽयमस्माकमग्निहोत्राणि रक्षतु।
सूदपौरोगवैः सार्धं द्रुपदस्य निवेशने ॥ २ ॥

हमारे पुरोहित धौम्य मुनि, रसोइयों और नगर निवासियोंके सहित राजा द्रुपदके यहां जाकर हमारे अग्निहोत्रकी रक्षा करें ॥ २ ॥

इन्द्रसेनमुखाश्चेमे रथानादाय केवलान्।
यान्तु द्वारवतीं शीघ्रमिति मे वर्तते मतिः ॥ ३ ॥

हमारे इन्द्रसेन आदि सारथी लोग खाली रथोंको लेकर शीघ्र द्वारिकाको चले जायं, ऐसा मेरा विचार है ॥ ३ ॥

इमाश्च नार्यो द्रौपद्याः सर्वशः परिचारिकाः।
पाञ्चालानेव गच्छन्तु सूदपौरोगवैः सह ॥ ४ ॥

और ये जो द्रौपदीके साथ स्त्रियाँ और दासिया हैं, ये सब नगरनिवासी और रसोइयोंके साथ पाञ्चालदेशको चली जायं ॥ ४ ॥

सर्वैरपि च वक्तव्यं न प्रज्ञायन्त पाण्डवाः।
गता ह्यस्मानपाकीर्य सर्वे द्वैतवनादिति ॥ ५ ॥

और ये सब लोग जाकर कहें कि हम लोगोंको पाण्डवोंको पता नहीं वे लोग हमको द्वैतवनमें छोडकर न जाने कहां चले गये ॥ ५ ॥

धौम्य उवाच

विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः।
अतोऽहमपि वक्ष्यामि हेतुमात्रं निबोधत ॥ ६ ॥

धौम्य बोले– आप्त और मित्रोंको चाहिए कि वे अपने सुहृदोंको व्यवहारकी बातें ज्ञात होने पर भी उसे प्रेमसे फिर बतावें। इसलिये हम आपसे कुछ गुप्त नीति कहते हैं, आप सुनें ॥६॥

हन्तेमां राजवसतिं राजपुत्रा ब्रवीमि वः।
यथा राजकुलं प्राप्य चरन्प्रेष्यो न रिष्यति ॥ ७ ॥

हे राजपुत्रो ! तुम्हें सब राजमहलमें रहते हुए किस तरहका व्यवहार करना चाहिए यह मैं बताता हूँ। ताकि राजकुलमें विचरते हुए तुमसे तुम्हारे प्रिय रुष्ट न हों ॥ ७ ॥

दुर्वसं त्वेव कौरव्य जानता राजवेश्मनि ।
अमानितैः सुमानार्हा अज्ञातैः परिवत्सरम् ॥ ८ ॥

हे कुरुवंशी ! समझदारके लिए भी राजाके घरमें रहना बहुत कठिन है, आदरके योग्य आप लोग निरादरको सहकर अज्ञातरूपसे किसी प्रकार एक वर्ष बितायें ॥ ८ ॥

दिष्टद्वारो लभेद् द्वारं न च राजसु विश्वसेत् ।
तदेवासनमन्विच्छेद्यत्र नाभिपजेत्परः ॥ ९ ॥

पहले द्वारपालसे समाचार भेजकर तब राजाका दर्शन करना चाहिये, और कभी राजाके आत्मीयजनोंपर विश्वास नहीं करना चाहिये, राजाकी सभामें ऐसे स्थानपर बैठना चाहिये जहां उसे उठाकर दूसरा न बैठ सके ॥ ९ ॥

नास्य यानं न पर्यङ्कं न पीठं न गजं रथम् ।
आरोहेत्संमतोऽस्मीति स राजवसतिं वसेत् ॥ १० ॥

मैं राजाका प्रिय हूँ, यह समझकर न उसके वाहन पर बैठे, न पलंग पर बैठे, न आसन पर बैठे और न हाथी या रथ पर बैठे, वही राजसभामें रह सकता है ॥ १० ॥

अथ यत्रैनमासीनं शङ्केरन्दुष्टचारिणः ।
न तत्रोपविशेज्जातु स राजवसतिं वसेत् ॥ ११ ॥

जहां बैठनेसे दुष्ट लोग शङ्का करें, उन स्थानों पर बैठना छोड दे, वही राजाके यहां रह सकता है ॥ ११ ॥

न चानुशिष्येद्राजानमपृच्छन्तं कदाचन ।
तूष्णीं त्वेनमुपासीत काले समभिपूजयन् ॥ १२ ॥

बिना पूछे राजाको किसी प्रकारकी शिक्षा नहीं देनी चाहिये, किन्तु चुपचाप इसकी सेवा करे तथा समय पर राजाकी प्रशंसा करे ॥ १२ ॥

असूयन्ति हि राजानो जनाननृतवादिनः ।
तथैव चावमन्यन्ते मन्त्रिणं वादिनं मृषा ॥ १३ ॥

राजा लोग मिथ्यावादी पुरुषोंकी असूया करते हैं और झूठ बोलनेवाले मन्त्रियोंका भी निरादर कर देते हैं ॥ १३ ॥

नैषां दारेषु कुर्वीत मैत्रीं प्राज्ञः कथंचन ।
अन्तःपुरचरा ये च द्वेष्टि यानहिताश्च ये ॥ १४ ॥

बुद्धिमान्को उचित है कि वह राजाकी स्त्रियोंसे किसी तरह प्रेम न करे और रनिवासमें रहनेवालोंसे तथा राजा जिनसे द्वेष करता है और जो राजाके शत्रु हैं उनसे भी मित्रता न करे ॥ १४ ॥

विदिते चास्य कुर्वीत कार्याणि सुलघून्यपि।
एवं विचरतो राज्ञो न क्षतिर्जायते क्वचित् ॥ १५ ॥

छोटेसे छोटे कामको भी राजाको जतलाकर ही करे इस प्रकार राजाके पास रह कर व्यवहार करनेमें कोई क्षति नहीं होती ॥ १५ ॥

यत्नाचोपचरेदेनमग्निवद्देववच्च ह।
अनृतेनोपचीर्णो हि हिंस्यादेनमसंशयम् ॥ १६ ॥

सेवा करनेवालोंको चाहिए कि वे राजाकी अग्नि और देवताके समान सेवा करें, यदि किसी विषयमें राजाको यह ज्ञात हो जाय कि अमुक पुरुष हमसे झूठ बोलता है, तब निःसन्देह राजा उसको मार डालता है ॥ १६ ॥

यच्च भर्तानुयुञ्जीत तदेवाभ्यनुवर्तयेत्।
प्रमादमवहेलां च कोपं च परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

राजा जिस कर्मको करनेके लिये कहे, सेवकको भी वैसा ही करना चाहिये। राजाकी सेवा करनेमें भूल, उपेक्षा और क्रोध करना त्याग दे ॥ १७ ॥

समर्थनासु सर्वासु हितं च प्रियमेव च।
संवर्णयेत्तदेवास्य प्रियादपि हितं वदेत् ॥ १८ ॥

कार्याकार्यके विचारके समय जो हितकारक और प्रिय हो, वही बात कहनी चाहिये, और जहाँ दोनोंका मेल न बन सके वहां, प्रियसे बढकर जो हितकारक हो वही बात कहनी उचित है ॥ १८ ॥

अनुकूलो भवेच्चास्य सर्वार्थेषु कथासु च।
अप्रियं चाऽहितं यत्स्यात्तदस्मै नानुवर्णयेत् ॥ १९ ॥

सब कथा और व्यवहारोंमें राजाका प्रिय बना रहे, जो बात राजाको प्रिय और हितकर न हो वह उससे न कहे ॥ १९ ॥

नाहमस्य प्रियोऽस्मीति मत्वा सेवेत पण्डितः।
अप्रमत्तश्च यत्तश्च हितं कुर्यात्प्रियं च यत् ॥ २० ॥

मैं राजाका प्रिय हूं, यह विचार कर बुद्धिमान् राजाकी सेवा न करे, बरन् सदा सावधान और प्रयत्नशील होकर राजाके प्रिय और हितकारी कामोंको करता रहे ॥ २० ॥

नास्यानिष्टानि सेवेत नाहितैः सह संवसेत्।
स्वस्थानान्न विकम्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥ २१ ॥

जो राजाके अप्रिय कामोंको नहीं करता, राजाके शत्रुओंसे बात नहीं करता और अपने स्थानको नहीं छोडता वही राजाके यहां रह सकता है ॥ २१ ॥

दक्षिणं वाऽथ वामं वा पार्श्वमासीत पण्डितः ।
रक्षिणां ह्यात्तशस्त्राणां स्थानं पश्चाद्विधीयते ॥ २२ ॥

बुद्धिमान्‌को उचित है कि राजाके दाहिनी या बाईं ओर बैठे, और शस्त्रधारी रक्षक लोगोंके बैठनेका स्थान राजाके पीछेके भागमें होता है राजाके आगे लगाया गया बडा आसन हमेशा वर्ज्य अर्थात् त्यागने योग्य समझे ॥ २२ ॥

नित्यं विप्रतिषिद्धं तु पुरस्तादासनं महत् ।
न च संदर्शने किंचित्प्रवृद्धमपि संजपेत् ॥ २३ ॥

राजाके सामने जो कुछ वेतन या भेंट आदि दिए जा रहे हों, उन्हें ललचाई दृष्टिसे देखते हुए उसपर आसक्त न हो। ऐंठना या अपनेसे आगे किसीको बैठा हुआ देखना दरिद्रोंको भी अप्रिय होता है फिर राजाओंकी तो बात ही क्या है ? ॥ २३ ॥

अपि ह्येतद्दरिद्राणां व्यलीकस्थानमुत्तमम् ।
न मृषाभिहितं राज्ञो मनुष्येषु प्रकाशयेत् ।
यं चासूयन्ति राजानः पुरुषं न वदेच्च तम् ॥ २४ ॥

यदि राजा कोई मिथ्या बात कहे तो उसे सर्व साधारणमें फैलाना उचित नहीं है। जिससे राजा वैर रखता है उससे बात न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

शूरोऽस्मीति न दृप्तः स्याद् बुद्धिमानिति वा पुनः ।
प्रियमेवाचरन्राज्ञः प्रियो भवति भोगवान् ॥ २५ ॥

सेवकको उचित है वह कभी भी " मैं बहुत शूरवीर हूँ, बहुत बलशाली हूँ " इस प्रकार अभिमान न करे, सदा राजाका प्रिय काम करनेसे मनुष्य राजाका प्यारा होता है, और राजाका प्यारा होनेसे उसे अनेक सुख मिलते हैं ॥ २५ ॥

ऐश्वर्यं प्राप्य दुष्प्रापं प्रियं प्राप्य च राजतः ।
अप्रमत्तो भवेद्राज्ञः प्रियेषु च हितेषु च ॥ २६ ॥

कठिनतासे प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य और प्रेम पाकर भी सावधान होकर राजाके प्यारे तथा हितकारी काम करनेमें सदा सावधान रहे ॥ २६ ॥

यस्य कोपो महाबाधः प्रसादश्च महाफलः ।
कस्तस्य मनसापीच्छेदनर्थं प्राज्ञसंमतः ॥ २७ ॥

जिसके क्रोधसे महान् आपत्ति और प्रसन्नतासे महान् सुख प्राप्त होते हैं, जो मनसे भी उसका अहित चाहे ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा ॥ २७ ॥

न चोष्ठौ निर्भुजेज्जातु न च वाक्यं समाक्षिपेत्।
सदा क्षुतं च वातं च ष्ठीवनं चाचरेच्छनैः ॥ २८॥

राजसभामें बैठकर होठ न चबाये और न खुसपुस ही करे, छींकना, अपान वायु निकालना, थूकना आदि सब काम धीरेसे करे ॥ २८॥

हास्यवस्तुषु चाप्यस्य वर्तमानेषु केषुचित्।
नातिगाढं प्रहृष्येत न चाप्युन्मत्तवद्धसेत् ॥ २९॥

यदि हंसने योग्य कोई वस्तु सभामें आजाय तो अत्यधिक प्रसन्न न हो, और न पागलके समान वेगसे हंसे ही ॥ २९॥

न चातिधैर्येण चरेद्गुरुतां हि व्रजेत्तथा।
स्मितं तु मृदुपूर्वेण दर्शयेत प्रसादजम् ॥ ३०॥

ऐसे हंसीके समय धैर्य धारण करके काठके समान चुपचाप बैठा भी न रहे, अपितु कोमलतासे मुस्कराकर अपनी प्रसन्नताको व्यक्त करे ॥ ३०॥

लाभे न हर्षयेद्यस्तु न व्यथेद्योऽवमानितः।
असंमूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत् ॥ ३१॥

जो लाभ होनेसे प्रसन्न नहीं होता है और अनादरसे दुःख नहीं मानता है और जो सदा सावधान रहता है, वही राजाके यहां रहने योग्य है ॥ ३१॥

राजानं राजपुत्रं वा संवर्तयति यः सदा।
अमात्यः पण्डितो भूत्वा स चिरं तिष्ठति श्रियम् ॥ ३२॥

जो पण्डित मन्त्री होकर सदा राजा और राजपुत्रकी प्रशंसा करता है, वह बहुत दिन तक प्रिय बनकर सुख भोगता है ॥ ३२॥

प्रगृहीतश्च योऽमात्यो निगृहीतश्च कारणैः।
न निर्बध्नाति राजानं लभते प्रग्रहं पुनः ॥ ३३॥

जो मन्त्री राजासे किसी कारण दंडित या कैद होकर भी राजाको बन्धनमें नहीं डालता वह अपना पद पुनः प्राप्त कर लेता है ॥ ३३॥

प्रत्यक्षं च परोक्षं च गुणवादी विचक्षणः।
उपजीवी भवेद्राज्ञो विषये चापि यो वसेत् ॥ ३४॥

जो राज्यमें रहनेवाला अथवा नौकर हो वह बुद्धिमान् राजाके आगे अथवा पीछे प्रशंसा करनेवाला हो ॥ ३४॥

अमात्यो हि बलाद्भोक्तुं राजानं प्रार्थयेत्तु यः ।
न स तिष्ठेच्चिरं स्थानं गच्छेच्च प्राणसंशयम् ॥ ३५ ॥

जो मन्त्री अपने राजाको बलसे राज्यका भोग करनेके लिए कहे वह बहुत दिन तक अपने पद पर स्थिर नहीं रहता और अन्तमें अपने प्राणोंको भी संशयमें डाल देता है ॥ ३५ ॥

श्रेयः सदात्मनो दृष्ट्वा परं राज्ञा न संवदेत् ।
विशेषयेन्न राजानं योग्याभूमिषु सर्वदा ॥ ३६ ॥

सदा अपने कल्याणकी चिंता करता हुआ मंत्री सदा सावधानीसे यह देखता रहे, कि कोई दूसरा व्यक्ति राजाको सलाह मशविरा देने न पाये, तथा अयोग्य स्थानोंमें राजाको आगे जाने न दे ॥ ३६ ॥

अम्लानो बलवाञ्शूरश्छायेवानपगः सदा ।
सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत् ॥ ३७ ॥

जो चेहरेपर कभी उदासीनता न लावे. तेजस्वी, बलवान्, शूरवीर, सत्यवादी, कोमल, जितेन्द्रिय, और छायाके समान राजाके संग चलनेवाला हो, वही राजाक घरमें रहने योग्य है ॥ ३७ ॥

अन्यास्मिन्प्रेष्यमाणे तु पुरस्ताद्यः समुत्पतेत् ।
अहं किं करवाणीति स राजवसतिं वसेत् ॥ ३८ ॥

जो दूत, दूसरे दूतको भेजते समय स्वयं आगे आकर राजासे कहे कि महाराज ! कहिये क्या आज्ञा है ? क्या कार्य करूँ ? वही दूत राजाका प्यारा और राज्यमें रहनेवाला होता है ॥ ३८ ॥

उष्णे वा यदि वा शीते रात्रौ वा यदि वा दिवा ।
आदिष्टो न विकल्पेत स राजवसतिं वसेत् ॥ ३९ ॥

जो गर्मी या जाडेमें, दिनमें अथवा रात्रीमें राजाकी आज्ञाको सुनके करूं या न करूं ऐसे बिकल्पमें कभी नहीं पडता, वही राज्यमें रहने योग्य है ॥ ३९ ॥

यो वै गृहेभ्यः प्रवसन्प्रियाणां नानुसंस्मरेत् ।
दुःखेन सुखमन्विच्छेत्स राजवसतिं वसेत् ॥ ४० ॥

जो घरसे निकल कर अपने प्यारे कुटुम्बियोंका स्मरण न करे और दुःख सहनेके बाद सुख चाहे, वही दूत राजाके राज्यमें रहने योग्य है ॥ ४० ॥

समवेषं न कुर्वीत नात्युच्चैः संनिधौ हसेत् ।
मंत्रं न बहुधा कुर्यादेवं राज्ञः प्रियो भवेत् ॥ ४१ ॥

जो कभी राजाके समान वस्त्र और आभूषण नहीं पहनता, उसके निकट बैठ कर जोरसे नहीं हंसता और राजाकी गुप्त बातको प्रकाशित नहीं करता, वही राजाका प्यारा दूत होता है ॥ ४१ ॥

न कर्मणि नियुक्तः सन्धनं किंचिदुपस्पृशेत् ।
प्राप्नोति हि हरन्द्रव्यं बन्धनं यदि वा वधम् ॥ ४२ ॥

कर्म करनेमें नियोजित होनेपर धनकी इच्छा नहीं करे, जो धन हरण करता है वह या तो बन्धनको प्राप्त होता है या मृत्युको ॥ ४२ ॥

यानं वस्त्रमलंकारं यच्चान्यत्संप्रयच्छति ।
तदेव धारयेन्नित्यमेवं प्रियतरो भवेत् ॥ ४३ ॥

राजा जो वाहन, वस्त्र और आभूषण अथवा अन्य पदार्थ देता है, उन्हींका जो उपयोग करता है, वह पुरुष राजाका अत्यन्त प्यारा होता है ॥ ४३ ॥

संवत्सरमिमं तात तथाशीला बुभूषवः ।
अथ स्वविषयं प्राप्य यथाकामं चरिष्यथ ॥ ४४ ॥

हे प्रिय पाण्डवो ! एक वर्ष जैसे हो वैसे बिता दो, पश्चात् अपने राज्यको प्राप्त करके इच्छानुसार सुख भोगना ॥ ४४ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अनुशिष्टाः स्म भद्रं ते नैतद्वक्तास्ति कश्चन ।
कुन्तीमृते मातरं नो विदुरं च महामतिम् ॥ ४५ ॥

युधिष्ठिर बोले– आपका कल्याण हो, हमें उत्तम उपदेश आपने दिया है, माता कुन्ती और महाबुद्धिमान् विदुरके सिवा हमें और कौन उपदेश करेगा ? ॥ ४५ ॥

यदेवानन्तरं कार्यं तद्भवान्कर्तुमर्हति ।
तारणायास्य दुःखस्य प्रस्थानाय जयाय च ॥ ४६ ॥

अब हमारा अज्ञातवास सुखपूर्वक बीतनेके लिए, तथा आगे भी शत्रुओं पर हमला करके विजय प्राप्त करनेके लिए जो जो कर्म करने हों, उन्हें आप हमारे जानेके बाद भी करते रहिए ॥४६॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तस्ततो राज्ञा धौम्योऽथ द्विजसत्तमः ।
अकरोद्विधिवत्सर्वं प्रस्थाने यद्विधीयते ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन बोले– महाराज युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मणश्रेष्ठ धौम्य मुनिने उन सब कर्मोंको विधिवत् पूर्ण किया, जो चलते समय करने उचित थे ॥ ४७ ॥

तेषां समिध्य तानग्नीन्मन्त्रवच्च जुहाव सः ।
समृद्धिवृद्धिलाभाय पृथिवीविजयाय च ॥ ४८ ॥

द्विजवर धौम्यने पाण्डवोंकी वृद्धि, समृद्धिलाभ और पृथिवीविजयके लिये अग्नियोंको प्रदीप्त करके उनमें मन्त्रोंसे होम किया ॥ ४८ ॥

अग्निं प्रदक्षिणं कृत्वा ब्राह्मणांश्च तपोधनान् ।
याज्ञसेनीं पुरस्कृत्य षडेवाथ प्रवव्रजुः ॥ ४९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ११८ ॥

तदनंतर पाण्डवोंने अग्निकी प्रदक्षिणा कर सब तपस्वी ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की, फिर पाण्डव द्रौपदीको आगे करके छओं चले गये ॥ ४९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥ ११८ ॥

: ५ :

वैशम्पायन उवाच

ते वीरा बद्धनिस्त्रिंशास्तातायुधकलापिनः ।
बद्धगोधांगुलित्राणाः कालिंदीमभितो ययुः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले— हे महाराज जनमेजय ! वीर पाण्डव लोग कवच, खड्ग, तूणीर और अंगुलित्राण धारण करके यमुनाके तटकी ओर चलने लगे ॥ १ ॥

ततस्ते दक्षिणं तीरमन्वगच्छन्पदातयः ।
वसन्तो गिरिदुर्गेषु वनदुर्गेषु धन्विनः ॥ २ ॥

इसके बाद पैदल चलनेवाले वे पाण्डव यमुनाके दक्षिणी किनारे चलने लगे । धनुषको धारण करनेवाले वे पाण्डव पर्वत कन्दरा और गहन वनोंमें निवास करने लगे ॥ २ ॥

विध्यन्तो मृगजातानि महेष्वासा महाबलाः ।
उत्तरेण दशार्णांस्ते पाञ्चालान्दक्षिणेन तु ॥ ३ ॥

महाबलवान्, महाधनुषधारी पाण्डव हरिणोंको मारते हुए दशार्ण देशकी उत्तर और पाञ्चाल देशकी दक्षिण सीमासे होकर निकले ॥ ३ ॥

अंतरेण यकृल्लोमाञ्शूरसेनांश्च पाण्डवाः ।
लुब्धा ब्रुवाणा मत्स्यस्य विषयं प्राविशन्वनात् ॥ ४ ॥

अनन्तर पाण्डव शूरसेन और यकृल्लोम देशकी सीमाको लांघकर अपने आपको शिकारी बतलाते हुए वनसे राजा विराटके राज्यमें पहुंचे ॥ ४ ॥

ततो जनपदं प्राप्य कृष्णा राजानमब्रवीत् ।
पश्यैकपद्यो दृश्यन्ते क्षेत्राणि विविधानि च ॥ ५ ॥

पाण्डव जब राजा विराटके राज्यमें पहुंचे, तब द्रौपदीने महाराजसे कहा, हे महाराज ! देखो, ये पगडण्डियां और यह सब बोये हुए बहुतसे खेत दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

व्यक्तं दूरे विराटस्य राजधानी भविष्यति।
वसामेहपरां रात्रिं बलवान्मे परिश्रमः ॥ ६ ॥

इससे जान पडता है, कि राजा विराटका नगर अभी दूर है और मैं थक भी बहुत गई हूं, इसलिये आजकी रात यहीं रह जाइये ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

धनंजय समुद्यम्य पांचालीं वह भारत।
राजधान्यां निवत्स्यामो विमुक्ताश्च वनादितः ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे अर्जुन ! तुम द्रौपदीको अपने कन्धेपर बिठलाकर ले चलो, हम लोग इस वनसे निकल कर राजा विराटकी राजधानीमें रहेंगे ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तामादायार्जुनस्तूर्णं द्रौपदीं गजराडिव।
संप्राप्य नगराभ्याशमवतारयदर्जुनः ॥ ८ ॥

वैशम्पायन बोले– राजाकी आज्ञा पाकर अर्जुनने द्रौपदीको अपने कन्धेपर बिठला लिया, और मस्त हाथीके समान शीघ्रतासे चलने लगे। नगरके पास जाकर अर्जुनने द्रौपदीको उतार दिया ॥ ८ ॥

स राजधानीं संप्राप्य कौन्तेयोऽर्जुनमब्रवीत्।
क्वायुधानि समासज्य प्रवेक्ष्यामः पुरं वयम् ॥ ९ ॥

विराटकी राजधानीमें पहुंचकर महाराज युधिष्ठिरने अर्जुनसे कहा कि हम लोग शस्त्रोंको कहां रखकर नगरमें प्रवेश करें ? ॥ ९ ॥

सायुधाश्च वयं तात प्रवेक्ष्यामः पुरं यदि।
समुद्वेगं जनस्यास्य करिष्यामो न संशयः ॥ १० ॥

यदि, हे तात ! हम लोग शस्त्रोंको लिये हुए ही नगरमें जायेंगे, तो अपने इस कार्यसे हम निःसन्देह सब नगर निवासियोंको भयभीत कर देंगे ॥ १० ॥

ततो द्वादश वर्षाणि प्रवेष्टव्यं वनं पुनः।
एकस्मिन्नपि विज्ञाते प्रतिज्ञातं हि नस्तथा ॥ ११ ॥

यदि हम लोगोंमेंसे किसी एकको भी कोई जान जायेगा तो हम लोगोंको फिर बारह वर्षतक वनमें रहना पडेगा, ऐसी हमने प्रतिज्ञा की है ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच

इयं कूटे मनुष्येन्द्र गहना महती शमी ।
भीमशाखा दुरारोहा श्मशानस्य समीपतः ॥ १२ ॥

अर्जुन बोले– हे पृथ्वीनाथ ! यह इस शिखरपर बडा भारी घना शमीका वृक्ष है, इसकी डालियां बहुत बडी बडी हैं और इस पर कोई चढ भी नहीं सकता, क्योंकि यह श्मशानके समीप है ॥ १२ ॥

न चापि विद्यते कश्चिन्मनुष्य इह पार्थिव ।
उत्पथे हि वने जाता मृगव्यालनिषेविते ॥ १३ ॥

हे राजा (धर्मराज) इस समय हम लोगोंको देखनेवाला यहां कोई मनुष्य भी नहीं है, और इस वनमें पशुओं और सांपोंकी बहुत घनी बस्ती भी है ॥ १३ ॥

समासज्यायुधान्यस्यां गच्छामो नगरं प्रति ।
एवमत्र यथाजोषं विहरिष्याम भारत ॥ १४ ॥

अतः इस शमी वृक्षपर शस्त्रोंको रखकर नगरकी तरफ चलें । हे भारत ! हम लोग इस प्रकार विराटके यहां इच्छानुसार विहार करेंगे ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ।
प्रचक्रमे निधानाय शस्त्राणां भरतर्षभ ॥ १५ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भरतर्षभ ! धर्मात्मा राजा युधिष्ठिरसे इस प्रकार कहकर अर्जुन शस्त्र रखनेको तैयार हुए ॥ १५ ॥

येन देवान्मनुष्यांश्च सर्पांश्चैकरथोऽजयत् ।
स्फीताञ्जनपदांश्चान्यानजयत्कुरुनन्दनः ॥ १६ ॥

जिस धनुषसे कुरुनन्दन अर्जुनने एक रथपर बैठकर समस्त देवता, सर्प, मनुष्य, समृद्ध नगरों तथा अन्योंको जीता था ॥ १६ ॥

तदुदारं महाघोषं सपत्नगणसूदनम् ।
अपज्यमकरोत्पार्थो गांडीवमभयंकरम् ॥ १७ ॥

उसही महान्, महान् शब्द करनेवाले, मित्रोंके लिए अभयङ्कर, शत्रुसेनाके नाशक गाण्डीव धनुषसे अर्जुनने डोरीको उतारा ॥ १७ ॥

येन वीरः कुरुक्षेत्रमभ्यरक्षत्परंतपः ।
अमुञ्चद्धनुषस्तस्य ज्यामक्षय्यां युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥

महाप्रतापी शत्रुनाशक वीर युधिष्ठिरने जिस धनुषसे कुरुक्षेत्रकी रक्षा की थी उस धनुषसे कभी

पाञ्चालान्येन संग्रामे भीमसेनोऽजयत्प्रभुः ।
प्रत्यषेधद्बहूनेकः सपत्नांश्चैव दिग्जये ॥ १९ ॥

जिस धनुपसे सामर्थ्यशाली भीमसेनने द्रौपदीके स्वयंवरमें अनेक शत्रुओंको जीता था, जिससे दिग्विजयमें अनेक शत्रुओंको रोका था ॥ १९ ॥

निशम्य यस्य विस्फारं व्यद्रवन्त रणे परे ।
पर्वतस्येव दीर्णस्य विस्फोटमशनेरिव ॥ २० ॥

जिसका भयङ्कर शब्द सुनकर संग्राममें शत्रु इस प्रकार भाग जाते थे, जैसे वज्रका शब्द सुननेसे पर्वत फटते हैं ॥ २० ॥

सैन्धवं येन राजानं परामृषत चानघ ।
ज्यापाशं धनुषस्तस्य भीमसेनोऽवतारयत् ॥ २१ ॥

हे निष्पाप जनमेजय ! जिससे सिन्धु देशके राजाको जीता था, उस धनुपसे भीमसेनने डोरीको उतारा ॥ २१ ॥

अजयत्पश्चिमामाशां धनुषा येन पाण्डवः ।
तस्य मौर्वीमपाकर्षच्छूरः संक्रन्दनो युधि ॥ २२ ॥

जिस धनुपसे युद्धमें शत्रुओंको रुलानेवाले शूरवीर पाण्डुपुत्र नकुलने पश्चिम दिशाको जीता था, उस धनुपकी डोरीको ढीला कर दिया ॥ २२ ॥

दक्षिणां दक्षिणाचारो दिशं येनाजयत्प्रभुः ।
अपज्यमकरोद्वीरः सहदेवस्तदायुधम् ॥ २३ ॥

जिससे महाबाहु महाशूर सदाचारी सहदेवने अनेक शत्रुओंको मारा था, जिस धनुषके आश्रयसे दक्षिण दिशा और दक्षिणके सब राजाओंको जीता था, सहदेवने भी उस धनुषसे डोरीको उतारा ॥ २३ ॥

खड्गांश्च पीतान्दीर्घांश्च कलापांश्च महाधनान् ।
विपाठान्क्षुरधारांश्च धनुर्भिर्निदधुः सह ॥ २४ ॥

पाण्डवोंने उसी प्रकार चमकीले, बडे फालवाले तलवार, मूल्यवान् तरकश और तीक्ष्ण बाण अपने अपने धनुषोंके साथ रख दिए ॥ २४ ॥

तामुपारुह्य नकुलो धनूंषि निदधत्स्वयम् ।
यानि तस्यावकाशानि दृढरूपाण्यमन्यत ॥ २५ ॥

उसी समय नकुल उस वृक्षपर चढ गये और उस वृक्षके कोटरोंमें अथवा अन्य स्थानोंमें, जहां उन्होंने सुरक्षित समझा, उन दृढरूपवाले प्रकाशमान धनुषोंको रख आये ॥ २५ ॥

यत्र चापश्यत स वै तिरो वर्षाणि वर्षति।
तत्र तानि दृढैः पाशैः सुगाढं पर्यबन्धत ॥ २६ ॥

नकुलने ऐसे स्थानपर धनुषोंको रक्खा, जहां उसने देखा कि बरसते हुए पानीसे न भीग सकें और उनको दृढ बन्धनोंसे बांध दिया ॥ २६ ॥

शरीरं च मृतस्यैकं समबध्नन्त पाण्डवाः।
विवर्जयिष्यन्ति नरा दूरादेव शमीमिमाम्।
आबद्धं शवमत्रेति गंधमाघ्राय पूतिकम् ॥ २७ ॥

फिर पाण्डवोंने उस शमी वृक्षपर एक मरे हुए पुरुषका शरीर बांध दिया, जिससे शवकी दुर्गन्ध सूंघकर, यहांपर मुर्दा बंध हुआ है ऐसा जानकर पुरुष उस वृक्षको दूरसे ही छोड दें ॥ २७ ॥

अशीतिशतवर्षेयं माता न इति वादिनः।
कुलधर्मोऽयमस्माकं पूर्वैराचरितोऽपि च।
समासजाना वृक्षेऽस्मिन्निति वै व्याहरन्ति ते ॥ २८ ॥

पाण्डव लोग उस शवको वहां लटकाकर लोगोंसे बोले कि इस वृक्षपर एकसौ अस्सी वर्षकी हमारी बूढी माताकी मृतदेह रक्खी गई है और यह हमारा कुलधर्म है और हमारे पूर्वज भी ऐसा ही करते आये हैं ॥ २८ ॥

आ गोपालाविपालेभ्य आचक्षाणाः परंतपाः।
आजग्मुर्नगराभ्याशं पार्थाः शत्रुनिबर्हणाः ॥ २९ ॥

ग्वालों और गडरियोंसे ऐसा कहते हुए शत्रुओंको सन्ताप देनेवाले तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले पृथाके पुत्र पाण्डव विराट नगरके समीप पहुंचे ॥ २९ ॥

जयो जयंतो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः।
इति गुह्यानि नामानि चक्रे तेषां युधिष्ठिरः ॥ ३० ॥

जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल ये गुप्त नाम महाराज युधिष्ठिरने उनके रक्खे ॥ ३० ॥

ततो यथाप्रतिज्ञाभिः प्राविशन्नगरं महत्।
अज्ञातचर्यां वत्स्यन्तो राष्ट्रे वर्षं त्रयोदशम् ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ १४९ ॥

अनन्तर पांचों पाण्डवोंने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तेरहवां वर्ष छिपकर रहनेका निश्चय करके विराट नगरमें प्रवेश किया ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पांचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ १४९ ॥

: ६ :

वैशम्पायन उवाच

ततो विराटं प्रथमं युधिष्ठिरो राजा सभायामुपविष्टमाव्रजत्।
वैडूर्यरूपान्प्रतिमुच्य काञ्चनानक्षान्स कक्षे परिगृह्य वाससा ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– अनन्तर सबसे पहले महाराज युधिष्ठिर वैडूर्यसे जडे हुए सोनेके मणि पांसोंको कपडेमें लपेटकर और अपनी बगलमें दबा कर राजसभामें बैठे हुए विराटके पास पहुंचे ॥ १ ॥

नराधिपो राष्ट्रपतिं यशस्विनं महायशाः कौरववंशवर्धनः।
महानुभावो नरराजसत्कृतो दुरासदस्तीक्ष्णविषो यथोरगः ॥ २ ॥
बलेन रूपेण नरर्षभो महानथार्चिरूपेण यथामरस्तथा।
महाभ्रजालैरिव संवृतो रविर्यथानलो भस्मवृतश्च वीर्यवान् ॥ ३ ॥

लोगोंका पालन करनेवाला, महान् यशस्वी, कौरवके वंशको बढानेवाला, महा पराक्रमी, राजाओं द्वारा पूजित, जिसके सामने जानेसे लोगोंको भयंकर सर्पके आगे जानेके समान भय लगता है, बल और रूपसे नरश्रेष्ठके समान भव्य, अपूर्व रूपके कारण देवके समान, पर बडे बडे बादलोंसे आच्छादित सूर्यके समान अथवा भस्मसे ढके हुए अग्निके समान युधिष्ठिर राष्ट्रपति यशस्वी विराटके पास गया ॥ २–३ ॥

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य पाण्डवं विराटराडिन्दुमिवाभ्रसंवृतम्।
मन्त्रिद्विजान्सूतमुखान्विशस्तथा ये चापि केचित्परिषत्समासते।
पप्रच्छ कोऽयं प्रथमं समेयिवाननेन योऽयं प्रसमीक्षते सभाम् ॥ ४ ॥

मेघोंसे आच्छादित चन्द्रकी भाँति (ढके तेजवाले) आते हुए उस पाण्डवको देखकर राजा विराटने देखकर मन्त्री, सूत, ब्राह्मण, वैश्य और जो भी उस परिषद्में बैठे हुए थे, उन सब सभासदोंसे पूछा कि, यह कौन पुरुष चला आता है? मैं आज इसे पहले ही देखता हूं, यह राजाके समान कोई मेरी सभाको देख रहा है ॥ ४ ॥

न तु द्विजोऽयं भविता नरोत्तमः पतिः पृथिव्या इति मे मनोगतम्।
न चाऽस्य दासो न रथो न कुंडले समीपतो भ्राजति चायमिन्द्रवत् ॥ ५ ॥

मुझे पूर्ण निश्चय होता है कि यह ब्राह्मण नहीं है, वरन समस्त पृथ्वीका स्वामी क्षत्रिय कोई नरश्रेष्ठ है। इसके पास न सेवक है, न रथ है, न कुण्डल ही हैं तो भी पाससे यह इन्द्रके

शरीरलिङ्गैरुपसूचितो ह्ययं मूर्धाभिषिक्तोऽयमितीव मानसम्।
समीपमायाति च मे गतव्यथो यथा गजस्तामरसीं मदोत्कटः ॥ ६ ॥

इसके शरीरके चिन्होंसे हमको पूर्ण निश्चय होता है कि यह साक्षात् चक्रवर्ती राजा है, यह मेरे पास निर्भय रूपसे इस प्रकार चला आता है, जैसे मतवाला हाथी कमलोंसे भरे तालावकी ओर जाता है ॥ ६ ॥

वितर्कयन्तं तु नरर्षभस्तथा युधिष्ठिरोऽभ्येत्य विराटमब्रवीत्।
सम्राड्विजानात्विह जीवितार्थिनं विनष्टसर्वस्वमुपागतं द्विजम् ॥ ७ ॥

पुरुषसिंह विराट इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें महाराज युधिष्ठिर उनके पास आकर कहने लगे, महाराजको विदित हो कि मैं ब्राह्मण हूं; मेरा सर्वस्व नाश हो गया है, अब मैं जीविकाके लिये आपके यहां आया हूं ॥ ७ ॥

इहाहमिच्छामि तवानघान्तिके वस्तुं यथा कामचरस्तथा विभो।
तमब्रवीत्स्वागतमित्यनन्तरं राजा प्रहृष्टः प्रतिसंगृहाण च ॥ ८ ॥

हे विभो ! हे निष्पाप राजन् ! आपकी इच्छानुसार काम करता हुआ मैं आपके पास रहना चाहता हूँ। तदनन्तर महाराज विराटने कृपा करके कहा, कि हम आपका स्वागत करते हैं और यह कहकर उसे बैठनेके लिए कहा ॥ ८ ॥

कामेन ताताभिवदाम्यहं त्वां कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः।
गोत्रं च नामापि च शंस तत्त्वतः किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ॥९॥

हे मित्र ! हम केवल जाननेके लिये आपसे पूछते हैं कि आप कौनसे राजाके राज्यसे यहां आये हैं ? आप अपना वास्तविक गोत्र और नाम बतलाइये और यह भी कहिये कि आप कौन कौनसी विद्या जानते हैं ? ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

युधिष्ठिरस्यासमहं पुरा सखा वैयाघ्रपद्यः पुनरस्मि ब्राह्मणः।
अक्षान्प्रवप्तुं कुशलोऽस्मि देविता कङ्केति नाम्नास्मि विराट विश्रुतः ॥१०॥

युधिष्ठिर बोले— हे महाराज ! पहले समयमें मैं राजा युधिष्ठिरका प्यारा मित्र था, वैयाघ्रपद मेरा गोत्र और जाति ब्राह्मण है। मैं जुआ खेलने और खिलानेमें परम प्रवीण हूं, और मैं कंकके नामसे प्रसिद्ध हूं ॥ १० ॥

विराट उवाच

ददामि ते हंत वरं यमिच्छसि प्रशाधि मत्स्यान्वशगो ह्यहं तव।
प्रिया हि धूर्ता मम देविनः सदा भवांश्च देवोपम राज्यमर्हति ॥ ११ ॥

विराट बोले— हम प्रसन्नतासे आपकी इच्छानुसार वर देते हैं, आप आजसे विराट देशका राज्य कीजिये, मैं आपके वशमें होकर रहूंगा। जुआ खिलानेवाले धूर्त भी हमारे प्रिय हैं और आप देवतुल्य तथा राज्य करने योग्य हैं ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आप्तो विवादः परमो विशां पते न विद्यते किंचन मत्स्य हीनतः।
न मे जितः कश्चन धारयेद्धनं वरो ममैषोऽस्तु तव प्रसादतः ॥ १२ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे महाराज! आप प्रसन्न होकर हमको एक वरदान और दीजिये, जिसको हम जीतेंगे वह हमारे धनको नहीं छीन सकेगा। हे पृथ्वीनाथ! क्योंकि पराजित लोग विजयी मनुष्यके साथ झगडा नहीं करते ऐसा कोई नियम नहीं है ॥ १२ ॥

विराट उवाच

हन्यामवध्यं यदि तेऽप्रियं चरेत्प्रव्राजयेयं विषयाद्द्विजांस्तथा।
शृण्वन्तु मे जानपदाः समागताः कङ्को यथाहं विषये प्रभुस्तथा ॥ १३ ॥

विराट बोले– मैं तुमको यह वरदान देता हूं, कि जो तुम्हारा अप्रिय करेगा वह मेरे राज्यमें जीवित नहीं बचेगा। तुम्हारे प्रति अप्रिय कर्म करनेवाले ब्राह्मणको भी मैं राज्यसे निकाल दूंगा। हे सभासदो! तुम लोग मेरी बात सुनो, इस राज्यके जैसे मैं स्वामी हूं वैसे ही आजसे कङ्क भी है ॥ १३ ॥

समानयानो भवितासि मे सखा प्रभूतवस्त्रो बहुपानभोजनः।
पश्येस्त्वमन्तश्च बहिश्च सर्वदा कृतं च ते द्वारमपावृतं मया ॥ १४ ॥

हे कङ्क! आजसे तुमको हमारे समान भोजन, वस्त्र, खानेपीनेकी वस्तु और वाहन मिलेंगे। तुम सदा भीतर और बाहर जाया आया करो, तुम्हारे लिए मैंने अपना दरवाजा हमेशाके लिए खोल दिया है ॥ १४ ॥

ये त्वानुवादेयुरवृत्तिकर्शिता ब्रूयाश्च तेषां वचनेन मे सदा।
दास्यामि सर्वं तदहं न संशयो न ते भयं विद्यति संनिधौ मम ॥ १५ ॥

आजीविकाके अभावमें दुःख पानेवाले जो दरिद्र लोग तुम्हारे पास आवें, उनके वचन तुम हमसे सदा आकर कहा करना, मैं निस्सन्देह उनको सब वस्तु दूंगा। मेरे पास रहनेसे तुम्हें कुछ भय नहीं होगा ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं स लब्ध्वा तु वरं समागमं विराटराजेन नरर्षभस्तदा।
उवास वीरः परमार्चितः सुखी न चापि कश्चिच्चरितं बुबोध तत् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ १६५ ॥

वैशम्पायन बोले– तब राजा विराटसे इस प्रकार मिलकर और वर पाकर पुरुषसिंह वीर युधिष्ठिर अच्छी तरह सत्कृत होकर सुखपूर्वक उस स्थानमें रहने लगे और किसीने भी उनके चरित्रको न जाना ॥ १६ ॥

: ७ :

वैशम्पायन उवाच

अथापरो भीमबलः श्रिया ज्वलन्नुपाययौ सिंहविलासविक्रमः ।
खजं च दर्वीं च करेण धारयन्नसिं च कालाङ्गमकोशमव्रणम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! इसके पश्चात् दूसरा महाबलवान्, तेजसे प्रदीप्त, सिंह की गतिके समान कदम रखनेवाला, हाथमें खोंचा, चमचा और काले रंगकी तीक्ष्ण और नंगी तलवार लेकर भीम आया ॥ १ ॥

स सूदरूपः परमेण वर्चसा रविर्यथा लोकमिमं प्रभासयन् ।
सुकृष्णवासा गिरिराजसारवान्स मत्स्यराजं समुपेत्य तस्थिवान् ॥ २ ॥

भीम लोकको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके समान तेजस्वी रसोइयाके वेशमें काले कपडे पहन कर मत्स्यराज विराटके पास पहुंच कर खडे हो गए और ऐसे शोभित हुए जैसे अनेक धातुओंसे पर्वत शोभायमान होता है ॥ २ ॥

तं प्रेक्ष्य राजा वरयन्नुपागतं ततोऽब्रवीज्जानपदान्समागतान् ।
सिंहोन्नतांसोऽयमतीवरूपवान्प्रदृश्यते को नु नरर्षभो युवा ॥ ३ ॥

तब उस महापराक्रमीको आते देख राजाने नगर निवासियोंसे विस्मित होकर पूछा, यह सिंहके समान ऊंचे कंधोंवाला पराक्रमी अति रूपवान् युवा और श्रेष्ठ पुरुष कौन आ रहा है ? ॥३॥

अदृष्टपूर्वः पुरुषो रविर्यथा वितर्कयन्नास्य लभामि संपदम् ।
तथास्य चित्तं ह्यपि संवितर्कयन्नरर्षभस्याद्य न यामि तत्त्वतः ॥ ४ ॥

मैंने इस पुरुषको पहले कभी नहीं देखा, मुझे जान पडता है कि यह साक्षात् सूर्य है, मैं अनेक तर्क वितर्क करने पर भी इसकी शोभाकी सीमा नहीं देख पा रहा । पर्याप्त सोच विचार करनेके बावजूद भी मैं इस नरश्रेष्ठकी अभिलाषाको ठीक ठीक नहीं जान पा रहा ॥ ४ ॥

ततो विराटं समुपेत्य पाण्डवः सुदीनरूपो वचनं महामनाः ।
उवाच सूदोऽस्मि नरेन्द्र बल्लवो भजस्व मां व्यञ्जनकारमुत्तमम् ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर मनस्वी पाण्डुपुत्र भीमसेन राजाके पास आकर गम्भीर स्वरसे निर्भयता पूर्वक ये वचन कहने लगे, हे पृथ्वीनाथ ! मैं रसोईया हूँ, मेरा नाम बल्लव है, मैं बहुत उत्तम रसोई बनाना जानता हूं । आप मुझे नौकर रखिये ॥ ५ ॥

विराट उवाच

न सूदतां मानद श्रद्दधामि ते सहस्रनेत्रप्रतिमो हि दृश्यसे ।
श्रिया च रूपेण च विक्रमेण च प्रभासि तातानवरो नरेष्विह ॥ ६ ॥

विराट बोले– हे सम्मानके योग्य ! तुम रसोइया हो, मुझे इस बातका निश्चय नहीं होता, क्योंकि तुम तेज, रूप और पराक्रमके कारण साक्षात् इन्द्रके समान दीख पडते हो । हे तात ! तुम यहांके अवर राजाओंमें अपना तेज फैला रहे हो ॥ ६ ॥

भीम उवाच

नरेन्द्र सूदः परिचारकोऽस्मि ते जानामि सूपान्प्रथमेन केवलान् ।
आस्वादिता ये नृपते पुराभवन्युधिष्ठिरेणापि नृपेण सर्वशः ॥ ७ ॥

भीम बोले– हे पृथ्वीनाथ ! मैं केवल आपका रसोइया और नौकर हूँ, हे राजन् ! मैं उन उत्तम भोजनोंको ही बनाना जानता हूँ, जिनको पहले समयमें राजा युधिष्ठिर खाते थे ॥ ७ ॥

बलेन तुल्यश्च न विद्यते मया नियुद्धशीलश्च सदैव पार्थिव ।
गजैश्च सिंहैश्च समेयिवानहं सदा करिष्यामि तवानघ प्रियम् ॥ ८ ॥

हे राजन् ! मेरे समान पृथ्वीपर कोई बलवान् नहीं है, मल्लयुद्धका मुझे अच्छा अभ्यास है । हे पृथ्वीनाथ ! मैं मतवाले सिंह और हाथियोंका भी सामना कर चुका हूँ । हे निष्पाप ! मैं सदा आपका प्रिय करूँगा ॥ ८ ॥

विराट उवाच

ददामि ते हन्त वरं महानसे तथा च कुर्याः कुशलं हि भाषसे ।
न चैव मन्ये तव कर्म तत्समं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ ९ ॥

विराट बोले– यद्यपि तुम उस कर्मके योग्य नहीं हो, जिसकी तुम इच्छा करते हो, तुम तो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके महाराज होनेके योग्य हो, तथापि तुम्हारी इच्छानुसार प्रसन्न होकर तुम्हें वही वरदान देता हूँ, तुम रसोईमें भोजन बनाओ, तुम बहुत प्रिय बात करते हो ॥ ९ ॥

यथा हि कामस्तव तत्तथा कृतं महानसे त्वं भव मे पुरस्कृतः ।
नराश्च ये तत्र ममोचिताः पुरा भवस्व तेषामधिपो मया कृतः ॥ १० ॥

तुम्हारी जैसी इच्छा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें नियुक्त करता हूँ, आजसे तुम हमारे चौकेके पूर्ण अधिकारी हुए । जितने पुराने रसोइया मैंने वहां नियुक्त किए हैं, तुम्हें उन सबका स्वामी मैंने बना दिया है ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा स भीमो विहितो महानसे विराटराज्ञो दयितोऽभवद्दृढम् ।
उवास राजन्न च तं पृथग्जनो बुबोध तत्रानुचरश्च कश्चन ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ १७६ ॥

वैशम्पायन बोले–राजा विराटने भीमको रसोईका काम दे दिया और भीम इस प्रकार विराट का प्यारा हो गया, हे राजन् ! इस प्रकार उस विराटके राज्यमें भीम रहने लगा, परंतु साधारणजन और जो राज्यके नौकर चाकर थे कोई भी उसको न जान सके ॥ ११ ॥

॥ श्रीमहाभारके विराटपर्वमें सातवाँ अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥ १७६ ॥

: ८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः केशान्समुत्क्षिप्य वेल्लिताग्राननिन्दितान् ।
जुगूहे दक्षिणे पार्श्वे मृदूनसितलोचना ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजा जनमेजय ! इसके पश्चात् अपने घुंघराले कोमल और अनिन्दित बालोंको काली आंखोंवाली (द्रौपदी) ने दाईं ओर छिपा लिया ॥ १ ॥

वासश्च परिधायैकं कृष्णं सुमलिनं महत् ।
कृत्वा वेषं च सैरन्ध्र्याः कृष्णा व्यचरदार्तवत् ॥ २ ॥

फिर एक महामैली धोती पहन ली और दासीका वेष बनाकर दुखियाकी भांति गलियोंमें रुदन करती हुई वह कृष्णा द्रौपदी फिरने लगी ॥ २ ॥

तां नराः परिधावन्तीं स्त्रियश्च समुपाद्रवन् ।
अपृच्छंश्चैव तां दृष्ट्वा का त्वं किं च चिकीर्षसि ॥ ३ ॥

तब अनेक स्त्री और पुरुष इधर उधर घूमनेवाली उस द्रौपदीके पीछे फिरने लगे और उसे देखकर पूछने लगे कि तू कौन है ? और क्या करना चाहती है ? ॥ ३ ॥

सा तानुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता ।
कर्म चेच्छामि वै कर्तुं तस्य यो मां पुपुक्षति ॥ ४ ॥

हे राजन् ! द्रौपदीने उन सबसे कहा कि मैं दासी होकर यहां आई हूं, और नौकरी चाहती हूं । जो मेरा पोषण करेगा, उसीके यहां नौकरी भी करूंगी ॥ ४ ॥

तस्या रूपेण वेषेण श्लक्ष्णया च तथा गिरा ।
नाश्रद्दधत तां दासीमन्नहेतोरुपस्थिताम् ॥ ५ ॥

परन्तु द्रौपदीका रूप, तेज और मीठी वाणीको देखकर किसीको निश्चय नहीं होता था कि

विराटस्य तु कैकेयी भार्या परमसंमता।
अवलोकयन्ती ददृशे प्रासादाद्द्रुपदात्मजाम् ॥ ६ ॥

राजा विराटकी बडी प्यारी स्त्री, कैकेय देशके राजाकी पुत्री, सुदेष्णाने अपने प्रासादसे इधर उधर देखते हुए द्रौपदीको देखा ॥ ६ ॥

सा समीक्ष्य तथारूपामनाथामेकवाससम्।
समाहूयाब्रवीद्भद्रे का त्वं किं च चिकीर्षसि ॥ ७ ॥

उसने ऐसी रूपवती और अनाथ स्त्रीको एक वस्त्र धारण किये देखकर उसे बुलाया और पूछा— हे भद्रे ! तू कौन है और क्या करना चाहती है ? ॥ ७ ॥

सा तामुवाच राजेन्द्र सैरन्ध्र्यहमुपागता।
कर्म चेच्छाम्यहं कर्तुं तस्य यो मां पुपुक्षति ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तब द्रौपदीने उससे कहा— मैं दासी होकर यहां आई हूं, जो मेरी उपजीविका चलावेगा, मेरा पोषण करेगा, उसका काम करूंगी ॥ ८ ॥

सुदेष्णोवाच

नैवंरूपा भवन्त्येव यथा वदसि भामिनि।
प्रेषयन्ति च वै दासीर्दासांश्चैवंविधान्बहून् ॥ ९ ॥

रानी सुदेष्णा बोली—हे भामिनि ! जैसा तुम कह रही हो वैसी तो तुम मालूम देती नहीं। तुम तो अनेक दास और दासियोंको कार्यमें लगानेवाली उनकी स्वामिनी जैसी दीखती हो ॥ ९ ॥

गूढगुल्फा संहतोरुस्त्रिगम्भीरा षडुन्नता।
रक्ता पञ्चसु रक्तेषु हंसगद्गदभाषिणी ॥ १० ॥

ढकी हुई एडीवाली, आपसमें चिपटी हुई जांघोंवाली, बुद्धि, वचन और नाभि इन तीन स्थानोंमें गंभीर, आंखें, नाक, हृदय, कान, स्तन और हृदय इन छै जगहों पर उन्नत, तलवे, हथेली, नाखून, नेत्र और जिह्वा इन पांच जगहों पर ललाईसे युक्त हंसके समान शब्दवाली ॥ १० ॥

सुकेशी सुस्तनी श्यामा पीनश्रोणिपयोधरा।
तेन तेनैव संपन्ना काश्मीरीव तुरंगमा ॥ ११ ॥

उत्तमकेश, उत्तम स्तन, थोडी अवस्था, कठोर स्तन और नितम्बयुक्त दासी नहीं होती है। तुम उन उत्तम लक्षणोंसे भरी हो, जो कश्मीर देशकी स्त्रियोंमें होते हैं ॥ ११ ॥

स्वरालपक्ष्मनयना बिम्बोष्ठी तनुमध्यमा ।
कम्बुग्रीवा गूढशिरा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १२ ॥

टेढी भौंहोंसे युक्त नेत्रवाली, पके हुए कुन्दरुके फलके समान लाल होठोंवाली और अत्यन्त पतली कमरवाली और शङ्खके समान गर्दनवाली हो; तुम्हारी नाडियां नहीं दीखतीं, तुम्हारा मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके तुल्य है ॥ १२ ॥

का त्वं ब्रूहि यथा भद्रे नासि दासी कथंचन ।
यक्षी वा यदि वा देवी गन्धर्वी यदि वाप्सराः ॥ १३ ॥

हे कल्याणी ! बताओ, तुम कौन हो ? तुम दासी तो किसी भी तरह नहीं हो । क्या तुम यक्षी हो, गन्धर्वी हो, देवी हो, या अप्सरा हो ॥ १३ ॥

अलंबुसा मिश्रकेशी पुंडरीकाथ मालिनी ।
इंद्राणी वारुणी वा त्वं त्वष्टुर्धातुः प्रजापतेः ।
देव्यो देवेषु विख्यातास्तासां त्वं कतमा शुभे ॥ १४ ॥

क्या तुम अलंबुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका, मालिनी, या साक्षात् वारुणी वा इन्द्राणीही हो ? अथवा तुम त्वष्टा या धाता प्रजापतिकी पत्नी हो ? हे सुन्दरी ! क्या तुम साक्षात् देवियोंमेंसे कोई हो ? क्योंकि रूपमें देवी ही प्रशंसाके योग्य हैं ॥ १४ ॥

द्रौपद्युवाच

नास्मि देवी न गंधर्वी नासुरी न च राक्षसी ।
सैरन्ध्री तु भुजिष्यास्मि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १५ ॥

द्रौपदी बोली– मैं तुमसे सत्य कहती हूं कि मैं न कोई देवी हूँ, न गन्धर्वस्त्री हूं, न राक्षसी हूँ या नाही असुरी हूं, मैं तो सैरन्ध्री दासी हूं ॥ १५ ॥

केशाञ्जानाम्यहं कर्तुं पिंषे साधु विलेपनम् ।
ग्रथयिष्ये विचित्राश्च स्रजः परमशोभनाः ॥ १६ ॥

मैं बाल बांधनेकी बहुत अच्छी रीति जानती हूं । हे सुन्दरी ! मैं उबटन लगाना भी अच्छा जानती हूं, हे कल्याणी ! विचित्र और बहुत सुन्दर सुन्दर मालायें भी बनाना जानती हूं ॥ १६ ॥

आराधयं सत्यभामां कृष्णस्य महिषीं प्रियाम् ।
कृष्णां च भार्यां पाण्डूनां कुरूणामेकसुन्दरीम् ॥ १७ ॥

मैंने बहुत दिन तक महाराज कृष्णकी प्यारी पटरानी सत्यभामाकी सेवा की है । पाण्डवोंकी प्यारी स्त्री और जगत्में एक सुन्दरी द्रौपदीके साथ भी मैं बहुत दिनतक रही हूं ॥१७॥

तत्र तत्र चराम्येवं लभमाना सुशोभनम् ।
वासांसि यावच्च लभे तावत्तावद्रमे तथा ॥ १८ ॥

उनसे उत्तम अन्न और उत्तम वस्त्र पाकर वहां बहुत ज्यादा आनन्द प्राप्त करती हुई घूमती थी ॥ १८ ॥

मालिनीत्येव मे नाम स्वयं देवी चकार सा ।
साहमभ्यागता देवि सुदेष्णे त्वन्निवेशनम् ॥ १९ ॥

साक्षात् सुन्दरी द्रौपदीने स्वयं ही मेरा नाम मालिनी रक्खा था । हे देवी सुदेष्णा ! वही मैं अब तुम्हारे घरपर आई हूं ॥ १९ ॥

सुदेष्णोवाच

मूर्ध्नि त्वां वासयेयं वै संशयो मे न विद्यते ।
न चेदिहतु राजा त्वां गच्छेत्सर्वेण चेतसा ॥ २० ॥

सुदेष्णा बोले– यदि राजा सर्वतोमना तुम्हें न चाहने लग जाएं, तो मैं तुम्हें अपने सिर पर धारण करूंगी, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ २० ॥

स्त्रियो राजकुले पश्य याश्चेमा मम वेश्मनि ।
प्रसक्तास्त्वां निरीक्षन्ते पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २१ ॥

देखो यह जितनी राजकुलकी स्त्रियां हैं, तथा मेरे घरकी स्त्रियां हैं, सब तुम्हारे रूपको देखकर मोहित हो रही हैं । तब ऐसा पुरुष कौन होगा जो तुमको देखकर मोहित न होगा अथवा जिसको तुम मोह न लो ॥ २१ ॥

वृक्षांश्चावस्थितान्पश्य य इमे मम वेश्मनि ।
तेऽपि त्वां संनमन्तीव पुमांसं कं न मोहयेः ॥ २२ ॥

हे सुन्दरी ! देखो, हमारे घरके जितने वृक्ष खडे हुए हैं, ये सब भी तुमको देखकर नीचे झुके जाते हैं, तब फिर तुम कौनसे पुरुषको मोहित नहीं कर सकती हो ? ॥ २२ ॥

राजा विराटः सुश्रोणि दृष्ट्वा वपुरमानुषम् ।
विहाय मां वरारोहे त्वां गच्छेत्सर्वचेतसा ॥ २३ ॥

हे उत्तम कमरवाली तथा श्रेष्ठ मुखवाली ! राजा विराट तुम्हारे इस अमानुषीय अर्थात् दैवी रूपको देखकर मुझे छोडकर सर्वतोमना तुम पर आसक्त होजाएगा ॥ २३ ॥

यं हि त्वमनवद्याङ्गि नरमायतलोचने ।
प्रसक्तमभिवीक्षेथाः स कामवशगो भवेत् ॥ २४ ॥

हे विशाल नेत्रे ! हे सुन्दर अंगवाली ! तुम जिस किसीको भी आसक्तिसे देखोगी, वह ही कामके अत्यन्त वशमें होजायेगा ॥ २४ ॥

यश्च त्वां सततं पश्येत्पुरुषश्चारुहासिनि ।
एवं सर्वानवद्याङ्गि स चानङ्गवशो भवेत् ॥ २५ ॥

हे सुन्दरतासे हंसनेवाली ! हे अनिन्दित अंगोंवाली ! जो पुरुष प्रति दिन तुम्हें देखेगा वह अवश्य ही कामदेवके वशमें हो जाएगा ॥ २५ ॥

यथा कर्कटकी गर्भमाधत्ते मृत्युमात्मनः ।
तथाविधमहं मन्ये वासं तव शुचिस्मिते ॥ २६ ॥

जैसे केकडेकी स्त्री अपना सर्वनाश करनेके लिये ही गर्भ धारण करती है वैसेही, हे चारुहासिनि ! मैं तुमको राजभवनमें समझती हुई रहनेकी आज्ञा देती हूं ॥ २६ ॥

द्रौपद्युवाच

नाऽस्मि लभ्या विराटेन न चान्येन कथंचन ।
गन्धर्वाः पतयो मह्यं युवानः पञ्च भामिनि ॥ २७ ॥

द्रौपदी बोली– हे सुन्दरि ! मुझे विराटराज अथवा और कोई पुरुष कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि, हे भामिनि ! मेरे पति पांच युवा गन्धर्व हैं ॥ २७ ॥

पुत्रा गंधर्वराजस्य महासत्त्वस्य कस्यचित् ।
रक्षन्ति ते च मां नित्यं दुःखाचारा तथा न्वहम् ॥ २८ ॥

किसी महाबलशाली गंधर्वके वे पांचों पुत्र सदा मेरी रक्षा करते हैं इसी कारण बडे कष्टसे मुझे व्रतोंका पालन करना पडता है ॥ २८ ॥

यो मे न दद्यादुच्छिष्टं न च पादौ प्रधावयेत् ।
प्रीयेयुस्तेन वासेन गन्धर्वाः पतयो मम ॥ २९ ॥

जो मुझसे पैर नहीं धुलावेगा और जूठा भोजन नहीं देगा, उसीसे मेरे पति गन्धर्व प्रसन्न रहते हैं ॥ २९ ॥

यो हि मां पुरुषो गृद्ध्येद्यथान्याः प्राकृतस्त्रियः ।
तामेव स ततो रात्रिं प्रविशेदपरां तनुम् ॥ ३० ॥

जो पुरुष मुझे साधारण स्त्रीके समान प्राप्त करना चाहता है, वह उसी रात्रिको दूसरेके शरीरमें चला जाएगा, अर्थात् मर जाएगा ॥ ३० ॥

न चाप्यहं चालयितुं शक्या केनचिदङ्गने ।
दुःखशीला हि गन्धर्वास्ते च मे बलवत्तराः ॥ ३१ ॥

हे सुन्दरि ! मेरे चित्तको कोई डांवाडोल नहीं कर सकता है, वे मेरे गन्धर्व बहुत ही ज्यादा बलशाली और दुःखको सहन करनेवाले हैं ॥ ३१ ॥

सुदेष्णोवाच

एवं त्वां वासयिष्यामि यथा त्वं नन्दिनीच्छसि ।
न च पादौ न चोच्छिष्टं स्प्रक्ष्यासि त्वं कथंचन ॥ ३२ ॥

सुदेष्णा बोली– हे सुन्दरि ! तुम जैसे चाहती हो वैसेही तुम्हें घरमें रखूंगी मैं तुमसे कभी पैर और जूठे बर्त्तन नहीं धुलाऊंगी ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं कृष्णा विराटस्य भार्यया परिसान्त्विता ।
न चैनां वेद तत्रान्यस्तत्त्वेन जनमेजय ॥ ३३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ २०९ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! जनमेजय ! इस प्रकार धर्मचारिणी द्रौपदी राजा विराटकी स्त्रीके द्वारा सान्त्वना पाकर वहां रहने लगी, परन्तु किसीने उसको जाना नहीं ॥ ३३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें आठवां अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥ २०९ ॥

: ९ :

वैशम्पायन उवाच

सहदेवोऽपि गोपानां कृत्वा वेषमनुत्तमम् ।
भाषां चैषां समास्थाय विराटमुपयादथ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! सहदेव भी ग्वालेका असुन्दर वेष बनाकर और ग्वालोंकी जैसी भाषा बोलते हुए राजा विराटके पास पहुंचे ॥ १ ॥

तमायान्तमभिप्रेक्ष्य भ्राजमानं नरर्षभम् ।
समुपस्थाय वै राजा पप्रच्छ कुरुनन्दनम् ॥ २ ॥

उस अत्यन्त तेजस्वी नरश्रेष्ठ सहदेवको आते हुए देखकर राजा विराट खडे हुए और उस कुरुनन्दन सहदेवसे कहने लगे ॥ २ ॥

कस्य वा त्वं कुतो वा त्वं किं वा तात चिकीर्षसि ।
न हि मे दृष्टपूर्वस्त्वं तत्त्वं ब्रूहि नरर्षभ ॥ ३ ॥

हे पुरुषसिंह ! तुम कौन हो ? किसके पुत्र हो ? तुम कहांसे आए हो ? और क्या करना चाहते हो ? हमने तुमको पहले कभी नहीं देखा, तुम सत्य कहो कि कौन हो ? ॥ ३ ॥

स प्राप्य राजानममित्रतापनस्ततोऽब्रवीन्मेघमहौघनिःस्वनः ।
वैश्योऽस्मि नाम्नाहमरिष्टनेमिर्गोसंख्य आसं कुरुपुंगवानाम् ॥ ४ ॥

तब राजा विराटके पास जाकर शत्रुसंहारक सहदेव मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोले, मैं जातिका वैश्य हूं, मेरा नाम अरिष्टनेमि है, मैं पहले समयमें कुरुश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिरके यहां गायोंकी संख्या किया करता था ॥ ४ ॥

वस्तुं त्वयीच्छामि विशां वरिष्ठ तान्राजसिंहान्न हि वेद्मि पार्थान् ।
न शक्यते जीवितुमन्यकर्मणा न च त्वदन्यो मम रोचते नृपः ॥ ५ ॥

अब मैं नहीं जानता कि वे राजसिंह पाण्डव लोग कहां और कैसे हैं ? हे राजन् ! आप जानते हैं कि विना जीविकाके कोई नहीं जी सकता और मुझे आपके सिवा दूसरे राजामें भक्ति भी नहीं है, अतः, हे राजश्रेष्ठ ! मैं आपके राज्यमें रहना चाहता हूं ॥ ५ ॥

विराट उवाच

त्वं ब्राह्मणो यदि वा क्षत्रियोऽसि समुद्रनेमीश्वररूपवानसि ।
आचक्ष्व मे तत्त्वममित्रकर्शन न वैश्यकर्म त्वयि विद्यते समम् ॥ ६ ॥

विराट बोले– हे शत्रुनाशक ! तुम या तो ब्राह्मण हो या कोई क्षत्रिय हो, क्योंकि वैश्योंका कर्म तुममें अनुचित जान पडता है । अस्तु, जो भी हो, तुम समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके राजा हो, तुम बहुत सुन्दर रूपवाले हो, अब तुम हमसे सत्य कहो कि तुम कौन हो ? ॥ ६ ॥

कस्यासि राज्ञो विषयादिहागतः किं चापि शिल्पं तव विद्यते कृतम् ।
कथं त्वमस्मासु निवत्स्यसे सदा वदस्व किं चापि तवेह वेतनम् ॥ ७ ॥

तुम कौनसे राजाके राज्यसे हमारे यहां आये हो ? और कौन कौनसी विद्या (हुनर) जानते हो ? हमारे यहां किस प्रकारसे रहोगे और यहां रहते हुए क्या वेतन लोगे ? ॥७॥

सहदेव उवाच

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः ।
तस्याष्टशतसाहस्रा गवां वर्गाः शतं शताः ॥ ८ ॥

सहदेव बोले– पांचों पाण्डवोंमें महाराज युधिष्ठिर सबसे बडे थे, उनके यहां आठके सौ सौ गौके एक वर्ग इस प्रकार आठ लाख ॥ ८ ॥

अपरे दशसाहस्रा द्विस्तावन्तस्तथापरे ।
तेषां गोसंख्य आसं वै तन्तिपालेति मां विदुः ॥ ९ ॥

और सौ हजार एवं दो सौ हजार गौओंके वर्ग थे । मैं उन सबका स्वामी और संख्या करनेवाला था, इसीलिये मुझको तन्तिपालके नामसे लोग जानते थे ॥ ९ ॥

×

भूतं भव्यं भविष्यच्च यच्च संख्यागतं क्वचित्।
न मेऽस्त्यविदितं किंचित्समंताद्दशयोजनम् ॥ १० ॥

भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानमें स्थित सब संख्याको मैं जानता हूं। चारों ओर दस दस योजन तक जितनी गायें रहती हैं वे मेरे लिए अज्ञात नहीं हैं अर्थात् उन सबको मैं जानता हूं ॥ १० ॥

गुणाः सुविदिता ह्यासन्मम तस्य महात्मनः।
आसीच्च स मया तुष्टः कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥

महात्मा युधिष्ठिर ही मेरे गुणोंको जानते थे इस कारण कुरुराज युधिष्ठिर मुझसे हमेशा प्रसन्न रहते थे ॥ ११ ॥

क्षिप्रं हि गावो बहुला भवन्ति न तासु रोगो भवतीह कश्चित्।
तैस्तैरुपायैर्विदितं मयैतदेतानि शिल्पानि मयि स्थितानि ॥ १२ ॥

मैं उन सब उपायोंको भी जानता हूं जिनसे गौओंकी वृद्धि शीघ्र हो, और कभी रोग न हो मुझमें यही सब गुण विद्यमान हैं ॥ १२ ॥

वृषभांश्चापि जानामि राजन्पूजितलक्षणान्।
येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते ॥ १३ ॥

हे राजन्! मैं उत्तम लक्षणोंसे युक्त उन वृषभोंको भी पहचानता हूँ, जिनके मूत्रको सूंघने मात्रसे वन्ध्याके भी पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

विराट उवाच

शतं सहस्राणि समाहितानि वर्णस्य वर्णस्य विनिश्चिता गुणैः।
पशून्सपालान्भवते ददाम्यहं त्वदाश्रया मे पशवो भवन्त्विह ॥ १४ ॥

राजा विराट बोले– हमारे यहां एक लक्ष गायें हैं, उनमें कुछ एक रंगके हैं और कुछ मिश्र-वर्णके हैं। उन सब गायों और उनकी देखरेख करनेवाले गोपालोंको तुम्हारे अधीन करता हूँ। मेरे सब पशु तुम्हारे निरीक्षणमें रहें ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा स राज्ञोऽविदितो विशां पते उवास तत्रैव सुखं नरेश्वरः।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथंचन प्रादाच्च तस्मै भरणं यथेप्सितम् ॥ १५ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ २२४ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन्! पुरुषश्रेष्ठ सहदेव राजा विराटसे इस प्रकार वार्त्तालाप करके सुखपूर्वक उनके यहां रहने लगे। राजाने उनकी इच्छानुसार जीविका कर दी, परन्तु किसीने उनको पहचाना नहीं ॥ १५ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें नववाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥ २२४ ॥

: १० :

वैशम्पायन उवाच

अथापरोऽदृश्यत रूपसंपदा स्त्रीणामलंकारधरो बृहत्पुमान् ।
प्राकारवप्रे प्रतिमुच्य कुण्डले दीर्घे च कम्बू परिहाटके शुभे ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! इसके बाद राजमहलके किनारे स्त्रियोंके समान अलंकार पहने हुए और रूपसे भी स्त्रियोंके समान दिखाई देनेवाला एक बडा भारी पुरुष दिखाई पडा । उसके कानमें सोनेके बडे बडे कुण्डल और हाथमें सोनेसे मढे हुए शंखके कंगन थे ॥ १ ॥

बहूंश्च दीर्घांश्च विकीर्य मूर्धजान्महाभुजो वारणमत्तविक्रमः ।
गतेन भूमिमभिकंपयंस्तदा विराटमासाद्य सभासमीपतः ॥ २ ॥

बडी बडी भुजाओंवाला वह पुरुष अपने बालोंको फैला करके सभामें बैठे हुए राजा विराटकी तरफ जाते हुए पराक्रममें मतवाले हाथीके समान अपनी गति पृथ्वीको कंपाता था ॥२॥

तं प्रेक्ष्य राजोपगतं सभातले सत्रप्रतिच्छन्नमरिप्रमाथिनम् ।
विराजमानं परमेण वर्चसा सुतं महेन्द्रस्य गजेन्द्रविक्रमम् ॥ ३ ॥

ऐरावतके समान जिसका पराक्रम है, जो इन्द्रका पुत्र होनेके कारण अत्यन्त तेजसे प्रदीप्त, और शत्रुको नष्ट करनेका सामर्थ्य स्वयंमें होते हुए भी जिसने भेष बदल कर उसे छिपा लिया है, ऐसे उस अर्जुनको राजा विराटने सभामें आते हुए देखा ॥ ३ ॥

सर्वानपृच्छच्च समीपचारिणः कुतोऽयमायाति न मे पुरा श्रुतः ।
न चैनमूचुर्विदितं तदा नराः सविस्मितं वाक्यमिदं नृपोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥

राजाने अपने पासमें रहनेवालोंसे पूछा, यह कहासे आ रहा है ? मैंने इसको कभी नहीं देखा और न सुना है ? तब उन लोगोंने भी कहा कि इसके बारेमें कुछ भी मालूम नहीं है । तब राजाने आश्चर्य करके उससे यह वचन कहा ॥ ४ ॥

सर्वोपपन्नः पुरुषो मनोरमः श्यामो युवा वारणयूथपोपमः ।
विमुच्य कम्बू परिहाटके शुभे विमुच्य वेणीमपिनह्य कुंडले ॥ ५ ॥

तुम महापराक्रमी मनोरम रूपवाले, श्याम, युवा और हस्तिराजके समान बली हो, तुम (हाथमें पहने हुए) शंखके सोनेसे अलंकृत कंगन और कुण्डल निकाल कर और जूडा खोलकर बाल खुले करो ॥ ५ ॥

शिखी सुकेशः परिधाय चान्यथा भवस्व धन्वी कवची शरी तथा ।
आरुह्य यानं परिधावतां भवान्सुतैः समो मे भव वा मया समः ॥ ६ ॥

इन चीजोंके बजाय तुम फूलोंकी माला धारण करके और धनुष, बाण और कवचका धारण करनेवाले बनो । आजसे तुम वाहनों पर चढकर घूमो, तुम मेरे पुत्र वा मेरे तुल्य होकर यहां निवास करो ॥ ६ ॥

वृद्धो ह्यहं वै परिहारकामः सर्वान्मत्स्यांस्तरसा पालयस्व ।
नैवंविधाः क्लीबरूपा भवंति कथंचनेति प्रतिभाति मे मनः ॥ ७ ॥

मैं बहुत बूढा हो गया हूं, इसलिये अपने राज्यका भार सब मन्त्रियोंको देना चाहता हूं, आजसे तुम्हीं इस मत्स्यदेशका राज्य करो। मेरे मनमें आता है कि तुम्हारे जैसे पुरुष किसी भी तरह नपुंसक नहीं होते ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच

गायामि नृत्याम्यथ वादयामि भद्रोऽस्मि नृत्ते कुशलोऽस्मि गीते ।
त्वमुत्तरायाः परिदत्स्व मां स्वयं भवामि देव्या नरदेव नर्तकः ॥ ८ ॥

अर्जुन बोले– हे नरदेव ! मैं गाना, नाचना और बजाना जानता हूं । मैं नाचनेमें निपुण हूँ और गानेमें भी कुशल हूँ । इसलिये आप मुझे उत्तराके घरमें रहनेकी आज्ञा दीजिये । हे राजन् ! मैं राजपुत्रीको नाचना गाना सिखलाऊंगा ॥ ८ ॥

इदं तु रूपं मम येन किं नु तत्प्रकीर्तयित्वा भृशशोकवर्धनम् ।
बृहन्नडां वै नरदेव विद्धि मां सुतं सुतां वा पितृमातृवर्जिताम् ॥ ९ ॥

मेरा यह रूप जिस कारण हुआ, उसे बताकर क्या फायदा, उसे कहना तो अतिशय शोक बढाना ही है । हे राजन् ! तुम मुझे माता और पितासे हीन बृहन्नडा नामका पुत्र या पुत्री समझो ॥ ९ ॥

विराट उवाच

ददामि ते हन्त वरं बृहन्नडे सुतां च मे नर्तय याश्च तादृशीः ।
इदं तु ते कर्म समं न मे मतं समुद्रनेमिं पृथिवीं त्वमर्हसि ॥ १० ॥

विराट बोले– हे बृहन्नडे ! जो तुमने वरदान मांगा, तुम्हें हम वही देते हैं, तुम हमारी पुत्री और उनकी सखियोंको नाचना सिखाओ, परन्तु मेरी बुद्धिमें यह काम तुम्हारे योग्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि तुम समस्त पृथ्वीके राजा होनेके योग्य हो ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

बृहन्नडां तामभिवीक्ष्य मत्स्यराट् कलासु नृत्ते च तथैव वादिते ।
अपुंस्त्वमप्यस्य निशम्य च स्थिरं ततः कुमारीपुरमुत्ससर्ज तम् ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकारसे राजा विराटने बृहन्नडाको बजाने नाचने और गानेके काममें निपुण देखकर और यह सुनकर कि यह बृहन्नडा निश्चयसे नपुंसक है, उसको राजपुत्रीके घरमें जानेकी आज्ञा दे दी ॥ ११ ॥

स शिक्षयामास च गीतवादितं सुतां विराटस्य धनंजयः प्रभुः ।
सखीश्च तस्याः परिचारिकास्तथा प्रियश्च तासां स बभूव पाण्डवः ॥ १२ ॥
वह सामर्थ्यशाली अर्जुन भी उसी दिनसे राजा विराटकी पुत्री उसकी सखियों और दासियोंको नाचना, गाना और बजाना सिखलाने लगे और शीघ्रही अर्जुन उन सबके बहुत प्रिय बन गए ॥ १२ ॥

तथा स सत्रेण धनंजयोऽवसत्प्रियाणि कुर्वन्सह ताभिरात्मवान् ।
तथागतं तत्र न जज्ञिरे जना बहिश्चरा वाप्यथवान्तरेचराः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ २३७ ॥

इस प्रकार इन्द्रियजित् अर्जुन छलपूर्ण वेष बनाकर राजपुत्री उनकी सखियोंकी सेवा करने लगे, परन्तु किसी बाहर वा भीतरके पुरुषने उन्हें पहचाना नहीं ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें दसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १० ॥ २३७ ॥

: ११ :

वैशम्पायन उवाच

अथापरोऽदृश्यत पाण्डवः प्रभुर्विराटराज्ञस्तुरगान्समीक्षतः ।
तमापतन्तं ददृशे पृथग्जनो विमुक्तमभ्रादिव सूर्यमण्डलम् ॥ १ ॥
वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! उसी समय एक और पाण्डव (नकुल), राजा विराट जब अपने घोडे देख रहे थे, तब पहुंचे, इनको आते हुए देखकर लोग शंका करने लगे, कि यह क्या मेघोंमेंसे निकल कर सूर्य उदय हुआ है ? ॥ १ ॥

स वै हयानैक्षत तांस्ततस्ततः समीक्षमाणं च ददर्श मत्स्यराट् ।
ततोऽब्रवीत्ताननुगानमित्रहा कुतोऽयमायाति नरोऽमरप्रभः ॥ २ ॥
वह जगह जगहपर खडे हुए घोडोंको देखता था, घोडोंकी तरफ टकटकी लगाकर देखते हुए उसे राजा विराटने देखा, तब शत्रुनाशक विराटने अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि यह देव-तुल्य पुरुष कहांसे चला आता है ? ॥ २ ॥

अयं हयान्वीक्षति मामकान्दृढं ध्रुवं हयज्ञो भविता विचक्षणः ।
प्रवेश्यतामेष समीपमाशु मे विभाति वीरो हि यथामरस्तथा ॥ ३ ॥
यह हमारे घोडोंको देख रहा है, इससे जान पडता है कि यह बुद्धिमान् पुरुष निश्चय ही घोडोंकी विद्या जाननेवाला है, इसको शीघ्र हमारे पास ले आओ, हमको जान पडता है कि यह देवतुल्य पुरुष महावीर है ॥ ३ ॥

अभ्येत्य राजानममित्रहाब्रवीज्जयोऽस्तु ते पार्थिव भद्रमस्तु च।
हयेषु युक्तो नृप संमतः सदा तवाश्वसूतो निपुणो भवाम्यहम् ॥ ४ ॥
इतनेहीमें शत्रुनाशक नकुल राजाके पास पहुंच गये और कहने लगे, हे महाराज ! आपकी जय हो और आपका कल्याण हो। हे राजन् ! मैं घोडोंकी सब विद्याको जानता हूं और रथ हांकनेमें परम निपुण हूं। आपके यहां सारथीकी नौकरी करना चाहता हूं ॥ ४ ॥

विराट उवाच

ददामि यानानि धनं निवेशनं ममाश्वसूतो भवितुं त्वमर्हसि।
कुतोऽसि कस्यासि कथं त्वमागतः प्रब्रूहि शिल्पं तव विद्यते च यत् ॥ ५ ॥
विराट बोले– मैं तुम्हें वाहन, भोजन, धन और स्थान देता हूं; तुम मेरे सारथी होनेके योग्य हो। कहांसे आये हो, और किसके पुत्र हो ? और यहां कैसे आए हो ? तुम्हें जो विद्या आती हो, कहो ॥ ५ ॥

नकुल उवाच

पञ्चानां पाण्डुपुत्राणां ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः।
तेनाहमश्वेषु पुरा प्रकृतः शत्रुकर्शन ॥ ६ ॥
नकुल बोले– पांचों पाण्डवोंमें बडे भाईका नाम महाराज युधिष्ठिर था, हे शत्रुनाशक, उन्होंने मुझे घोडोंका स्वामी बनाया था ॥ ६ ॥

अश्वानां प्रकृतिं वेद्मि विनयं चापि सर्वशः।
दुष्टानां प्रतिपत्तिं च कृत्स्नं चैव चिकित्सितम् ॥ ७ ॥
मैं घोडोंके स्वभाव और उनको सिखाना अच्छी तरह जानता हूँ, दुष्ट घोडोंको ठीक करने और उनके सब रोगोंकी चिकिसा भी जानता हूं ॥ ७ ॥

न कातरं स्यान्मम जातु वाहनं न मेऽस्ति दुष्टा वडवा कुतो हयाः।
जनस्तु मामाह स चापि पाण्डवो युधिष्ठिरो ग्रन्थिकमेव नामतः ॥ ८ ॥
मेरा घोडा कभी कायर नहीं हो सकता, मेरी सिखाई हुई घोडी कभी दुष्ट नहीं होगी, फिर घोडोंके बारेमें तो कहना ही क्या ? मुझको राजा युधिष्ठिर और सब लोग ग्रन्थिक नामसे पुकारते थे ॥ ८ ॥

विराट उवाच

यदस्ति किंचिन्मम वाजिवाहनं तदस्तु सर्वं त्वदधीनमद्य वै।
ये चापि केचिन्मम वाजियोजकास्त्वदाश्रयाः सारथयश्च सन्तु मे ॥ ९ ॥
विराट बोले– मेरे जितने भी घोडे और वाहन हैं, तथा मेरे जितने भी घोडेकी देखभाल करनेवाले और सारथि हैं, वे सब आजसे तुम्हारे अधीन और आश्रयमें रहें ॥ ९ ॥

इदं तवेष्टं यदि वै सुरोपम ब्रवीहि यत्ते प्रसमीक्षितं वसु ।
न तेऽनुरूपं हयकर्म विद्यते प्रभासि राजेव हि संमतो मम ॥ १० ॥

हे देवतुल्य ! यह कर्म तुम्हारे योग्य नहीं है, तुम जगत्‌में राजा होनेके योग्य हो, परन्तु यदि तुम्हारी ऐसीही इच्छा है तो तुम कहो तुम्हें कितना धन चाहिये ? ॥ १० ॥

युधिष्ठिरस्येव हि दर्शनेन मे समं तवेदं प्रियदर्श दर्शनम् ।
कथं तु भृत्यैः स विनाकृतो वने वसत्यनिन्द्यो रमते च पांडवः ॥ ११ ॥

तुम्हारे दर्शनसे मुझे आज युधिष्ठिरके दर्शन जितना ही आनन्द हो रहा है, जिनकी कोई निन्दा नहीं करता, ऐसा वे पाण्डुपुत्र सेवकहीन होकर वनमें किस तरह होंगे और किस तरह आनन्दित होते होंगे ? ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा स गंधर्ववरोपमो युवा विराटराज्ञा मुदितेन पूजितः ।
न चैनमन्येऽपि विदुः कथंचन प्रियाभिरामं विचरन्तमन्तरा ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकार गन्धर्वराजाके समान सुन्दर एवं प्रिय नकुलको राजा विराट ने प्रसन्न होकर अपने घरमें रक्खा, शहरमें घूमते हुए भी उस सुन्दर पुरुषको कोई पहचान नहीं सका ॥ १२ ॥

एवं हि मत्स्ये न्यवसन्त पाण्डवा यथाप्रतिज्ञाभिरमोघदर्शनाः ।
अज्ञातचर्यां व्यचरन्समाहिताः समुद्रनेमीपतयोऽतिदुःखिताः ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ २५० ॥

जिनका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता, ऐसे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीके स्वामी पाण्डव बहुत दुःखी होकर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार इकट्ठे होकर अज्ञातवासका पालन करते हुए मत्स्य देशमें रहने लगे ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥ २५० ॥

: १२ :

जनमेजय उवाच

एवं मत्स्यस्यनगरे वसन्तस्तत्र पाण्डवाः ।
अत ऊर्ध्वं महावीर्याः किमकुर्वन्त वै द्विज ॥ १ ॥

जनमेजय बोले– हे द्विज ! इस प्रकार महापराक्रमी पाण्डव लोग विराट नगरमें रहकर क्या करते थे, हमसे कहिये ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः कुरुनन्दनाः।
आराधयन्तो राजानं यदकुर्वन्त तच्छृणु ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— कुरुनन्दन छिपकर विराट नगरमें रहकर राजाको प्रसन्न करते हुए जो जो कर्म करते थे, उसे सुनिये ॥ २ ॥

युधिष्ठिरः सभास्तारः सभ्यानामभवत्प्रियः।
तथैव च विराटस्य सपुत्रस्य विशां पते ॥ ३ ॥

हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर सभासदोंके बडे प्रिय हुए, उसी प्रकार वे राजा विराट और उनके पुत्रोंके प्रिय सभासद् हुए ॥ ३ ॥

स ह्यक्षहृदयज्ञस्तान्क्रीडयामास पाण्डवः।
अक्षवत्यां यथाकामं सूत्रबद्धानिव द्विजान् ॥ ४ ॥

जुवेके जाननेवाले राजा युधिष्ठिर विराट और उनके पुत्रोंको इस प्रकार खेल खिलाने लगे, जैसे कि कोई सूतमें बँधे हुए पक्षियोंको खिलाता है ॥ ४ ॥

अज्ञातं च विराटस्य विजित्य वसु धर्मराट्।
भ्रातृभ्यः पुरुषव्याघ्रो यथार्हं स प्रयच्छति ॥ ५ ॥

धर्मराज पुरुषसिंह युधिष्ठिर राजासे धन जीतकर राजा विराटसे छिपाकर अपने भाइयोंको उचित धन देने लगे ॥ ५ ॥

भीमसेनोऽपि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च।
अतिसृष्टानि मत्स्येन विक्रीणाति युधिष्ठिरे ॥ ६ ॥

भीमसेन भी उत्तम उत्तम भोजन और मांस चौकेमें, जो राजासे बचते थे, युधिष्ठिरको बेच जाते थे ॥ ६ ॥

वासांसि परिजीर्णानि लब्धान्यन्तःपुरेऽर्जुनः।
विक्रीणानश्च सर्वेभ्यः पांडवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ७ ॥

अर्जुनको रनिवासमें जो पुराने वस्त्र मिलते थे, वे सब बेचते समय अपने भाइयोंको भी दे देते थ ॥ ७ ॥

सहदेवोऽपि गोपानां वेषमास्थाय पाण्डवः।
दधि क्षीरं घृतं चैव पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ८ ॥

सहदेव पाण्डुपुत्र ग्वालेका वेष बनाकर पाण्डवोंको दूध दही और घृत दे जाते थे ॥ ८ ॥

नकुलोऽपि धनं लब्ध्वा कृते कर्मणि वाजिनाम्।
तुष्टे तस्मिन्नरपतौ पाण्डवेभ्यः प्रयच्छति ॥ ९ ॥

नकुल भी घोडोंके काम करनेपर राजा विराटको प्रसन्न करके जो धन पाते थे, वह सब अपने भाईयोंको दे जाते थे ॥ ९ ॥

कृष्णापि सर्वान्भ्रातॄंस्तान्निरीक्षन्ती तपस्विनी।
यथा पुनरविज्ञाता तथा चरति भामिनी ॥ १० ॥

तपस्विनी द्रौपदी उन पतियोंको देखकर प्रसन्न होती थी और जिससे कि कोई न पहचाने ऐसा यत्न करती थी ॥ १० ॥

एवं संपादयन्तस्ते तथान्योन्यं महारथाः।
प्रेक्षमाणास्तदा कृष्णामूषुश्छन्ना नराधिप ॥ ११ ॥

हे राजन् ! इस प्रकार एक दूसरेकी सहायता करते हुए महारथी पाण्डव लोग वहां द्रौपदीको देखते हुए छिपकर रहते थे ॥ ११ ॥

अथ मासे चतुर्थे तु ब्रह्मणः सुमहोत्सवः।
आसीत्समृद्धो मत्स्येषु पुरुषाणां सुसंमतः ॥ १२ ॥

चौथे महीनेमें उस देशमें ब्रह्माका एक बडा भारी मेला हुआ, उस मेलेमें सब देशोंके अनेक लोग उपस्थित हुए ॥ १२ ॥

तत्र मल्लाः समापेतुर्दिग्भ्यो राजन्सहस्रशः।
महाकाया महावीर्याः कालखञ्जा इवासुराः ॥ १३ ॥

हे राजन् ! उस मेलेमें सब देशोंसे सहस्रों मल्ल लोग भी आये। उसमें कालखञ्ज दैत्योंके समान महान् आकारवाले बल और वीर्यसे भरपूर, वीर्यके कारण मतवाले, बलके कारण उग्र, राजासे सत्कृत हुए ॥ १३ ॥

वीर्योन्नद्धा बलोदग्रा राज्ञा समभिपूजिताः।
सिंहस्कन्धकटिग्रीवाः स्ववदाता मनस्विनः।
असकृल्लब्धलक्षास्ते रङ्गे पार्थिवसंनिधौ ॥ १४ ॥

सिंहके समान कन्धे और विशाल कमर और गर्दनवाले अनेक मल्ल आये, वे सभी निर्मल और मनस्वी थे। इसके अलावा उन्होंने अखाडेमें राजाके पास रहनेवाले पहलवानों पर अनेक बार जय प्राप्त की थी ॥ १४ ॥

तेषामेको महानासीत्सर्वमल्लान्समाह्वयत्।
आवल्गमानं तं रङ्गे नोपतिष्ठति कश्चन ॥ १५ ॥

उनमें एक बडा बलवान् मल्ल था, वह सब मल्लोंको ललकारने लगा। परन्तु ताल ठोकते हुए उस मल्लसे लडनेको कोई खडा न हुआ ॥ १५ ॥

×

यदा सर्वे विमनसस्ते मल्ला हतचेतसः।
अथ सूदेन तं मल्लं योधयामास मत्स्यराट् ॥ १६ ॥
जब अखाडेका कोई मल्ल उससे न लड सका, और सबके दिल टूट गये, राजा विराटने तब उस मल्लको रसोइये (भीम) से लडाया ॥ १६ ॥

चोद्यमानस्ततो भीमो दुःखेनैवाकरोन्मतिम्।
न हि शक्नोति विवृते प्रत्याख्यातुं नराधिपम् ॥ १७ ॥
बार बार कहे जाने पर भीम दुःखसे लडनेको उद्यत हुए। क्योंकि सबके समक्ष वह राजाकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥

ततः स पुरुषव्याघ्रः शार्दूलशिथिलं चरन्।
प्रविवेश महारङ्गं विराटमभिहर्षयन् ॥ १८ ॥
तब पुरुषसिंह भीम मतवाले शार्दूलके समान चालसे चलते हुए और राजाको हर्षित करते हुए अखाडेमें पहुंचे ॥ १८ ॥

बबन्ध कक्ष्यां कौन्तेयस्ततस्तं हर्षयञ्जनम्।
ततस्तं वृत्रसंकाशं भीमो मल्लं समाह्वयत् ॥ १९ ॥
तदनन्तर कुन्तीपुत्र भीमने लोगोंमें हर्षको पैदा करते हुए कच्छ बांधा और महाबलवान् और वृत्रासुरके समान शरीरवाले मल्लको पुकारा ॥ १९ ॥

तावुभौ सुमहोत्साहावुभौ तीव्रपराक्रमौ।
मत्ताविव महाकायौ वारणौ षष्टिहायनौ ॥ २० ॥
भीम और जीमूत नामक दोनों मल्ल महा उत्साही, महा पराक्रमी, महाबली और साठ वर्षके मतवाले हाथियोंके समान थे ॥ २० ॥

चकर्ष दोर्भ्यामुत्पाट्य भीमो मल्लममित्रहा।
विनदन्तमभिक्रोशञ्शार्दूल इव वारणम् ॥ २१ ॥
शत्रुनाशन भीम गर्जकर उस गर्जते हुए मल्लको अपने हाथोंसे उठा कर पटककर उसे इस प्रकारसे खींचने लगे जैसे कोई शार्दूल हाथीको खींचता है ॥ २१ ॥

तमुद्यम्य महाबाहुर्भ्रामयामास वीर्यवान्।
ततो मल्लाश्च मत्स्याश्च विस्मयं चक्रिरे परम् ॥ २२ ॥
महाबाहु महाबलवान् भीमने जब उस मल्लको हाथोंमें उठा कर घुमाया, तब सब योद्धा और राजा विराट अत्यधिक आश्चर्य करने लगे ॥ २२ ॥

भ्रामयित्वा शतगुणं गतसत्त्वमचेतनम्।
प्रत्यपिंषन्महाबाहुर्मल्लं भुवि वृकोदरः ॥ २३ ॥
तब महाभुजोंवाले भीमने उस मल्लको सैकडों बार घुमाया और शक्तिहीन तथा चेतना-रहित देखकर पृथ्वी पर पटककर पीस दिया ॥ २३ ॥

तस्मिन्विनिहते मल्ले जीमूते लोकविश्रुते ।
विराटः परमं हर्षमगच्छद्बान्धवैः सह ॥ २४ ॥

उस लोकप्रसिद्ध जीमूत नामक मल्लके मारनेसे राजा विराट अपने बान्धवोंके सहित भीमसेन पर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥

संहर्षात्प्रददौ वित्तं बहु राजा महामनाः ।
बल्लवाय महारङ्गे यथा वैश्रवणस्तथा ॥ २५ ॥

अनन्तर कुबेरके तुल्य महामनस्वी राजा विराटने प्रसन्न होकर अखाडेमें ही भीमसेनको बहुतसा धन दिया ॥ २५ ॥

एवं स सुबहून्मल्लान्पुरुषांश्च महाबलान् ।
विनिघ्नन्मत्स्यराजस्य प्रीतिमावहदुत्तमाम् ॥ २६ ॥

इस प्रकार भीमने अनेक महाबलवान् मल्लोंको और शक्तिशाली पुरुषोंको मारकर राजा विराटकी अत्यधिक प्रीति प्राप्त कर ली ॥ २६ ॥

यदास्य तुल्यः पुरुषो न कश्चित्तत्र विद्यते ।
ततो व्याघ्रैश्च सिंहैश्च द्विरदैश्चाप्ययोधयत् ॥ २७ ॥

जब शक्तिमें भीमके समान वहां कोई पुरुष न रहा तो राजा विराटने भीमको सिंह, व्याघ्र और मतवाले हाथियोंसे लडाना आरम्भ किया ॥ २७ ॥

पुनरन्तःपुरगतः स्त्रीणां मध्ये वृकोदरः ।
योध्यते स विराटेन सिंहैर्मत्तैर्महाबलैः ॥ २८ ॥

इसके पश्चात् राजा विराटने भीमसेनको अपने सङ्ग रनिवासमें ले जाकर महा मतवाले बली सिंहोंसे लडाया ॥ २८ ॥

बीभत्सुरपि गीतेन स्वनृत्तेन च पाण्डवः ।
विराटं तोषयामास सर्वाश्चान्तःपुरस्त्रियः ॥ २९ ॥

दूसरी तरफ पाण्डुपुत्र अर्जुनने भी अपने नाचने और गानेसे राजा विराट और रनिवासकी सब स्त्रियोंको प्रसन्न कर लिया ॥ २९ ॥

अश्वैर्विनीतैर्जवनैस्तत्र तत्र समागतैः ।
तोषयामास नकुलो राजानं राजसत्तम ॥ ३० ॥

हे राजश्रेष्ठ ! नकुलने भी शीघ्र चलनेवाले इधर उधरसे आये हुए घोडोंको उत्तम शिक्षा देकर राजा विराटको प्रसन्न कर लिया ॥ ३० ॥

तस्मै प्रदेयं प्रायच्छत्प्रीतो राजा धनं बहु ।
विनीतान्वृषभान्दृष्ट्वा सहदेवस्य चाभिभो ॥ ३१ ॥

पुरुषसिंह विराटने प्रसन्न होकर अपने बैलोंको अच्छा देखकर सहदेवको देने योग्य अनेक पदार्थ और बहुतसा धन दिया ॥ ३१ ॥

एवं ते न्यवसंस्तत्र प्रच्छन्नाः पुरुषर्षभाः ।
कर्माणि तस्य कुर्वाणा विराटनृपतेस्तदा ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ समाप्तं वैराटपर्व ॥ २८२ ॥

पुरुषसिंह पाण्डव लोग राजा विराटके कर्म करते हुए इस प्रकार छिपकर विराट नगरमें रहने लगे ॥ ३२ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥ वैराटपर्व समाप्त ॥ २८२ ॥

: १३ :

वैशम्पायन उवाच

वसमानेषु पार्थेषु मत्स्यस्य नगरे तदा ।
महारथेषु छन्नेषु मासा दश समत्ययुः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार महारथी पाण्डवोंको छिपकर मत्स्य नगरमें राजा विराटके घरमें रहते हुए दस महीने बीत गये ॥ १ ॥

याज्ञसेनी सुदेष्णां तु शुश्रूषंती विशां पते ।
अवसत्परिचारार्हा सुदुःखं जनमेजय ॥ २ ॥

हे राजन् जनमेजय ! दूसरोंसे सेवा कराने योग्य द्रौपदी रानी सुदेष्णाकी सेवा करती हुई दुःखसे दिन काटने लगी ॥ २ ॥

तथा चरन्तीं पाञ्चालीं सुदेष्णाया निवेशने ।
सेनापतिर्विराटस्य ददर्श जलजाननाम् ॥ ३ ॥

द्रौपदी जब सुदेष्णा रानीके महलमें उसकी सेवा कर रही थी, तब महाबलवान् राजा विराटके सेनापतिने कमलके समान सुन्दर मुखवाली उस द्रौपदीको देख लिया ॥ ३ ॥

तां दृष्ट्वा देवगर्भाभां चरन्तीं देवतामिव ।
कीचकः कामयामास कामबाणप्रपीडितः ॥ ४ ॥

देवताओंकी स्त्रियोंके समान उसे रूपवती और देवताके समान सुन्दर देखकर कीचक कामसे व्याकुल होकर उसे प्राप्त करनेका यत्न करने लगा ॥ ४ ॥

स तु कामाग्निसंतप्तः सुदेष्णामभिगम्य वै।
प्रहसन्निव सेनानीरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

सेनापति कीचक कामरूपी अग्निसे जलता हुआ सुदेष्णाके पास पहुंचा और हंसकर यह वचन कहने लगा ॥ ५ ॥

नेयं पुरा जातु मयेह दृष्टा राज्ञो विराटस्य निवेशने शुभा।
रूपेण चोन्मादयतीव मां भृशं गन्धेन जाता मदिरेव भामिनी ॥ ६ ॥

मैंने इस सुन्दरीको पहले कभी राजा विराटके रनिवासमें नहीं देखा था। इसने अपने रूपसे मुझे अत्यधिक उन्मत्त कर दिया है, यह सुन्दरी अपने शरीरके उत्तम गंधसे मुझे मदिराके समान उन्मत्त बनाये दे रही है ॥ ६ ॥

का देवरूपा हृदयंगमा शुभे आचक्ष्व मे का च कुतश्च शोभना।
चित्तं हि निर्मथ्य करोति मां वशे न चान्यदत्रौषधमद्य मे मतम् ॥ ७ ॥

हे कल्याणी! तुम कहो कि यह देवांगना जैसी हृदयमें निवास करनेवाली सुन्दरी कौन है और कहांसे आई है? यह मेरे चित्तको मथकर अपने वशमें कर रही है, और इस रोग की कोई औषधि नहीं मिलती ऐसा मेरा विचार है ॥ ७ ॥

अहो तवेयं परिचारिका शुभा प्रत्यग्ररूपा प्रतिभाति मामियम्।
अयुक्तरूपं हि करोति कर्म ते प्रशास्तु मां यच्च ममास्ति किंचन ॥ ८ ॥

अहो ऐसी सुन्दरी महारूपवती तुम्हारी दासी है। पर मुझे इसका रूप दिव्य दिखाई दे रहा है। मेरी बुद्धिमें यह तुम्हारी दासी होनेके योग्य नहीं है, इससे यह मेरी और मेरे सर्वस्व की स्वामिनी बने ॥ ८ ॥

प्रभूतनागाश्वरथं महाधनं समृद्धियुक्तं बहुपानभोजनम्।
मनोहरं काञ्चनचित्रभूषणं गृहं महच्छोभयतामियं मम ॥ ९ ॥

मैं चाहता हूं कि यह अनेक हाथी, घोडे, रथ धन, दास दासी, अनेक प्रकारके अन्न, पान और सोनेके मनोहर भूषणोंसे भरे हुए मेरे घरको सुशोभित करे ॥ ९ ॥

ततः सुदेष्णामनुमन्त्र्य कीचकस्ततः समभ्येत्य नराधिपात्मजाम्।
उवाच कृष्णामभिसान्त्वयंस्तदा मृगेन्द्रकन्यामिव जंबुको वने ॥ १० ॥

तब सुदेष्णासे सलाह और स्वीकृति लेकर कीचक द्रुपदराज पुत्रीके पास जाकर शान्तिपूर्वक उसीं प्रकार बात करने लगा, जैसे कोई सियार वनमें सिंहनीसे कुछ कहता हो ॥ १० ॥

इदं च रूपं प्रथमं च ते वयो निरर्थकं केवलमद्य भामिनि।
अधार्यमाणा स्रगिवोत्तमा यथा न शोभसे सुंदरि शोभना सती ॥ ११ ॥

हे भामिनि! इस समय तुम्हारा यह सब रूप और तुम्हारी युवावस्था निरर्थक ही जान पडती है, क्योंकि धारण न की हुई उत्तम मालाके समान तुम सुन्दर होकर भी अच्छी नहीं लगती हो ॥ ११ ॥

त्यजामि दारान्मम ये पुरातना भवन्तु दास्यस्तव चारुहासिनि ।
अहं च ते सुंदरि दासवत्स्थितः सदा भविष्ये वशगो वरानने ॥ १२ ॥

हे सुन्दरि ! हे सुन्दर हंसनेवाली ! मैं तुम्हारे लिये अपनी पुरानी सब स्त्रियोंको छोड दूंगा और वे सब तुम्हारी दासी होकर रहेंगी । हे कमलके समान सुन्दर मुखवाली सुन्दरि ! मैं तुम्हारे सामने दासके समान खडा ही हूं और सदा तुम्हारे वशमें रहूंगा ॥ १२ ॥

द्रौपद्युवाच

अप्रार्थनीयामिह मां सूतपुत्राभिमन्यसे ।
विहीनवर्णां सैरन्ध्रीं बीभत्सां केशकारिकाम् ॥ १३ ॥

द्रौपदी बोली– हे सूतपुत्र ! बाल गूँथनेवाली हीनवर्णमें उत्पन्न हुई, दासी बनी हुई, निकृष्ट कर्म करनेवाली, जूडे बांधनेवाली तथा तुम्हारे लिए अयोग्य मुझे तुम क्यों चाहते हो ? ॥ १३ ॥

परदारास्मि भद्रं ते न युक्तं त्वयि सांप्रतम् ।
दयिताः प्राणिनां दारा धर्मं समनुचिन्तय ॥ १४ ॥

सूतपुत्र ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम जानते हो कि स्त्री अपने पतिओंकी बहुत प्यारी होती हैं और मैं दूसरेकी स्त्री हूं । इसलिये तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है । तुम धर्मका विचार करो ॥ १४ ॥

परदारे न ते बुद्धिर्जातु कार्या कथंचन ।
विवर्जनं ह्यकार्याणामेतत्सुपुरुषव्रतम् ॥ १५ ॥

तुमको उचित है कि दूसरी स्त्रियोंके ऊपर कभी आसक्त मत होओ, क्योंकि बुरे कर्मको छोडना ही उत्तम पुरुषोंका धर्म है ॥ १५ ॥

मिथ्याभिगृध्नो हि नरः पापात्मा मोहमास्थितः ।
अयशः प्राप्नुयाद्घोरं सुमहत्प्राप्नुयाद्भयम् ॥ १६ ॥

जो पापी मोहमें फंस कर भूलसे कर्म करता है, वह या तो घोर अयशको प्राप्त होता है अथवा महान् भयको ॥ १६ ॥

मा सूतपुत्र हृष्यस्व माद्य त्यक्ष्यसि जीवितम् ।
दुर्लभामभिमन्वानो मां वीरैरभिरक्षिताम् ॥ १७ ॥

हे सूतपुत्र ! तू मोहमें मत पड, अपना प्राणका नाश मत कर । मैं वीरोंसे रक्षित अतएव दुष्प्राप्य हूं, ऐसी ही मुझे समझ ले ॥ १७ ॥

न चाप्यहं त्वया शक्या गंधर्वाः पतयो मम।
ते त्वां निहन्युः कुपिताः साध्वलं मा व्यनीनशः ॥ १८ ॥

मैं तुझको प्राप्त नहीं हो सकती हूं, मेरे पति गन्धर्व हैं, वे क्रोध करके तुझे मार डालेंगे। इससे भला बनकर रह, नाश मोल मत ले ॥ १८ ॥

अशक्यरूपैः पुरुषैरध्वानं गन्तुमिच्छसि।
यथा निश्चेतनो बालः कूलस्थः कूलमुत्तरम्।
तर्तुमिच्छति मंदात्मा तथा त्वं कर्तुमिच्छसि ॥ १९ ॥

तू उस मार्ग पर चलना चाहता है, जिस पर मनुष्य नहीं चल सकते। तू वैसा ही काम करना चाहता है, जैसे नदीके एक तटपर बैठा हुआ मूर्ख बालक तैरकर दूसरे तटपर जानेकी इच्छा करता है ॥ १९ ॥

अन्तर्महीं वा यदि वोर्ध्वमुत्पतेः समुद्रपारं यदि वा प्रधावसि।
तथापि तेषां न विमोक्षमर्हसि प्रमाथिनो देवसुता हि मे वराः ॥ २० ॥

तू चाहे पृथ्वीके भीतर चला जा या आकाशमें उड जा या समुद्रके पार भाग जा, तो भी तू महाबली शत्रुनाशक मेरे पति देवपुत्रोंसे छुटकारा नहीं पा सकेगा ॥ २० ॥

त्वं कालरात्रीमिव कश्चिदातुरः किं मां दृढं प्रार्थयसेऽद्य कीचक।
किं मातुरङ्के शयितो यथा शिशुश्चन्द्रं जिघृक्षुरिव मन्यसे हि माम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ३०३ ॥

रे कीचक! जैसे कोई व्याधिग्रस्त कालरात्रिको चाहता है उसी प्रकार तू मुझे मत चाह। क्या तूने मुझको वैसा ही सुलभ समझा है, जैसे माँकी गोदमें सोया हुआ बच्चा आकाशके चन्द्रमाको सुलभ समझता है? ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥ ३०३ ॥

: १४ :

वैशम्पायन उवाच

प्रत्याख्यातो राजपुत्र्या सुदेष्णां कीचकोऽब्रवीत्।
अमर्यादेन कामेन घोरेणाऽभिपरिप्लुतः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजा जनमेजय! जब द्रौपदीने कीचकसे इन्कार कर दिया तो वह असह्य घोर कामसे पीडित होकर सुदेष्णाके पास जाकर कहने लगा ॥ १ ॥

यथा कैकेयि सैरन्ध्र्या समेयां त्वद्विधीयताम्।
तां सुदेष्णे परीप्सस्व माहं प्राणान्प्रहासिषम् ॥ २ ॥

हे कैकेयी (केकय राजपुत्री) सुदेष्णे! जिस प्रकारसे सैरन्ध्री मेरे वशमें हो जावे, तुम वैसा ही यत्न करो। मेरे वशमें न होगी तो मैं अपने प्राणोंको छोड दूंगा ॥ २ ॥

तस्य तां बहुशः श्रुत्वा वाचं विलपतस्तदा।
विराटमहिषी देवी कृपां चक्रे मनस्विनी ॥ ३ ॥

महामनस्विनी विराटकी रानीने उस रोते बिलखते हुए कीचकके वचन सुनकर उसके ऊपर कृपा की ॥ ३ ॥

स्वमर्थमभिसंधाय तस्यार्थमनुचिन्त्य च।
उद्वेगं चैव कृष्णायाः सुदेष्णा सूतमब्रवीत् ॥ ४ ॥

अपने मनमें निश्चय करके द्रौपदी और सूतपुत्रके मिलानेका यत्न विचार कर सुदेष्णा कीचकसे बोली ॥ ४ ॥

पर्विणीं त्वं समुद्दिश्य सुरामन्नं च कारय।
तत्रैनां प्रेषयिष्यामि सुराहारीं तवान्तिकम् ॥ ५ ॥

तुम किसी त्यौहार पर मद्य और रसान्न बनवाना, मैं सैरंध्रीको मद्य लेने तुम्हारे घरमें भेजूंगी ॥ ५ ॥

तत्र संप्रेषितामेनां विजने निरवग्रहाम्।
सान्त्वयेथा यथाकामं सान्त्व्यमाना रमेद्यदि ॥ ६ ॥

तब तुम बाधारहित एकान्त स्थानमें इसको ले जाना, वहां इसे शान्त करके अपनी इच्छानुसार विहार करना ॥ ६ ॥

कीचकस्तु गृहं गत्वा भगिन्या वचनात्तदा।
सुरामाहारयामास राजार्हां सुपरिस्रुताम् ॥ ७ ॥

अपनी बहिनके वचन सुन कर कीचक वहांसे घर चला गया, और अपने घरमें राजाओंके योग्य उत्तम मद्य तथा अनेक प्रकारके उत्तम भोजन बनवाये ॥ ७ ॥

आजौरभ्रं च सुभृशं बहूंश्चोच्चावचान्मृगान्।
कारयामास कुशलैरन्नपानं सुशोभनम् ॥ ८ ॥

अनेक तरहके अच्छे अच्छे हिरण और सुन्दर सुन्दर भोजन उसने उत्तम रसोइयोंसे बनवाये ॥ ८ ॥

तस्मिन्कृते तदा देवी कीचकेनोपमन्त्रिता।
सुदेष्णा प्रेषयामास सैरन्ध्रीं कीचकालयम् ॥ ९ ॥

भोजन बनानेके पश्चात् कीचकसे सलाह लेकर सुदेष्णाने सैरन्ध्रीको कीचकके घर भेजा ॥९॥

सुदेष्णोवाच

उत्तिष्ठ गच्छ सैरन्ध्रि कीचकस्य निवेशनम् ।
पानमानय कल्याणि पिपासा मां प्रबाधते ॥ १० ॥

सुदेष्णा बोली— हे सैरन्ध्रि ! उठो, कीचकके घर जाओ । हे कल्याणि ! मुझे बहुत प्यास लगी हुई है, इसलिए वहां जाकर सुरा ले आओ ॥ १० ॥

द्रौपद्युवाच

न गच्छेयमहं तस्य राजपुत्रि निवेशनम् ।
त्वमेव राज्ञि जानासि यथा स निरपत्रपः ॥ ११ ॥

द्रौपदी बोली— हे रानी ! तुम स्वयं जानती हो कि वह कैसा निर्लज्ज पुरुष है ? इसलिये हे राजपुत्री ! मैं उसके घर नहीं जाऊंगी ॥ ११ ॥

न चाहमनवद्यांगि तव वेश्मनि भामिनि ।
कामवृत्ता भविष्यामि पतीनां व्यभिचारिणी ॥ १२ ॥

हे सुन्दरि भामिनि ! मैं तुम्हारे यहां रहकर अपने पतियोंके विरुद्ध स्वैरिणी होकर व्यभिचार नहीं करूंगी । मैं कभी कामक्रीडा नहीं करूंगी ॥ १२ ॥

त्वं चैव देवि जानासि यथा स समयः कृतः ।
प्रविशन्त्या मया पूर्वं तव वेश्मनि भामिनि ॥ १३ ॥

हे देवि ! मैंने पहले तुम्हारे घरमें आनेके समय जैसी प्रतिज्ञा की थी वह तुम जानती ही हो ॥ १३ ॥

कीचकश्च सुकेशान्ते मूढो मदनदर्पितः ।
सोऽवमंस्यति मां दृष्ट्वा न यास्ये तत्र शोभने ॥ १४ ॥

हे सुन्दर केशोंवाली ! मूर्ख कीचक कामके वशमें हो गया है, और वह मुझे देखकर अधर्म करेगा, अतः वहाँ मैं नहीं जाऊंगी ॥ १४ ॥

सन्ति बह्व्यस्तव प्रेष्या राजपुत्रि वशानुगाः ।
अन्यां प्रेषय भद्रं ते स हि मामवमंस्यते ॥ १५ ॥

हे देवि ! और भी अनेकों दासियां तुम्हारे यहां हैं जो तुम्हारे अधीन हैं, तुम दूसरी किसीको भेज दो, तुम्हारा कल्याण हो, मेरा वह अपमान करेगा ॥ १५ ॥

सुदेष्णोवाच

नैव त्वां जातु हिंस्यात्स इतः संप्रेषितां मया।

वैशम्पायन उवाच

इत्यस्याः प्रददौ कांस्यं सपिधानं हिरण्मयम् ॥ १६ ॥

सुदेष्णा बोली– हे सैरन्ध्री ! यहांसे मेरे द्वारा भेजी गई तुम्हें वह मार नहीं डालेगा। वैशम्पायन बोले– सुदेष्णाने यह कह कर ढकनेके सहित सोनेसे मढा हुआ कासेका पात्र द्रौपदीके हाथमें दे दिया ॥ १६ ॥

सा शङ्कमाना रुदती दैवं शरणमीयुषी।
प्रातिष्ठत सुराहारी कीचकस्य निवेशनम् ॥ १७ ॥

तब द्रौपदी शङ्का करती, रोती और परमात्माकी शरणमें पडी हुई मद्यका पात्र लेकर कीचकके घरको चली ॥ १७ ॥

द्रौपद्युवाच

यथाहमन्यं पाण्डुभ्यो नाभिजानामि कंचन।
तेन सत्येन मां प्राप्तां कीचको मा वशे कृथाः ॥ १८ ॥

मार्गमें द्रौपदी बोली– मैंने अपने पति पाण्डवोंके अतिरिक्त आजतक दूसरे पुरुषका स्मरण नहीं किया है, वही सत्य मेरी रक्षा करे, जिससे कीचक मेरे साथ कुछ अत्याचार न करने पावे ॥ १८ ॥

वैशम्पायन उवाच

उपातिष्ठत सा सूर्यं मुहूर्तमबला ततः।
स तस्यास्तनुमध्यायाः सर्वं सूर्योऽवबुद्धवान् ॥ १९ ॥

वैशम्पायन बोले– उस समय द्रौपदीने थोडे समय तक सूर्यका ध्यान किया। तब सूर्यने सुन्दरी द्रौपदीकी सब अभिलाषाको जान लिया ॥ १९ ॥

अन्तर्हितं ततस्तस्या रक्षो रक्षार्थमादिशत्।
तच्चैनां नाजहात्तत्र सर्वावस्थास्वनिन्दिताम् ॥ २० ॥

और एक गुप्त राक्षसको उसकी रक्षाके लिये भेज दिया। उस राक्षसने निन्दारहित द्रौपदीको कहीं भी अकेली नहीं छोडी ॥ २० ॥

तां मृगीमिव वित्रस्तां दृष्ट्वा कृष्णां समीपगाम्।
उदतिष्ठन्मुदा सूतो नावं लब्ध्वेव पारगः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ३२४ ॥

डरी हुई हरिणीके समान द्रौपदीको अपने पास आते हुए देख कीचक प्रसन्न होकर इस प्रकार उठा जैसे कोई नदीके पार जानेका अभिलाषी बटोही नावको देखकर उठता है ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥ ३२४ ॥

: १५ :

कीचक उवाच

स्वागतं ते सुकेशान्ते सुव्युष्टा रजनी मम ।
स्वामिनी त्वमनुप्राप्ता प्रकुरुष्व मम प्रियम् ॥ १ ॥

कीचक बोले– हे सुन्दर केशोंवाली ! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूं, यह मेरी रात्रि सुखसे बीतेगी है । अब तुम मेरी स्वामिनी होकर आई हो । मेरे प्रिय कामोंको सिद्ध करो ॥ १ ॥

सुवर्णमालाः कम्बूश्च कुण्डले परिहाटके ।
आहरन्तु च वस्त्राणि कौशिकान्यजिनानि च ॥ २ ॥
अस्ति मे शयनं शुभ्रं त्वदर्थमुपकल्पितम् ।
एहि तत्र मया सार्धं पिबस्व मधुमाधवीम् ॥ ३ ॥

तुम्हारे लिये अनेकों सोनेकी मालायें, शंख, कुण्डल, उत्तम उत्तम रेशमके वस्त्र और मृगचर्म आदि ले आएं। तुम्हारे लिये यह दिव्य शय्या तैयार कर रक्खी है । तुम यहां आओ और मेरे साथ माधवीका मद्य पीओ ॥ २–३ ॥

द्रौपद्युवाच

अप्रैषीद्राजपुत्री मां सुराहारीं तवान्तिकम् ।
पानमानय मे क्षिप्रं पिपासा मेति चाब्रवीत् ॥ ४ ॥

द्रौपदी बोली– मद्यको लानेवाली मुझे राजपुत्री सुदेष्णाने तुम्हारे पास भेजा है, और यह कहा है, कि मुझे बहुत प्यास लगी है, इसलिए मेरे लिए जल्दी ही पेय ले आओ ॥ ४ ॥

कीचक उवाच

अन्या भद्रे नयिष्यन्ति राजपुत्र्याः परिस्रुतम् ॥ ५ ॥

कीचक बोला–हे भद्रे ! रानीके कहे कामको करनेके लिये और भी अनेक दासियाँ हैं ॥५॥

वैशम्पायन उवाच

इत्येनां दक्षिणे पाणौ सूतपुत्रः परामृशत् ।
सा गृहीता विधुन्वाना भूमावाक्षिप्य कीचकम् ।
सभां शरणमाधावद्यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– यह कहकर कीचकने द्रौपदीका दाहिना हाथ पकड लिया इस प्रकार कीचकके द्वारा पकड लिए जाने पर उस कीचकको झटक कर भूमि पर गिरा कर सभामें, जहां राजा और युधिष्ठिर बैठे हुए थे, शरणमें गई ॥ ६ ॥

तां कीचकः प्रधावन्तीं केशपक्षे परामृशत्।
अथैनां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदावधीत् ॥ ७ ॥

कीचकने भागती हुई द्रौपदीके बाल पकड लिये, और पृथ्वीमें गिरा कर राजाके देखते हुए ही लात मारी ॥ ७ ॥

ततो योऽसौ तदार्केण राक्षसः संनियोजितः।
स कीचकमपोवाह वातवेगेन भारत ॥ ८ ॥

हे भारत ! सूर्यने जो द्रौपदीकी रक्षाके लिये राक्षस भेजा था, उसने वायुवेगसे कीचकको उठा कर दूर फेंक दिया ॥ ८ ॥

स पपात तदा भूमौ रक्षोबलसमाहतः।
विघूर्णमानो निश्चेष्टश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ९ ॥

राक्षसके बलसे चोट खाकर कीचक बेसुध हो चक्कर मारता हुआ इस प्रकार पृथ्वी पर गिरा, जैसे जड कट जानेसे वृक्ष ॥ ९ ॥

तां चासीनौ ददृशतुर्भीमसेनयुधिष्ठिरौ।
अमृष्यमाणौ कृष्णायाः कीचकेन पदा वधम् ॥ १० ॥

सभामें बैठे हुए महाराज युधिष्ठिर और भीमसेनने उसकी यह दशा देखी, परन्तु कीचक द्वारा किये हुए द्रौपदीके इस अपमानको वे सह न सके ॥ १० ॥

तस्य भीमो वधप्रेप्सुः कीचकस्य दुरात्मनः।
दन्तैर्दन्तांस्तदा रोषान्निष्पिपेष महामनाः ॥ ११ ॥

दुष्ट कीचकके मारनेकी इच्छासे बलवान् भीमसेन क्रोधसे अपने दांत पीसने लगे ॥ ११ ॥

अथाङ्गुष्ठेनावमृद्नादङ्गुष्ठं तस्य धर्मराट्।
प्रबोधनभयाद्राजन्भीमस्य प्रत्यषेधयत् ॥ १२ ॥

उसी समय महाराज युधिष्ठिरने प्रत्यक्ष होनेके भयसे अपने अंगूठेसे भीमके अंगूठेको दबाकर भीमको रोक दिया ॥ १२ ॥

सा सभाद्वारमासाद्य रुदती मत्स्यमब्रवीत्।
अवेक्षमाणा सुश्रोणी पतींस्तान्दीनचेतसः ॥ १३ ॥

द्रौपदी सभाके द्वार पर आकर रोती और अपने दुःखी पतियोंको देखती हुई विराट राजसे कहने लगी ॥ १३ ॥

आकारमभिरक्षन्ती प्रतिज्ञां धर्मसंहिताम् ।
दह्यमानेव रौद्रेण चक्षुषा द्रुपदात्मजा　　　　॥ १४ ॥

अज्ञातवासकी प्रतिज्ञाके भंग हो जानेके भयसे अपने सत्यस्वरूपकी रक्षा करती हुई द्रौपदीने घोर नेत्रसे सभाको इस प्रकार देखा मानो सबको भस्म कर देगी ॥ १४ ॥

द्रौपद्युवाच

येषां वैरी न स्वपिति पदा भूमिमुपस्पृशन् ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्　　　　॥ १५ ॥

द्रौपदी बोली– जिनका वैरी जिनका अपराध करने बाद पांवसे भूमिको स्पर्श करनेके लिये जिंदा नहीं रह सकता, सुखसे सो नहीं सकता, उन्हीं की प्यारी स्त्री मुझको सूत–पुत्रने लातसे मारा ॥ १५ ॥

ये दद्युर्न च याचेयुर्ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्　　　　॥ १६ ॥

जो सदा दान करते हैं, और कभी मांगते नहीं तथा जो ब्राह्मणोंके भक्त और सत्यवादी हैं मैं उन्हींकी मानिनी स्त्री हूं, उसी मुझको सूतपुत्रने लातसे मारा ॥ ॥ १६ ॥

येषां दुन्दुभिनिर्घोषो ज्याघोषः श्रूयतेऽनिशम् ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्　　　　॥ १७ ॥

जिनके नगाडे और धनुष की टंकार सदा सुनाई देती है, मैं उन्हींकी मानवती स्त्री हूं उसी मुझको सूतपुत्रने लातसे मारा ॥ १७ ॥

ये च तेजस्विनो दान्ता बलवन्तोऽभिमानिनः ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्　　　　॥ १८ ॥

जो महातेजस्वी, बलवान्, अभिमानी और महात्मा हैं, मैं उन्हींकी प्यारी स्त्री हूं, उसी मुझको सूतपुत्रने लातसे मारा ॥ १८ ॥

सर्वलोकमिमं हन्युर्धर्मपाशसितास्तु ये ।
तेषां मां मानिनीं भार्यां सूतपुत्रः पदावधीत्　　　　॥ १९ ॥

जो सब लोकका नाश कर सकते हैं, वे मेरे पति इस समय धर्मपाशमें बन्धे हुए हैं, इसी लिये सूतपुत्रने मुझे लातसे मारा ॥ १९ ॥

शरणं ये प्रपन्नानां भवन्ति शरणार्थिनाम् ।
चरन्ति लोके प्रच्छन्नाः क नु तेऽद्य महारथाः　　　　॥ २० ॥

जो शरण चाहने वाले सब दीनोंको शरण देनेमें समर्थ हैं, वे महारथ आज इस संसारमें छिपकर कहां घूम रहे हैं ? ॥ २० ॥

कथं ते सूतपुत्रेण वध्यमानां प्रियां सतीम्।
मर्षयन्ति यथा क्लीबा बलवन्तोऽमितौजसः ॥ २१ ॥

किस प्रकार वे लोग अपनी प्यारी पतिव्रता स्त्रीको सूतपुत्रके हाथसे पिटती देख रहे हैं ? वे महा बलवान् महातेजस्वी होते हुए भी नपुंसकोंके समान क्यों क्षमा कर रहे हैं ? ॥ २१ ॥

क्व नु तेषाममर्षश्च वीर्यं तेजश्च वर्तते।
न परीप्सन्ति ये भार्यां वध्यमानां दुरात्मना ॥ २२ ॥

उनका तेज, बल और पराक्रम कहां गया ? जो इस प्रकार अपनी स्त्रीको दुष्टके हाथसे पिटती देख रहे हैं ॥ २२ ॥

मयात्र शक्यं किं कर्तुं विराटे धर्मदूषणम्।
यः पश्यन्मां मर्षयति वध्यमानामनागसम् ॥ २३ ॥

जहां विराट राजा वर्तमान हैं, वहां मैं क्या कर सकती हूं ? यह राजा स्वयं मुझ निरपराधिनीको पिटते हुए देख रहा है, और धर्मको दूषित होते हुए भी कुछ नहीं कहता और सब कुछ सह रहा है ॥ २३ ॥

न राजन्राजवत्किंचित्समाचरसि कीचके।
दस्यूनामिव धर्मस्ते न हि संसदि शोभते ॥ २४ ॥

राजा कीचकके साथ राजाके समान कुछ व्यवहार नहीं करता, अर्थात् वह कीचकको दण्ड नहीं देता, हे राजन् ! यह दुष्टोंके समान यह तुम्हारा धर्म सभामें शोभित नहीं होता ॥२४॥

नः कीचकः स्वधर्मस्थो न च मत्स्यः कथंचन।
सभासदोऽप्यधर्मज्ञा य इमं पर्युपासते ॥ २५ ॥

न कीचक ही धर्मके मार्ग पर है और न मत्स्यराज विराट ही धर्म मार्ग पर है, तथा जो इस राजा की सेवा करते हैं, वे भी अधार्मिक हैं ॥ २५ ॥

नोपालभे त्वां नृपते विराट जनसंसदि।
नाहमेतेन युक्ता वै हन्तुं मत्स्य तवान्तिके।
सभासदस्तु पश्यन्तु कीचकस्य व्यतिक्रमम् ॥ २६ ॥

हे विराट राजा ! मैं आपको इन सब लोगोंकी सभामें उपालंभ देना नहीं चाहती। वैसा ही, हे मत्स्यराजा ! आपके सामने उसने मारा है वह भी योग्य नहीं है, कीचकके द्वारा किया हुआ अविनय ये सब सभासद देखें ॥ २६ ॥

विराट उवाच

परोक्षं नाभिजानामि विग्रहं युवयोरहम्।
अर्थतत्त्वमविज्ञाय किं नु स्यात्कुशलं मम ॥ २७ ॥

विराट बोले– कीचककी और तेरी यथार्थ लडाई मेरे सामने नहीं हुई। वृत्तको जाने बिना मैं कोई न्याय कैसे कर सकता हूं ॥ २७ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततस्तु सभ्या विज्ञाय कृष्णां भूयोऽभ्यपूजयन् ।
साधु साध्विति चाप्याहुः कीचकं च व्यगर्हयन्   ॥ २८ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर सभासदोंने सब अभिप्रायको जानकर "बहुत ठीक, बहुत ठीक" कहकर द्रौपदीकी प्रशंसा और कीचककी निन्दा की ॥ २८ ॥

सभ्या ऊचुः

यस्येयं चारुसर्वाङ्गी भार्या स्यादायतेक्षणा ।
परो लाभश्च तस्य स्यान्न स शोचेत्कदाचन   ॥ २९ ॥

सभासद् बोले– यह विशालनयनी सर्वाङ्गसुन्दरी जिसकी स्त्री है, उसको सब सुख है, उसे कभी शोक नहीं हो सकता ॥ २९ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं संपूजयंस्तत्र कृष्णां प्रेक्ष्य सभासदः ।
युधिष्ठिरस्य कोपात्तु ललाटे स्वेद आसजत्   ॥ ३० ॥

वैशम्पायन बोले– इसप्रकार द्रौपदी की ओर देखकर सभासद् लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी समय क्रोधसे महाराज युधिष्ठिरके मुख पर पसीना आ गया ॥ ३० ॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् ।
गच्छ सैरन्ध्रि मात्र स्थाः सुदेष्णाया निवेशनम्   ॥ ३१ ॥

महाराज कुरुपुत्र युधिष्ठिर अपनी प्यारी पटरानी द्रुपद राजपुत्रीसे बोले– हे सैरन्ध्रि ! तुम शीघ्र सुदेष्णा रानीके घरमें चली जाओ, यहां खडी होनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३१॥

भर्तारमनुरुध्यन्त्यः क्लिश्यन्ते वीरपत्नयः ।
शुश्रूषया क्लिश्यमानाः पतिलोकं जयन्त्युत   ॥ ३२ ॥

वीरोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंका अनुसरण करती हुई अनेक दुःख सहती हैं। दुःख सहकर भी पतियोंकी सेवा करनेसे स्त्रियोंको पतिलोक मिलता है ॥ ३२ ॥

मन्ये न कालं क्रोधस्य पश्यन्ति पतयस्तव ।
तेन त्वां नाभिधावन्ति गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः   ॥ ३३ ॥

मुझे जान पडता है कि तुम्हारे पति इस समयको क्रोध करनेका समय नहीं समझते, इसी लिये सूर्यके समान तेजस्वी गन्धर्व लोग तुम्हारी रक्षा नहीं कर रहे ॥ ३३ ॥

अकालज्ञासि सैरन्ध्रि शैलूषीव विधावसि।
विघ्नं करोषि मत्स्यानां दीव्यतां राजसंसदि।
गच्छ सैरन्ध्रि गन्धर्वाः करिष्यन्ति तव प्रियम् ॥ ३४ ॥

सैरन्ध्रि ! हमें जान पडता है कि तुम्हें अपने समयका कुछ ध्यान नहीं है, इसीलिये नटनीके समान लज्जारहित होकर सभामें दौड रही हो और इस प्रकार राजसभामें जुआ खेलते हुए मत्स्योंकी क्रीडामें विघ्न डाल रही हो, हे सैरन्ध्री ! तुम यहांसे चली जाओ, तुम्हारे पति तुम्हारा हित साधन करेंगे ॥ ३४ ॥

द्रौपद्युवाच

अतीव तेषां घृणिनामर्थेऽहं धर्मचारिणी।
तस्य तस्येह ते वध्या येषां ज्येष्ठोऽक्षदेविना ॥ ३५ ॥

द्रौपदी बोली– मैं अपने दयावान् पतियोंके लिये धर्मका आचरण करनेवाली अनेक दुःख सह रही हूं। मेरे पतियोंमें जो बडे हैं, वे जुवेके जानने वाले हैं, इसलिये हरएक उनका नाश कर सकता है ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा प्राद्रवत्कृष्णा सुदेष्णाया निवेशनम्।
केशान्मुक्त्वा तु सुश्रोणी संरम्भाल्लोहितेक्षणा ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले– उत्तम कमरवाली द्रौपदी यह कहकर और अपने बालोंको खोल कर क्रोधसे आंखें लाल करती हुई सुदेष्णा रानीके घर चली गई ॥ ३६ ॥

शुशुभे वदनं तस्या रुदन्त्याः विरतं तदा।
मेघलेखाविनिर्मुक्तं दिवीव शशिमण्डलम् ॥ ३७ ॥

रोती हुई द्रौपदीका मुख ऐसा शोभित हुआ, जैसे आकाशमें मेघसे निकला हुआ चन्द्रमा ॥ ३७ ॥

सुदेष्णोवाच

कस्त्वावधीद्वरारोहे कस्माद्रोदिषि शोभने।
कस्याद्य न सुखं भद्रे केन ते विप्रियं कृतम् ॥ ३८ ॥

सुदेष्णा बोली– हे सुन्दरी ! हे सुमुखि ! हे कल्याणि ! तुमको किसने मारा ? तुम क्यों रो रही हो ? आज किसके सुखका नाश होनेका समय आ गया ? किसने तुम्हारा अप्रिय किया है ॥ ३८ ॥

द्रौपद्युवाच

कीचको मावधीत्तत्र सुराहारीं गतां तव।
सभायां पश्यतो राज्ञो यथैव विजने तथा ॥ ३९ ॥

द्रौपदी बोली– तुमने मुझे सुरा लानेके लिये कीचकके घर भेजा था, वहां उसने मुझको मारा और राजाके देखते हुए भी मुझको इस प्रकार मारा, जैसे कोई निर्जन वनमें किसीको मारता है ३९ ॥

सुदेष्णोवाच

घातयामि सुकेशान्ते कीचकं यदि मन्यसे ।
योऽसौ त्वां कामसंमत्तो दुर्लभामभिमन्यते ॥ ४० ॥

सुदेष्णा बोली– हे उत्तम बालोंवाली ! जिस दुष्ट कीचकने कामके वशमें होकर तुम्हारा निरादर किया है, तुम कहो, तो मैं उसे अभी मरवा दूं ? ॥ ४० ॥

द्रौपद्युवाच

अन्ये वै तं वधिष्यन्ति येषामागः करोति सः ।
मन्ये चाद्यैव सुव्यक्तं परलोकं गमिष्यति ॥ ४१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ३६५ ॥

द्रौपदी बोली– कीचक जिनका अपराध करता है, वे उसे आप ही मार डालेंगे। मुझे निश्चय है कि वह आज ही परलोक पहुँच जायेगा ॥ ४१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पंद्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥ ३६५ ॥

: १६ :

वैशम्पायन उवाच

सा हता सूतपुत्रेण राजपुत्री समज्वलत् ।
वधं कृष्णा परीप्सन्ती सेनावाहस्य भामिनी ।
जगामावासमेवाथ तदा सा द्रुपदात्मजा ॥ १ ॥
कृत्वा शौचं यथान्यायं कृष्णा वै तनुमध्यमा ।
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! जब यशस्विनी राजपुत्री द्रौपदीको सेनापति सूतपुत्रने मारा; उसी समयसे वह उसके विनाशकी इच्छा करती हुई क्रोधसे जलनेसी लगी । और पतली कमरवाली द्रुपदराजपुत्रीने अपने सब अंगों और वस्त्रोंको जलसे धोकर और उचित रीतिसे पवित्र होकर अपने घरमें जाकर एक स्थानमें बैठी और रोती हुई अपने दुःखका विचार करने लगी ॥ १–२ ॥

चिन्तयामास रुदती तस्य दुःखस्य निर्णयम् ।
किं करोमि क्व गच्छामि कथं कार्यं भवेन्मम । ॥ ३ ॥

मैं इस समय कहां जाऊं ? कौनसा कार्य करूं जिससे मेरा दुःख दूर हो ? मेरा प्रयोजन

इत्येवं चिन्तयित्वा सा भीमं वै मनसागमत् ।
नान्यः कर्ता ऋते भीमान्ममाद्य मनसः प्रियम् ॥ ४ ॥

सोच विचार कर द्रौपदीने अपने मनसे भीमका चिन्तन किया, और निश्चय किया कि इस समय भीमसेनको छोड कर और कोई मेरे मनका प्रिय नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

तत उत्थाय रात्रौ सा विहाय शयनं स्वकम् ।
प्राद्रवन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ।
दुःखेन महता युक्ता मानसेन मनस्विनी ॥ ५ ॥

ऐसा विचार करके आधी रातके समय उठकर सुन्दरी पतिव्रता, नाथवती द्रौपदी अपने पलङ्गसे उठी और अपने नाथके पास जानेकी इच्छा करनेवाली मनस्विनी वह कृष्णा द्रौपदी बहुत ही दुःखित मनसे भीमके पास गई ॥ ५ ॥

सा वै महानसे प्राप्य भीमसेनं शुचिस्मिता ।
सर्वश्वेतेव माहेयी वने जाता त्रिहायनी ।
उपातिष्ठत पाञ्चाली वाशितेव महागजम् ॥ ६ ॥

जैसे वनमें उत्पन्न हुई बगुली कामसे व्याकुल होकर बगुलेके पास जाती है, अथवा जैसे तीन वर्षकी गौ कामसे उन्मत्त होकर सांडके पास जाती है, वैसे ही द्रौपदी अपने प्यारे पति भीमसेनके पास पाकशालामें पहुंची ॥ ६ ॥

सा लतेव महाशालं फुल्लं गोमतितीरजम् ।
बाहुभ्यां परिरभ्यैनं प्राबोधयदनिन्दिता ।
सिंहं सुप्तं वने दुर्गे मृगराजवधूरिव ॥ ७ ॥

जैसे गोमतीके तट पर उत्पन्न हुए फूलयुक्त महाशाल वृक्षसे लता लिपट जाती है, वैसे ही सुन्दरी द्रौपदीने भीमको अपने दोनों हाथोंमें भरकर हृदयसे लगा लिया, फिर इस प्रकार जगाने लगी, जैसे घोर वनमें सोते हुए सिंहको सिंहिनी जगाती है ॥ ७ ॥

वीणेव मधुराभाषा गान्धारं साधु मूर्च्छिता ।
अभ्यभाषत पाञ्चाली भीमसेनमनिन्दिता ॥ ८ ॥

साथ ही गांधार स्वरको अच्छी तरहसे आलापित करती हुई वीणाके समान मीठे स्वरसे निन्दारहित द्रौपदी भीमसेनको जगाने लगी ॥ ८ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे भीमसेन यथा मृतः ।
नामृतस्य हि पापीयान्भार्यामालभ्य जीवति ॥ ९ ॥

द्रौपदी बोली– हे भीम ! उठो उठो ! मरे हुए के समान क्यों सो रहे हो ? क्योंकि जीते हुए पतियोंकी स्त्रियोंका निरादर करके कोई जीवित नहीं रहता ॥ ९ ॥

तस्मिञ्जीवति पापिष्ठे सेनावाहे मम द्विषि ।
तत्कर्म कृतवत्यद्य कथं निद्रां निषेवसे ॥ १० ॥

वह विराट सेनापति (कीचक) मेरा दुश्मन, ऐसा कुकर्म करनेवाला जब तक जीवित है तब तक आप कैसे सो रहे हैं ॥ १० ॥

स संप्रहाय शयनं राजपुत्र्या प्रबोधितः ।
उपातिष्ठत मेघाभः पर्यङ्के सोपसंग्रहे ॥ ११ ॥

तब राजपुत्रीसे जगाये जाकर महामेघके तुल्य भीम अपने गद्दीयुक्त पलङ्गपर निद्राको छोडकर उठ कर बैठ गये ॥ ११ ॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रीं कौरव्यो महिषीं प्रियाम् ।
केनास्यर्थेन संप्राप्ता त्वरितेव ममान्तिकम् । ॥ १२ ॥

कुरुनन्दन भीमने अपनी प्यारी स्त्री राजपुत्री द्रौपदीको देखकर कहा, तुम इस समय घबडाई हुई मेरे घरमें कैसे आई हो ? ॥ १२ ॥

न ते प्रकृतिमान्वर्णः कृशा पाण्डुश्च लक्ष्यसे ।
आचक्ष्व परिशेषेण सर्वं विद्यामहं यथा ॥ १३ ॥

तुम्हारा रङ्ग पहले जैसा नहीं है। तुम बहुत दुर्बल और पीली दिखाई देती हो। तुम सब समाचार हमसे कह सुनाओ जिससे कि मैं सब जान सकूं ॥ १३ ॥

सुखं वा यदि वा दुःखं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।
यथावत्सर्वमाचक्ष्व श्रुत्वा ज्ञास्यामि यत्परम् ॥ १४ ॥

सुख, दुःख, अच्छा या बुरा जो कुछ भी हो, सब कुछ कह दे। मैं सुनकर जो योग्य होगा उपाय करूंगा ॥ १४ ॥

अहमेव हि ते कृष्णे विश्वास्यः सर्वकर्मसु ।
अहमापत्सु चापि त्वां मोक्षयामि पुनः पुनः ॥ १५ ॥

हे द्रौपदी ! तुम्हें सब कामोंमें मेरा विश्वास है, और मैं तुम्हें बार बार आपत्तियोंसे भी छुडाता हूं ॥ १५ ॥

शीघ्रमुक्त्वा यथाकामं यत्ते कार्यं विवक्षितम् ।
गच्छ वै शयनायैव पुरा नान्योऽवबुध्यते ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ३८१ ॥

मुझसे जो कुछ भी कार्य हो सब कहकर यहांसे शीघ्र अपने सोनेके घरमें चली जाओ, जिसमें कोई दूसरा जान न सके ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥ ३८१ ॥

: १७ :

द्रौपद्युवाच

अशोच्यं नु कुतस्तस्या यस्या भर्ता युधिष्ठिरः।
जानन्सर्वाणि दुःखानि किं मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १ ॥

द्रौपदी बोली– जिस स्त्रीके पति युधिष्ठिर हैं वह शोकरहित होकर कैसे रह सकती है, तुम सब दुःखोंको जानकर भी मुझसे क्यों अजानके समान पूछते हो ? ॥ १ ॥

यन्मां दासीप्रवादेन प्रातिकामी तदानयत्।
सभायां पार्षदो मध्ये तन्मां दहति भारत ॥ २ ॥

हे भारत ! प्रतिकामी सूत जो मुझे दासी कहकर सभामें ले आया था, वही दुःख मेरे हृदयको जला रहा है ॥ २ ॥

पार्थिवस्य सुता नाम का नु जीवेत मादृशी।
अनुभूय भृशं दुःखमन्यत्र द्रौपदीं प्रभो ॥ ३ ॥

हे नाथ ! मेरे समान ऐसी कौनसी राजपुत्री होगी जो द्रौपदीको छोडकर इस प्रकार अत्यधिक दुःखको भोग सके ॥ ३ ॥

वनवासगतायाश्च सैन्धवेन दुरात्मना।
परामर्शं द्वितीयं च सोढुमुत्सहते नु का ॥ ४ ॥

बनवासके समय दुष्ट जयद्रथने मेरा निरादर किया, मेरे सिवा इस दुःखको कौन दूसरी राजपुत्री सह सकती है ? ॥ ४ ॥

मत्स्यराज्ञः समक्षं च तस्य धूर्तस्य पश्यतः।
कीचकेन पदा स्पृष्टा का नु जीवेत मादृशी ॥ ५ ॥

धूर्त राजा विराटके देखते हुए नीच कीचकने मुझे पांवसे लात मारी, इस दुःखको सह कर मेरे सिवा और कौनसी राजपुत्री जी सकती है ? ॥ ५ ॥

एवं बहुविधैः क्लेशैः क्लिश्यमानां च भारत।
न मां जानासि कौन्तेय किं फलं जीवितेन मे ॥ ६ ॥

हे भरत–कुलश्रेष्ठ कुन्तीनन्दन ! इस प्रकार मैंने अनेक दुःख सहे, उस पर भी तुम मेरे दुःखोंको नहीं जानते, तो अब मेरे जीनेका क्या फायदा ? ॥ ६ ॥

योऽयं राज्ञो विराटस्य कीचको नाम भारत।
सेनानीः पुरुषव्याघ्र स्यालः परमदुर्मतिः ॥ ७ ॥

स मां सैरन्ध्रिवेषेण वसन्तीं राजवेश्मनि।
नित्यमेवाह दुष्टात्मा भार्या मम भवेति वै। ॥ ८ ॥

हे भारत ! हे पुरुषव्याघ्र ! यह जो दुर्बुद्धि दुष्टात्मा कीचक नामक राजा विराटका साला और सेनापति है, मुझे राजाके घरमें सैरन्ध्रीके वेषमें रहते हुए देख सदा कहा करता है कि तू मेरी स्त्री बन जा ॥ ७–८ ॥

तेनोपमन्त्र्यमाणाया वधार्हेण सपत्नहन् ।
कालेनेव फलं पक्वं हृदयं मे विदीर्यते ॥ ९ ॥

हे शत्रुनाशक भीम ! मार जानेके योग्य इस दुष्टकी बातें सुनते सुनते मेरा हृदय इस प्रकार फटने लगा है, जैसे समय आनेपर पका हुआ फल फटने लगता है ॥ ९ ॥

भ्रातरं च विगर्हस्व ज्येष्ठं दुर्द्यूतदेविनम् ।
यस्यास्मि कर्मणा प्राप्ता दुःखमेतदनन्तकम् ॥ १० ॥

जो सदा जुवेहीको अपना कर्म समझते हैं, जिनके कर्मसे मैं इस अपार दुःखमें पडी हूं तुम उसी अपने बडे भाईको दोष दो ॥ १० ॥

को हि राज्यं परित्यज्य सर्वस्वं चात्मना सह ।
प्रव्रज्यायैव दीव्येत विना दुर्द्यूतदेविनम् ॥ ११ ॥

जगत्में ऐसा कौन पुरुष होगा, जो अपने सुख सर्वस्व और राज्यतकको छोडकर जुआ खेले। जुआरीके सिवा यह दूसरा कोई नहीं कर सकता ॥ ११ ॥

यदि निष्कसहस्रेण यच्चान्यत्सारवद्धनम् ।
सायंप्रातरदेविष्यदपि संवत्सरान्बहून् ॥ १२ ॥

यदि महाराज प्रतिदिन अपने उस दिव्य धनसे दोनों समय हजार हजार गिन्नियोंसे भी जुवा खेलते तो भी बहुत वर्ष तक कोष खाली न होता ॥ १२ ॥

रुक्मं हिरण्यं वासांसि यानं युग्यमजाविकम् ।
अश्वाश्वतरसंघाश्च न जातु क्षयमावहेत् ॥ १३ ॥

और सोना, वस्त्र, वाहन, बकरी, भेड, घोडे और खच्चर भी बने रहते, यह सम्पत्ति भी नष्ट न होती ॥ १३ ॥

सोऽयं द्यूतप्रवादेन श्रियः प्रत्यवरोपितः ।
तूष्णीमास्ते यथा मूढः स्वानि कर्माणि चिन्तयन् ॥ १४ ॥

महाराज उस सब लक्ष्मीको जुवेमें हार बैठे हैं और अब वे ही महाराज अपने कर्मको विचारते हुए मूर्खके समान चुप बैठे हैं ॥ १४ ॥

दश नागसहस्राणि पद्मिनां हेममालिनाम् ।
यं यान्तमनुयान्तीह सोऽयं द्यूतेन जीवति ॥ १५ ॥

जाते हुए जिन महाराजके पीछे सोनेकी माला पहिने हुए और कमलोंसे विभूषित दस सहस्र हाथी चलते थे, वह आज जुवा खेलते हुए जीते हैं ॥ १५ ॥

तथा शतसहस्राणि नृणाममिततेजसाम् ।
उपासते महाराजमिन्द्रप्रस्थे युधिष्ठिरम् ॥ १६ ॥

तथा इन्द्रप्रस्थमें जिन महाराज युधिष्ठिरकी सैंकडों हजार अत्यन्त तेजस्वी राजा सेवा किया करते थे ॥ १६ ॥

शतं दासीसहस्राणि यस्य नित्यं महानसे।
पात्रीहस्तं दिवारात्रमतिथीन्भोजयन्त्युत ॥ १७ ॥

जिन युधिष्ठिरके रसोईमें एक लाख दासियां रात दिन सोनेके पात्र लिये अतिथियोंको भोजन कराया करती थीं ॥ १७ ॥

एष निष्कसहस्राणि प्रदाय ददतां वरः।
द्यूतजेन ह्यनर्थेन महता समुपावृतः ॥ १८ ॥

जो दानियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर सहस्रों निष्क दान करते थे, वही जुवेके महाअनर्थमें पड कर अब दुःख सह रहे हैं ॥ १८ ॥

एनं हि स्वरसंपन्ना बहवः सूतमागधाः।
सायंप्रातरुपातिष्ठन्सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १९ ॥

जिसकी प्रातःकाल और सन्ध्याके समय अच्छे स्वरवाले, मणिजटित, सोनेके कुण्डल धारण करनेवाले, सूत, मागध और बन्दी लोग स्तुति किया करते थे ॥ १९ ॥

सहस्रमृषयो यस्य नित्यमासन्सभासदः।
तपःश्रुतोपसंपन्नाः सर्वकामैरुपस्थिताः ॥ २० ॥

जिनकी सभामें सहस्रों तपस्वी और वेद जाननेवाले ब्राह्मण बैठते थे, जिनको उनकी इच्छानुसार दान दिया जाता था ॥ २० ॥

अन्धान्वृद्धांस्तथानाथान्सर्वान्राष्ट्रेषु दुर्गतान्।
बिभर्त्यविमना नित्यमानृशंस्याद्युधिष्ठिरः ॥ २१ ॥

अन्धे, बूढे, और अनाथों तथा दुर्गतिमें पडे हुए सबको सदा पालते थे, जो महाराज युधिष्ठिर अपने चित्तको कभी अन्यायमें नहीं जान देते थे ॥ २१ ॥

स एष निरयं प्राप्तो मत्स्यस्य परिचारकः।
सभायां देविता राज्ञः कङ्को ब्रूते युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥

वे ही आज इस दुर्दशामें पडे हुए हैं। वे ही महाराज आज राजा विराटके सेवक बने हुए हैं और राजाओंको जुआ खिलाते हैं। उन्हींको राजा विराट कंक कहकर पुकारता है ॥ २२ ॥

इन्द्रप्रस्थे निवसतः समये यस्य पार्थिवाः।
आसन्बलिभृतः सर्वे सोऽद्यान्यैर्भृतिमिच्छति ॥ २३ ॥

इन्द्रप्रस्थमें रहते समय जिनके द्वारपर आकर अनेक राजा लोग जीविका मांगनेको खडे रहते थे, वे ही महाराज आज राजा विराट तथा अन्योंसे जीविका मांगते हैं ॥ २३ ॥

पार्थिवाः पृथिवीपाला यस्यासन्वशवर्तिनः।
स वशे विवशो राजा परेषामद्य वर्तते ॥ २४ ॥

जिन महाराजके वशमें सब राजा लोग रहते थे, वे ही राजा आज विवश होकर अन्योंके वशमें हो रहे हैं ॥ २४ ॥

प्रताप्य पृथिवीं सर्वां रश्मिवानिव तेजसा ।
सोऽयं राज्ञो विराटस्य सभास्तारो युधिष्ठिरः ॥ २५ ॥

जिन्होंने अपने सूर्यके समान तेजसे समस्त पृथ्वीको तपा दिया था, वे ही युधिष्ठिर आज राजा विराटके सभासद् बने हुए हैं ॥ २५ ॥

यमुपासन्त राजानः सभायामृषिभिः सह ।
तमुपासीनमद्यान्यं पश्य पाण्डव पाण्डवम् ॥ २६ ॥

हे पाण्डव ! जिसकी सभामें बैठकर राजा और ऋषि लोग सेवा करते थे, हे भीम ! उन्हीं युधिष्ठिरको आज विराटकी सेवा करते हुए देखो ॥ २६ ॥

अतदर्हं महाप्राज्ञं जीवितार्थेऽभिसंश्रितम् ।
दृष्ट्वा कस्य न दुःखं स्याद्धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥

जो इस योग्य नहीं थे, उन महाबुद्धिमान् धर्मात्मा युधिष्ठिरको आजीविकाके लिए अन्य राजाके वशमें देखकर किसको दुःख नहीं होगा ? ॥ २७ ॥

उपास्ते स्म सभायां यं कृत्स्ना वीर वसुंधरा ।
तमुपासीनमद्यान्यं पश्य भारत भारतम् ॥ २८ ॥

हे भारत ! जिनके सभामें बैठते ही पृथ्वीके समस्त राजा आया करते थे, उन्हीं भरतवंशी युधिष्ठिरको आज दूसरेकी सेवा करते हुए देखो ॥ २८ ॥

एवं बहुविधैर्दुःखैः पीड्यमानामनाथवत् ।
शोकसागरमध्यस्थां किं मां भीम न पश्यसि ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ४१० ॥

हे भारत ! इन सब दुःखोंसे पीडित होकर अनाथके समान मैं शोक सागरमें डूबी जाती हूं। क्या तुम मेरी इस दशाको नहीं देख रहे ? ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥ ५४७ ॥

: १८ :

द्रौपद्युवाच

इदं तु ते महद्दुःखं यत्प्रवक्ष्यामि भारत ।
न मेऽभ्यसूया कर्तव्या दुःखादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥

द्रौपदी बोली– हे भारत ! मैं जो तुमसे अपना दुःख कहने चली हूं, वह कुछ साधारण नहीं है । तुम मेरा निरादर मत करना; मैं दुःखसे पीडित होकर यह सब वृत्तान्त तुमसे कह रही हूं ॥ १ ॥

शार्दूलैर्महिषैः सिंहैरागारे युध्यसे यदा।
कैकेय्याः प्रेक्षमाणायास्तदा मे कश्मलो भवेत् ॥ २ ॥

जिस समय तुम अखाडेमें भैंसे, शार्दूल और सिंहोंसे लडते हो, तब सुदेष्णा रानीको हंसते देख मेरा चित्त घबडा उठता है ॥ २ ॥

प्रेक्षासमुत्थिता चापि कैकेयी ताः स्त्रियो वदेत्।
प्रेक्ष्य मामनवद्यांगी कश्मलोपहतामिव ॥ ३ ॥

अनिन्दित अंगोंवाली वह सुदेष्णा मुझे दुःखित देखकर रानी उठकर अपनी दासियोंसे कहती है ॥ ३ ॥

स्नेहात्संवासजान्मन्ये सूदमेषा शुचिस्मिता।
योध्यमानं महावीर्यैरिमं समनुशोचति ॥ ४ ॥

यह शुचिस्मिता सैरन्ध्री सहवासके कारण उत्पन्न होनेवाले प्रेमके कारण इस महापराक्रमी रसोइयेके लडनेपर दुःखित होती है ॥ ४ ॥

कल्याणरूपा सैरंध्री बल्लवश्चातिसुन्दरः।
स्त्रीणां च चित्तं दुर्ज्ञेयं युक्तरूपौ च मे मतौ ॥ ५ ॥

सैरन्ध्री बहुत सुन्दरी है, और यह रसोइया भी वैसाही सुन्दर है, स्त्रियोंके चित्तकी बातको कोई नहीं जान सकता। ये दोनों समान रूपवाले हैं ॥ ५ ॥

सैरंध्री प्रियसंवासान्नित्यं करुणवेदिनी।
अस्मिन्राजकुले चेमौ तुल्यकालनिवासिनौ ॥ ६ ॥

अपने मनपसन्द मनुष्यके सदा साथ रहनेके कारण यह सैरंध्री उसकी बहुत चिन्ता करती है, इसके अलावा इस राजभवनमें ये दोनों एकही दिन आये हैं, इससे इनमें अवश्य कुछ प्रेम जान पडता है ॥ ६ ॥

इति ब्रुवाणा वाक्यानि सा मां नित्यमवेदयत्।
क्रुध्यन्तीं मां च संप्रेक्ष्य समशङ्कत मां त्वयि ॥ ७ ॥

इस प्रकार वचन कहती हुई रानी सदा मुझे कहा करती है; मुझे क्रोध आते देखकर उसे और भी अधिक शङ्का होती है कि मेरा तुममें बहुत प्रेम है ॥ ७ ॥

तस्यां तथा ब्रुवत्यां तु दुःखं मां महदाविशत्।
शोके यौधिष्ठिरे मग्ना नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ८ ॥

उसके ऐसे वचन कहनेपर मुझे महादुःख होता है। महाराज युधिष्ठिरको इस दुःखमें पडा देख मैं शोकसे अत्यन्त व्याकुल होगई हूं। इसलिये मुझे अब जीनेकी इच्छा नहीं है ॥ ८ ॥

यः सदेवान्मनुष्यांश्च सर्वांश्चैकरथोऽजयत् ।
सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ॥ ९ ॥

अकेले रथपर बैठकर समस्त मनुष्य और देवताओंको जिसने जीता था, वही युवक अर्जुन आज राजा विराटकी कन्याओंको नचाते हैं ॥ ९ ॥

योऽतर्पयदमेयात्मा खाण्डवे जातवेदसम् ।
सोऽन्तःपुरगतः पार्थः कूपेऽग्निरिव संवृतः ॥ १० ॥

जिस महापराक्रमीने खाण्डव वनमें अग्निको सन्तुष्ट किया था, वही अर्जुन आज रनिवासमें रहकर कन्याओंको नचाते हैं, और इस प्रकार छिपकर रहते हैं, जैसे कुंवेमें अग्नि ॥१०॥

यस्माद्भयममित्राणां सदैव पुरुषर्षभात् ।
स लोकपरिभूतेन वेषेणास्ते धनंजयः ॥ ११ ॥

जिस पुरुषसिंहसे सदा शत्रु कांपते रहते थे, वे ही अर्जुन आज महानिन्दित वेष धारण करके रनिवासमें रहते हैं ॥ ११ ॥

यस्य ज्यातलनिर्घोषात्समकम्पत शत्रवः ।
स्त्रियो गीतस्वनं तस्य मुदिताः पर्युपासते ॥ १२ ॥

जिनके धनुषकी घोर टंकारको सुनकर शत्रुओंका हृदय कांप उठता था, आज उन्हींके मीठे गीत सुनकर स्त्रियां प्रसन्न होती हैं ॥ १२ ॥

किरीटं सूर्यसंकाशं यस्य मूर्धनि शोभते ।
वेणीविकृतकेशान्तः सोऽयमद्य धनंजयः ॥ १३ ॥

जिसके शिर पर सूर्यके समान प्रकाशमान मुकुट विराजता था, आज वही अर्जुन स्त्रियोंके समान बालोंको गूंथकर और वेणी बनाकर रनिवासमें रहते हैं ॥ १३ ॥

यस्मिन्नस्त्राणि दिव्यानि समस्तानि महात्मनि ।
आधारः सर्वविद्यानां स धारयति कुण्डले ॥ १४ ॥

जिस महात्मामें समस्त दिव्य शस्त्र प्रतिष्ठित हैं, जो सब विद्याओंके आधार हैं, वे ही अर्जुन आज स्त्रियोंके कुण्डल पहने हुए हैं ॥ १४ ॥

यं स्म राजसहस्राणि तेजसा प्रतिमानि वै ।
समरे नातिवर्तन्ते वेलामिव महार्णवः ॥ १५ ॥
सोऽयं राज्ञो विराटस्य कन्यानां नर्तको युवा ।
आस्ते वेषप्रतिच्छन्नः कन्यानां परिचारकः ॥ १६ ॥

युद्धमें तेजसे अद्वितीय हजारों राजा भी जिसे उसी प्रकार अतिक्रमण नहीं कर सकते थे, जिसप्रकार सागर अपने तटका, वही युवा अर्जुन आज अपने रूपको छिपाकर सेवक बनकर राजा विराटकी कन्याओंको नचाते हैं और कन्याओंकी सेवा किया करते हैं ॥१५–१६॥

×

यस्य स्म रथघोषेण समकम्पत मेदिनी ।
सपर्वतवना भीम सहस्थावरजङ्गमा ॥ १७ ॥

हे भीम ! जिस महाधनुषधारीके रथका शब्द सुनकर पर्वत, वन, स्थावर और जङ्गमोंके सहित समस्त पृथ्वी कांप उठती थी ॥ १७ ॥

यस्मिञ्जाते महाभागे कुन्त्याः शोको व्यनश्यत ।
स शोचयति मामद्य भीमसेन तवाऽनुजः ॥ १८ ॥

जिस महानुभावके उत्पन्न होनेसे कुन्तीका शोक नष्ट हो गया था, हे भीमसेन ! उस तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन की दुर्दशा देखकर मुझे शोक होता है ॥ १८ ॥

भूषितं तमलंकारैः कुण्डलैः परिहाटकैः ।
कम्बुपाणिनमायान्तं दृष्ट्वा सीदति मे मनः ॥ १९ ॥

अर्जुनको स्त्रियोंके कुण्डलादि भूषण और शङ्खकी चूडी पहनकर आते हुए देखकर मेरा मन बहुत दुःखी होता है ॥ १९ ॥

तं वेणीकृतकेशान्तं भीमधन्वानमर्जुनम् ।
कन्यापरिवृतं भीम सीदति मे मनः ॥ २० ॥

उन्हीं भयंकर धनुष्यधारी अर्जुनको वेणी धारण करते हुए और कन्याओंसे घिरा हुआ देखके, हे भीम ! मेरा मन बहुत दुःखी होता है ॥ २० ॥

यदा ह्येनं परिवृतं कन्याभिर्देवरूपिणम् ।
प्रभिन्नमिव मातङ्गं परिकीर्णं करेणुभिः ॥ २१ ॥

जब मैं देवरूपी अर्जुनको कन्याओंके बीचमें हथिनियोंसे वेष्टित मतवाले हाथीके समान घूमते हुए देखती हूं, तब मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो जाता है ॥ २१ ॥

मत्स्यमर्थपतिं पार्थं विराटं समुपस्थितम् ।
पश्यामि तूर्यमध्यस्थं दिशो नश्यन्ति मे तदा ॥ २२ ॥

अर्थपति मत्स्याधिपति विराटके समीप उपस्थित हुए पृथापुत्र मध्यम पाण्डव अर्जुनको देखकर मेरी दृष्टि शोकसे अन्धी हो जाती है ॥ २२ ॥

नूनमार्या न जानाति कृच्छ्रं प्राप्तं धनंजयम् ।
अजातशत्रुं कौरव्यं मग्नं दुर्द्यूतदेविनम् ॥ २३ ॥

मुझे जान पडता है, कि मेरी सास आर्या कुन्ती इस प्रकार दुःखमें फंसे धनंजय अर्जुन तथा जूवेसे दुःखमग्न अजातशत्रु युधिष्ठिरको नहीं जानती है ॥ २३ ॥

तथा दृष्ट्वा यवीयांसं सहदेवं युधां पतिम् ।
गोषु गोवेषमायांतं पाण्डुभूतास्मि भारत ॥ २४ ॥

हे भारत ! योद्धाओंमें श्रेष्ठ छोटे पाण्डव सहदेवको ग्वालेका वेष बनाये गायोंके साथ आते हुए देखकर मेरा शरीर पीला हो जाता है ॥ २४ ॥

सहदेवस्य वृत्तानि चिंतयन्ती पुनः पुनः ।
न विन्दामि महाबाहो सहदेवस्य दुष्कृतम् ।
यस्मिन्नेवंविधं दुःखं प्राप्नुयात्सत्यविक्रमः ॥ २५ ॥

हे भीमसेन ! सहदेवके चरित्रोंका पुनः पुनः स्मरण करके, हे महाबाहो ! मैं सहदेवके किसी भी ऐसे दुष्कार्यको नहीं जानती जिसके कारण सत्य पराक्रमी सहदेव इस प्रकार दुःख झेलें ॥ २५ ॥

दूयामि भरतश्रेष्ठ दृष्ट्वा ते भ्रातरं प्रियम् ।
गोषु गोवृषसंकाशं मत्स्येनाभिनिवेशितम् ॥ २६ ॥

हे भरतकुल श्रेष्ठ ! तुम्हारे भाई सहदेवको मतवाले बैलके समान गौओंमें घूमते हुए और राजा विराटकी आज्ञानुसार चलते हुए देखकर मेरा हृदय कांपने लगता है ॥ २६ ॥

संरब्धं रक्तनेपथ्यं गोपालानां पुरोगमम् ।
विराटमभिनन्दन्तमथ मे भवति ज्वरः ॥ २७ ॥

जब वे ग्वालोंके समान रक्तवर्णका वेष बनाकर सब ग्वालोंके अग्रगामी होकर राजा विराटकी प्रशंसा करते हैं, तब मुझे ज्वर चढ आता है ॥ २७ ॥

सहदेवं हि मे वीरं नित्यमार्या प्रशंसति ।
महाभिजनसंपन्नो वृत्तवाञ्शीलवानिति ॥ २८ ॥

हमारी आर्या कुन्ती सदा ही सहदेवकी प्रशंसा किया करती हैं और इस प्रकार कहा करती हैं कि मेरे सब पुत्रोंमें सहदेव बडा वीर, अच्छे कुलमें पैदा हुआ, शीलवान्, चरित्रवान् ॥२८॥

ह्रीनिषेधो मधुरवाग्धार्मिकश्च प्रियश्च मे ।
स तेऽरण्येषु बोद्धव्यो याज्ञसेनि क्षपास्वपि ॥ २९ ॥

उत्तम चरित्रयुक्त, लज्जावान्, प्रियवादी, धार्मिक और मेरा प्यारा है । उन्होंने हमसे चलते समय कहा था कि हे याज्ञसेनि ! तुम सदा वनमें इसकी रातमें भी रक्षा करना ॥ २९ ॥

तं दृष्ट्वा व्यापृतं गोषु वत्सचर्मक्षपाशयम् ।
सहदेवं युधां श्रेष्ठं किं नु जीवामि पाण्डव ॥ ३० ॥

हे पाण्डव ! उन महायोद्धा सहदेवको गौवोंके बीचमें रहते और रातको बैलोंके चमडे पर सोते हुए देख मुझे जीनेकी इच्छा नहीं रही ॥ ३० ॥

यस्त्रिभिर्नित्यसंपन्नो रूपेणास्त्रेण मेधया।
सोऽश्वबन्धो विराटस्य पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ ३१ ॥

जो नकुल शस्त्रविद्या, रूप और बुद्धि इन तीनोंसे हमेशा संपन्न रहते हैं, वे ही आज राजा विराटके अश्वरक्षक बने हैं। देखो, समयकी गति कैसी कठोर है ॥ ३१ ॥

अभ्यकीर्यन्त वृन्दानि दामग्रन्थिमुदीक्षताम्।
विनयन्तं जवेनाश्वान्महाराजस्य पश्यतः ॥ ३२ ॥

जिन्होंने आज अपना नाम ग्रंथिक रख रखा है, उस नकुलको देखकर ही पहले शत्रुओंकी सेनायें भाग जाती थीं। वही नकुल आज महाराज युधिष्ठिरके सामने ही घोडे सिखानेका काम करता है ॥ ३२ ॥

अपश्यमेनं श्रीमन्तं मत्स्यं भ्राजिष्णुमुत्तमम्।
विराटमुपतिष्ठन्तं दर्शयन्तं च वाजिनः ॥ ३३ ॥

उन्हीं सुन्दर, तेजस्वी और महान् नकुलको घोडे दिखाकर विराटकी सेवा करते हुए मैंने अनेक बार देखा है ॥ ३३ ॥

किं नु मां मन्यसे पार्थ सुखितेति परंतप।
एवं दुःखशताविष्टा युधिष्ठिरनिमित्ततः ॥ ३४ ॥

हे शत्रुनाशन कुन्तीनन्दन! युधिष्ठिरके कारण आए हुए इन सैंकडों दुःखोंसे मैं घिरी हुई हूं, क्या तुम मुझको अभी भी सुखी समझते हो? ॥ ३४ ॥

अतः प्रतिविशिष्टानि दुःखान्यन्यानि भारत।
वर्तन्ते मयि कौन्तेय वक्ष्यामि शृणु तान्यपि ॥ ३५ ॥

हे भारत कुन्तीपुत्र भीम! इन दुःखोंको छोड कर और भी जो अनेक दुःख मैं सह रही हूं कहती हूँ, सुनो ॥ ३५ ॥

युष्मासु ध्रियमाणेषु दुःखानि विविधान्युत।
शोषयन्ति शरीरं मे किं नु दुःखमतः परम् ॥ ३६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ४४६ ॥

मुझे इससे अधिक और क्या दुःख होगा कि, जो तुम लोगोंके जीवित रहते भी मेरे शरीरको अनेक प्रकारके दुःख सुखाये डालते हैं ॥ ३६ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १८ ॥ ४४६ ॥

: १९ :

द्रौपद्युवाच

अहं सैरन्ध्रिवेषेण चरन्ती राजवेश्मनि ।
शौचदास्मि सुदेष्णाया अक्षधूर्तस्य कारणात् ॥ १ ॥

द्रौपदी बोली– महाराज युधिष्ठिरके द्यूतके ही कारण मुझे भी दासीका वेष बनाकर और राजाके घरमें रहकर सुदेष्णा रानीकी मिट्टी, पानी आदि शौचके साधनोंसे सेवा करनी पड रही है ॥ १ ॥

विक्रियां पश्य मे तीव्रां राजपुत्र्याः परंतप ।
आसे कालमुपासीना सर्वं दुःखं किलार्तवत् ॥ २ ॥

हे वीर ! मुझ राजपुत्री की स्थितिमें कितना भारी परिवर्तन हो गया है, देखो, मैं समय की प्रतीक्षा करती हुई बैठी हूँ, क्योंकि दुःखका भी नाश होनेवाला ही है ॥ २ ॥

अनित्या किल मर्त्यानामर्थसिद्धिर्जयाजयौ ।
इति कृत्वा प्रतीक्षामि भर्तृणामुदयं पुनः ॥ ३ ॥

पुरुषोंकी हार जीत, सिद्धि और असिद्धि सब अनित्य हैं, यही विचारकर मैं अपने पतियोंकी उन्नतिके समय की प्रतीक्षा कर रही हूं ॥ ३ ॥

य एव हेतुर्भवति पुरुषस्य जयावहः ।
पराजये च हेतुः स इति च प्रतिपालये ॥ ४ ॥

मुझे यह निश्चय है कि जिन कारणोंसे मनुष्यको विजय प्राप्त होती है वे ही किसी समय मनुष्यके हानिका कारण भी हो जाते हैं ॥ ४ ॥

दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा वध्यन्ति चाऽपरे ।
पातयित्वा च पात्यन्ते परैरिति च मे श्रुतम् ॥ ५ ॥

मैंने बुद्धिमानोंसे सुना है कि जो पुरुष पहले समयमें महादानी होता है, वही किसी समयमें भिक्षा मांगने लगता है । जो एक समय अपने बलसे शत्रुओंको मारता है, वही किसी समयमें निर्बल होकर शत्रुओंके हाथसे मारा भी जा सकता है । ऐसे ही जो एक समयमें शत्रुओंको गिराता है, वही अन्य समयमें दुर्बल होकर शत्रुओंसे गिराया भी जा सकता है ॥५॥

न दैवस्यातिभारोऽस्ति न दैवस्यातिवर्तनम् ।
इति चाप्यागमं भूयो दैवस्य प्रतिपालये ॥ ६ ॥

कोई कर्म ऐसा नहीं है जिसको प्रारब्ध न कर सके, और प्रारब्धको कोई लांघ भी नहीं सकता । यही विचारकर मैं अच्छे समय आनेका मार्ग देख रही हूं ॥ ॥ ६ ॥

स्थितं पूर्वं जलं यत्र पुनस्तत्रैव तिष्ठति।
इति पर्यायमिच्छन्ती प्रतीक्षाम्युदयं पुनः ॥ ७ ॥

मैं यह जानती हूं कि जो जल पहले जहां होता है, फिर वह उसी स्थानमें बह कर आ जाता है। यही विचारकर मैं अपने पतियोंकी उन्नतिका समय देख रही हूं ॥ ७ ॥

दैवेन किल यस्यार्थः सुनीतोऽपि विपद्यते।
दैवस्य चागमे यत्नस्तेन कार्यो विजानता ॥ ८ ॥

नीतिके अनुसार चलनेवालोंका कार्य केवल दैवयोगसे बिगड जाता है, इसलिए बुद्धिमान्को चाहिए कि वह दैवकी अनुकूलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करे ॥ ८ ॥

यत्तु मे वचनस्यास्य कथितस्य प्रयोजनम्।
पृच्छ मां दुःखितां तत्त्वमपृष्टा वा ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥

तुम जो मेरे वचनोंका कारण पूछना चाहते हो, उसे मुझ दुःखिनीसे पूछो, अथवा तुम्हारे न पूछने पर भी मैं उत्तर दूंगी ॥ ९ ॥

महिषी पाण्डुपुत्राणां दुहिता द्रुपदस्य च।
इमामवस्थां संप्राप्ता का मदन्या जिजीविषेत् ॥ १० ॥

पाण्डवोंकी पटरानी और राजा द्रुपदकी प्यारी पुत्री मुझ द्रौपदीके सिवा इन सब दुःखोंको सहकर और कौन राजपुत्री जी सकती है ? ॥ १० ॥

कुरून्परिभवन्सर्वान्पञ्चालानपि भारत।
पाण्डवेयांश्च संप्राप्तो मम क्लेशो ह्यरिंदम ॥ ११ ॥

हे शत्रुनाशन ! मेरे इस दुःखसे समस्त कुरुकुल, समस्त पाण्डवकुल और समस्त पाञ्चाल कुलका निरादर हुआ है ॥ ११ ॥

भ्रातृभिः श्वशुरैः पुत्रैर्बहुभिः परवीरहन्।
एवं समुदिता नारी का त्वन्या दुःखिता भवेत् ॥ १२ ॥

हे शत्रुओंके वीरोंके मारनेवाले ! ऐश्वर्योंमें पाली पोसी गई मेरे समान दूसरी कौनसी स्त्री होगी जो भाई ससुर और बहुतसे पुत्रोंके जीवित रहते हुए भी ऐसे दुःखोंको सहे ? ॥ १२ ॥

नूनं हि बालया धातुर्मया वै विप्रियं कृतम्।
यस्य प्रसादाद्दुर्नीतं प्राप्तास्मि भरतर्षभ ॥ १३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैंने निश्चय ही बालकपनमें ब्रह्माका कोई दोष किया था, जिसकी अवकृपाके कारण अब यह सब दुःख सह रही हूं ॥ १३ ॥

वर्णावकाशमपि मे पश्य पाण्डव यादृशम् ।
तादृशो मे न तत्रासीद्दुःखे परमके तदा ॥ १४ ॥

हे भीमसेन ! मेरे उतरे हुए रूपको भी देख लो । उस महाघोर वनमें अनेक दुःख सहनेपर भी मेरी यह दुर्दशा नहीं हुई थी ॥ १४ ॥

त्वमेव भीम जानीषे यन्मे पार्थ सुखं पुरा ।
साहं दासत्वमापन्ना न शान्तिमवशा लभे ॥ १५ ॥

हे कुन्तीनन्दन भीम ! तुम भलीभांति जानते हो कि पहले मैं कैसे सुखपूर्वक रहती थी, वही मैं आज दासीपनको प्राप्त हुई हूं, इस पराधीनताके कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती है ॥१५॥

नादैविकमिदं मन्ये यत्र पार्थो धनंजयः ।
भीमधन्वा महाबाहुरास्ते शान्त इवानलः ॥ १६ ॥

जहां साक्षात् महाधनुषधारी महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुन शान्त हुई अग्निके समान रहते हैं, वहां प्रारब्धके सिवा और किसका दोष है ? ॥ १६ ॥

अशक्या वेदितुं पार्थ प्राणिनां वै गतिर्नरैः ।
विनिपातमिमं मन्ये युष्माकमविचिन्तितम् ॥ १७ ॥

हे कुन्तीनन्दन ! प्राणियोंकी गतिको जान सकना मनुष्यके लिए असंभव है । तुम लोगोंकी जो यह दुर्दशा हुई है, क्या किसीको इसकी सम्भावना थी ? ॥ १७ ॥

यस्या मम मुखप्रेक्षा यूयमिंद्रसमाः सदा ।
सा प्रेक्षे मुखमन्यासामवराणां वरा सती ॥ १८ ॥

जिस मेरे मुखको इन्द्रके समान तुम पाण्डव लोग सदा देखते रहते थे, वही पतिव्रता मैं श्रेष्ठ स्त्रियोंमें श्रेष्ठ होनेपर भी हीन मनुष्योंका मुख देखती हूं ॥ १८ ॥

पश्य पाण्डव मेऽवस्थां यथा नार्हामि वै तथा ।
युष्मासु ध्रियमाणेषु पश्य कालस्य पर्ययम् ॥ १९ ॥

हे पाण्डव ! मैं जिस अवस्थाके योग्य नहीं हूँ, उस मेरी अयोग्य दशाको आज आज तुम देखो । तुम लोगोंके जीते हुए क्या मैं इस दुर्दशामें पडने योग्य थी ? यह केवल समय हीका दोष है ॥ १९ ॥

यस्याः सागरपर्यन्ता पृथिवी वशवर्तिनी ।
आसीत्साद्य सुदेष्णाया भीताहं वशवर्तिनी ॥ २० ॥

जिसके अधीन समुद्रपर्यन्त पृथ्वी थी, वही मैं आज सुदेष्णाके भयसे कांपती हूं, और उसके वशमें रहती हूं ॥ २० ॥

यस्याः पुरःसरा आसन्पृष्ठतश्चानुगामिनः।
साहमद्य सुदेष्णायाः पुरः पश्चाच्च गामिनी।
इदं तु दुःखं कौन्तेय ममासह्यं निबोध तत् ॥ २१ ॥

जिसके आगे और पीछे सहस्रों दासियां फिरती थीं, वही मैं आज सुदेष्णाके आगे पीछे फिरती हूं। हे कौन्तेय! मैं जो तुमसे अपने दुःखोंका वर्णन करती हूं, अब असह्य हो चला है, तुम सुनो ॥ २१ ॥

या न जातु स्वयं पिंषे गात्रोद्वर्तनमात्मनः।
अन्यत्र कुन्त्या भद्रं ते साद्य पिंषामि चन्दनम्।
पश्य कौन्तेय पाणी मे नैवं यौ भवतः पुरा ॥ २२ ॥

जो मैं केवल कुन्तीके लिए छोडकर अपने लिए भी कभी उबटन नहीं पीसती थी, वहीं मैं आज सुदेष्णाके लिए चन्दन पीसती हूँ। हे कुन्तीनन्दन भीम! तुम्हारा कल्याण हो, जो कभी पहले कठोर नहीं थे, उन्हीं कठोर हाथोंको अब देखो ॥ २२ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्यस्य दर्शयामास किणबद्धौ करावुभौ ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले– ऐसा कहकर द्रौपदीने घट्टे पडे हुए अपने दोनो हाथ भीमको दिखाये ॥ २३ ॥

द्रौपद्युवाच

बिभेमि कुन्त्या या नाहं युष्माकं वा कदाचन।
साद्याग्रतो विराटस्य भीता तिष्ठामि किंकरी ॥ २४ ॥

द्रौपदी बोली– जो मैं कभी कुन्ती और तुम लोगोंसे भी नहीं डरती थी, वही आज विराटसे डर रही हूं; और उसकी दासी बनकर सेवा करती हूं ॥ २४ ॥

किं नु वक्ष्यति सम्राण्मां वर्णकः सुकृतो न वा।
नान्यपिष्टं हि मत्स्यस्य चन्दनं किल रोचते ॥ २५ ॥

मैं सदा यही विचारती रहती हूं कि न जाने आज महाराज मुझे क्या कहेंगे? यह चन्दन उनके योग्य घिसा गया है या नहीं? क्योंकि राजा विराटको मेरे सिवा और किसीका घिसा हुआ चन्दन अच्छा नहीं लगता ॥ २५ ॥

वैशम्पायन उवाच

सा कीर्तयन्ती दुःखानि भीमसेनस्य भामिनी।
रुरोद शनकैः कृष्णा भीमसेनमुदीक्षती ॥ २६ ॥

वैशम्पायन बोले– भीमसेनसे अपने सब दुःख सुनाकर सुन्दरी द्रौपदी भीमसेनकी ओर देखकर धीरे धीरे रोने लगी ॥ २६ ॥

सा बाष्पकलया वाचा निःश्वसन्ती पुनः पुनः ।
हृदयं भीमसेनस्य घट्टयन्तीदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

गला रुंध जानेके कारण उसका स्वर गद्गद हो गया और वह सुबकती तथा भीमके हृदयको कंपाती हुई, बार बार लम्बी सांस लेती हुई बोली ॥ २७ ॥

नाल्पं कृतं मया भीम देवानां किल्बिषं पुरा ।
अभाग्या यत्तु जीवामि मर्तव्ये सति पाण्डव ॥ २८ ॥

हे भीमसेन ! मैंने पहले अपनी जानमें कभी भी देवताका थोडासा भी अपराध नहीं किया, न जाने कौनसे अपराधसे भाग्यहीन मैं मरनेके योग्य होकर भी अब तक जीती रही हूं ॥२८॥

ततस्तस्याः करौ शूनौ किणबद्धौ वृकोदरः ।
मुखमानीय वेपन्त्या रुरोद परवीरहा ॥ २९ ॥

शत्रुओंके वीरोंको नष्ट करनेवाले भीमसेन कांपती हुई अपनी प्यारी द्रौपदीके घट्टेयुक्त तथा सूजे हुए हाथ चूम कर रोने लगे ॥ २९ ॥

तौ गृहीत्वा च कौन्तेयो बाष्पमुत्सृज्य वीर्यवान् ।
ततः परमदुःखार्त इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ४७६ ॥

महाबलवान् शत्रुनाशन कुन्तीनन्दन भीम उस समय द्रौपदीके हाथोंको हाथमें लेकर आंसू गिराने लगे और, फिर बहुत दुःखी होकर द्रौपदीसे कहने लगे ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥ ४७६ ॥

: २० :

भीमसेन उवाच

धिगस्तु मे बाहुबलं गाण्डीवं फल्गुनस्य च ।
यत्ते रक्तौ पुरा भूत्वा पाणी कृतकिणावुभौ ॥ १ ॥

भीमसेन बोले– मेरे बाहुबल और अर्जुनके गाण्डीव धनुषको धिक्कार है । जिनके होते हुए भी तुम्हारे दोनों लाल हाथोंमें घट्टे पड गए ॥ १ ॥

सभायां स्म विराटस्य करोमि कदनं महत् ।
तत्र मां धर्मराजस्तु कटाक्षेण न्यवारयत् ।
तदहं तस्य विज्ञाय स्थित एवास्मि भामिनि ॥ २ ॥

इच्छा हुई कि मैं राजा विराटकी सभामें मारकाट मचा दूं, परन्तु उसी समय धर्मराजने मुझे आंख मारकर रोक दिया था । हे सुन्दरी ! उनका अभिप्राय जानकर मैं भी चुप होकर बैठ गया ॥ २ ॥

×

यच्च राष्ट्रात्प्रच्यवनं कुरूणामवधश्च यः ।
सुयोधनस्य कर्णस्य शकुनेः सौबलस्य च ॥ ३ ॥

जो हम लोगोंका राज्यनाश हो गया है उस पर भी हमने कौरवोंका जो वध नहीं किया, तथा दुर्योधन, कर्ण, सुबलपुत्र शकुनि ॥ ३ ॥

दुःशासनस्य पापस्य यन्मया न हृतं शिरः ।
तन्मे दहति कल्याणि हृदि शल्यमिवार्पितम् ।
मा धर्मं जहि सुश्रोणि क्रोधं जहि महामते ॥ ४ ॥

और पापी दुःशासनका मैंने सिर नहीं काटा, इसी दुःखसे हे कल्याणि! मेरे शरीरके अंगप्रत्यंग जले जाते हैं। यह दुःख मेरे हृदयमें शल्यके समान लग रहा है। हे सुन्दर कमरवाली! हे महाबुद्धिमति! तुम धर्मका त्याग मत करो और क्रोधको छोड दो ॥ ४ ॥

इमं च समुपालम्भं त्वत्तो राजा युधिष्ठिरः ।
शृणुयाद्यदि कल्याणि कृत्स्नं जह्यात्स जीवितम् ॥ ५ ॥

हे कल्याणि! यदि महाराज युधिष्ठिर सुनेंगे कि द्रौपदी हमारी बहुत निर्भर्त्सना करती है, तब वे निसन्देह आत्महत्या कर लेंगे ॥ ५ ॥

धनंजयो वा सुश्रोणि यमौ वा तनुमध्यमे ।
लोकान्तरगतेष्वेषु नाहं शक्ष्यामि जीवितुम् ॥ ६ ॥

हे पतली कमरवाली! हे उत्तम जांघोंवाली! महाराजके मरनेसे अर्जुन, नकुल और सहदेव भी जीते न रहेंगे, इन सबके मर जाने पर मैं भी जीवित नहीं रह सकूंगा ॥ ६ ॥

सुकन्या नाम शार्याती भार्गवं च्यवनं वने ।
वल्मीकभूतं शाम्यन्तमन्वपद्यत भामिनी ॥ ७ ॥

तुमने सुना होगा कि पहले समयमें राजा शर्यातीकी पुत्री सुकन्याके पति च्यवन मुनि वनमें मिट्टीके तुल्य हो गये थे, तो भी वह भामिनी उनकी सेवा करनेसे निवृत्त नहीं हुई थी ॥७॥

नाडायनी चेन्द्रसेना रूपेण यदि ते श्रुता ।
पतिमन्वचरद्वृद्धं पुरा वर्षसहस्रिणम् ॥ ८ ॥

तुमने महारूपवती नाडायनी इन्द्रसेनाकी कथा सुनी होगी, वह पूर्वकालमें सहस्र वर्षके बूढे अपने पतिकी सेवा करती थी ॥ ८ ॥

दुहिता जनकस्यापि वैदेही यदि ते श्रुता ।
पतिमन्वचरत्सीता महारण्यनिवासिनम् ॥ ९ ॥

तुमने जनकराज दुलारी सीताका इतिहास सुना ही होगा, वह अपने वनवासी पतिके साथ ही वनको चली गई थी ॥ ९ ॥

रक्षसा निग्रहं प्राप्य रामस्य महिषी प्रिया ।
क्लिश्यमानापि सुश्रोणि राममेवान्वपद्यत ॥ १० ॥

हे उत्तम जंघावाली ! रामकी वह प्यारी पत्नी सीता रावणकी कैदमें रहकर बहुत दुःखी होनेपर भी रामका ध्यान ही करती रही ॥ १० ॥

लोपामुद्रा तथा भीरु वयोरूपसमन्विता ।
अगस्त्यमन्वयाद्धित्वा कामान्सर्वानमानुषान् ॥ ११ ॥

हे भीरु ! तुमने युवावस्थावाली, महारूपवती लोपामुद्राका वृत्तान्त भी सुना ही होगा, वह अपने सब भोगने योग्य सुखोंको छोडकर अगस्त्य मुनिके संग जंगलको चली गई थी ॥११॥

यथैताः कीर्तिता नार्यो रूपवत्यः पतिव्रताः ।
तथा त्वमपि कल्याणि सर्वैः समुदिता गुणैः ॥ १२ ॥

जैसी ये सब स्त्रियां रूपवती और पतिव्रता कही गई हैं, तुम भी वैसी ही हो ! हे कल्याणि ! तुम भी उन्हीं सब लक्षणोंसे युक्त हो ॥ १२ ॥

मादीर्घं क्षम कालं त्वं मासमध्यर्धसंमितम् ।
पूर्णे त्रयोदशे वर्षे राज्ञो राज्ञी भविष्यसि ॥ १३ ॥

इस थोडेसे समयको और सह लो, अब समय पूरा होनेमें केवल पन्द्रह दिन शेष हैं, यह तेरहवां वर्ष पूरा होते ही तुम महाराजकी महारानी बन जाओगी ॥ १३ ॥

द्रौपद्युवाच

आर्तयैतन्मया भीम कृतं बाष्पविमोक्षणम् ।
अपारयन्त्या दुःखानि न राजानमुपालभे ॥ १४ ॥

द्रौपदी बोली– हे भीम ! मैंने तुमसे रोकर जो कुछ कहा है, उसका कारण दुःख ही है । मैं महा दुःख सहने पर भी महाराजकी निन्दा नहीं करूंगी ॥ १४ ॥

विमुक्तेन व्यतीतेन भीमसेन महाबल ।
प्रत्युपस्थितकालस्य कार्यस्यानन्तरो भव ॥ १५ ॥

हे महाबली भीमसेन ! जो समय बीत गया है, उसकी चर्चा करनेसे क्या लाभ ? जो कार्य इस समय उपस्थित है, उसे करनेको उद्यत हो ॥ १५ ॥

ममेह भीम कैकेयी रूपाभिभवशङ्कया ।
नित्यमुद्विजते राजा कथं नेयादिमामिति ॥ १६ ॥

हे भीम ! सुदेष्णा रानी मेरे रूपको देखकर सदा यही शंका किया करती है कि राजा कहीं इसके वंशमें न हो जायें ॥ १६ ॥

तस्या विदित्वा तं भावं स्वयं चानृतदर्शनः।
कीचकोऽयं सुदुष्टात्मा सदा प्रार्थयते हि माम् ॥ १७ ॥

उसके इस भावको जानकर पाप दृष्टिवाला पापी दुष्टात्मा कीचक सदा मेरी इच्छा किया करता है ॥ १७ ॥

तमहं कुपिता भीम पुनः कोपं नियम्य च।
अब्रुवं कामसंमूढमात्मानं रक्ष कीचक ॥ १८ ॥

हे भीम! मैं पहले उस पर क्रुद्ध हुई और फिर अपने क्रोधको रोक कर कामसे मोहित कीचकसे कहने लगी कि हे कीचक! तू अपनी खैर मना ॥ १८ ॥

गंधर्वाणामहं भार्या पञ्चानां महिषी प्रिया।
ते त्वां निहन्युर्दुर्धर्षाः शूराः साहसकारिणः ॥ १९ ॥

मैं महापराक्रमी पांच गन्धर्वोंकी प्यारी स्त्री हूं, वे साहसी और महाशूर और बहुत दुर्धर्ष हैं, उन्हें यदि क्रोध आ गया तो तुझे मार डालेंगे ॥ १९ ॥

एवमुक्तः स दुष्टात्मा कीचकः प्रत्युवाच ह।
नाहं बिभेमि सैरन्ध्री गन्धर्वाणां शुचिस्मिते ॥ २० ॥

मेरे ये वचन सुन कर पापी कीचक बोला— हे सुन्दर हंसनेवाली सैरन्ध्री! मैं गन्धर्वोंसे तनिक भी नहीं डरता ॥ २० ॥

शतं सहस्रमपि वा गन्धर्वाणामहं रणे।
समागतं हनिष्यामि त्वं भीरु कुरु मे क्षणम् ॥ २१ ॥

मैं युद्धमें सामने आए हुए सैंकडों और हजारों गन्धर्वोंको भी मार सकता हूं, अतः, हे भीरु! क्षण भरके लिये तो मुझे प्रसन्न कर दो ॥ २१ ॥

इत्युक्ते चाब्रुवं सूतं कामातुरमहं पुनः।
न त्वं प्रतिबलस्तेषां गन्धर्वाणां यशस्विनाम् ॥ २२ ॥

उसके ऐसे वचन सुनकर मैंने पुनः कामपीडित उस सूत कीचकसे कहा कि— तू महाबलवान् यशस्वी गन्धर्वोंके समान पराक्रमी नहीं है ॥ २२ ॥

धर्मे स्थितास्मि सततं कुलशीलसमन्विता।
नेच्छामि कंचिद्वध्यन्तं तेन जीवसि कीचक ॥ २३ ॥

मैं कुल और शीलके अनुसार अपने धर्ममें स्थित हूं, और वधरूपी पाप करनेकी कभी इच्छा नहीं करती इसीलिये, हे कीचक! तू जीता है ॥ २३ ॥

एवमुक्तः स दुष्टात्मा प्रहस्य स्वनवत्तदा।
न तिष्ठति स्म सन्मार्गे न च धर्मं बुभूषति ॥ २४ ॥

मेरे ऐसे वचन सुनकर वह दुष्टात्मा खिलखिला कर हंसने लगा। वह कभी भले मार्गसे नहीं चलता, और नहीं धर्मको धारण करता है ॥ २४ ॥

पापात्मा पापभावश्च कामरागवशानुगः ।
अविनीतश्च दुष्टात्मा प्रत्याख्यातः पुनः पुनः ।
दर्शने दर्शने हन्यात्तथा जह्यां च जीवितम् ॥ २५ ॥

वह दुष्ट, पापी, पाप वासनावाला, काम पीडित, धृष्ट और दुष्ट है, उसे बार बार निषेध कर चुकी हूँ, यदि वह बार बार देखने पर ही मेरा निरादर करेगा तो मैं अवश्य ही अपने शरीरको छोड दूंगी ॥ २५ ॥

तद्धर्मे यतमानानां महान्धर्मो नशिष्यति ।
समयं रक्षमाणानां भार्या वो न भविष्यति ॥ २६ ॥

ऐसा करनेसे धर्म करनेवालोंका सब धर्म नष्ट हो जायगा, आप लोग जो अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, उसमें स्त्रीका नाश हो जायेगा ॥ २६ ॥

भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ।
प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥ २७ ॥

यह स्पष्ट है स्त्रीकी रक्षामें ही सन्तानकी रक्षा हो सकती और सन्तानकी रक्षा होनेसे अपनी आत्माकी रक्षा होती है ॥ २७ ॥

वदतां वर्णधर्मांश्च ब्राह्मणानां हि मे श्रुतम् ।
क्षत्रियस्य सदा धर्मो नान्यः शत्रुनिबर्हणात् ॥ २८ ॥

मैंने वर्णोंके धर्मका वर्णन करनेवाले ब्राह्मणोंके मुँहसे ऐसा ही सुना है कि शत्रुओंके मारनेके अतिरिक्त क्षत्रियोंका दूसरा धर्म नहीं है ॥ २८ ॥

पश्यतो धर्मराजस्य कीचको मां पदावधीत् ।
तव चैव समक्षं वै भीमसेन महाबल ॥ २९ ॥

हे महाबलशाली भीमसेन ! तुम्हारे ही सामने धर्मराजके देखते ही देखते कीचकने मुझे लातसे मारा ॥ २९ ॥

त्वया ह्यहं परित्राता तस्माद्घोराज्जटासुरात् ।
जयद्रथं तथैव त्वमजैषीर्भ्रातृभिः सह ॥ ३० ॥

तुमने महाघोर जटासुरके हाथसे मुझे छुडाया था, तुम्हींने अपने भाइयोंके सहित जयद्रथको जीता था ॥ ३० ॥

जहीममपि पापं त्वं योऽयं मामवमन्यते ।
कीचको राजवाल्लभ्याच्छोककृन्मम भारत ॥ ३१ ॥

जो मेरा अपमान करता है, उस दुष्ट पापी कीचकका भी तुम्हीं वध करो । हे भारत ! कीचक राजाका बहुत प्यारा है, इसलिये उसे देखकर मुझे बहुत शोक होता है ॥ ३१ ॥

तमेवं कामसंमत्तं भिन्धि कुम्भमिवाश्मनि ।
यो निमित्तमनर्थानां बहूनां मम भारत ॥ ३२ ॥

हे भारत ! जो मेरे बहुत सारे अनर्थोंका कारण है, उस कीचकके सिरको तुम उसी प्रकार तोड दो, जैसे कोई पत्थर पर घडा तोडता है ॥ ३२ ॥

तं चेज्जीवन्तमादित्यः प्रातरभ्युदयिष्यति ।
विषमालोड्य पास्यामि मा कीचकवशं गमम् ।
श्रेयो हि मरणं मह्यं भीमसेन तवाग्रतः ॥ ३३ ॥

यदि उसके जीते जी कल सूर्य उदय हो जायेगा अर्थात् कल वह यदि सूर्योदय तक जीवित रहा तो मैं विष घोलकर पीलूंगी । परन्तु कीचकके वशमें नहीं होऊंगी । हे भीमसेन ! तुम्हारे आगे मेरा मरना ही श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा प्रारुदत्कृष्णा भीमस्योरः समाश्रिता ।
भीमश्च तां परिष्वज्य महत्सान्त्वं प्रयुज्य च ।
कीचकं मनसागच्छत्सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ३४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ५१० ॥

वैशम्पायन बोले– ऐसा कहकर द्रौपदी भीमसेनके हृदयसे लिपट गई और रोने लगी । भीमसेनने उसे अपने हृदयसे लगाकर शान्त किया । कीचकको मारनेकी इच्छासे क्रोधमें भरकर होठोंको चाटा ॥ ३४ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २० ॥ ५१० ॥

: २१ :

भीमसेन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।
अद्य तं सूदयिष्यामि कीचकं सहबान्धवम् ॥ १ ॥

भीमसेन बोले– हे कल्याणि ! हे भीरु ! तुम जैसे कहती हो मैं वैसा ही करूंगा । मैं आज ही उस कीचकको उसके भाइयोंके सहित नष्ट कर दूंगा ॥ १ ॥

अस्याः प्रदोषे शर्वर्याः कुरुष्वानेन संगमम् ।
दुःखं शोकं च निर्धूय याज्ञसेनि शुचिस्मिते ॥ २ ॥

हे पवित्र मुस्कराहटोंवाली याज्ञसेनि ! तुम आजकी रात सन्ध्या समय अपने सब शोक और दुःखको दूर करके कीचकसे मिलकर बात करना ॥ २ ॥

यैषा नर्तनशाला वै मत्स्यराजेन कारिता ।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ ३ ॥

राजा विराटने जो यह नाचनेका घर बनवाया है, उसमें दिन भर कन्यायें नाचती हैं, और रात्रिको अपने अपने घर चली जाती हैं ॥ ३ ॥

तत्रास्ति शयनं भीरु दृढाङ्गं सुप्रतिष्ठितम् ।
तत्रास्य दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान्पितामहान् ॥ ४ ॥

हे भीरु ! वहां एक सुन्दर, दृढ, सोनेका स्थान बना है, उसी स्थानपर मैं दुष्ट कीचकको उसके मरे हुए बापदादाओंके दर्शन करा दूंगा अर्थात् मार डालूंगा ॥ ४ ॥

यथा च त्वां न पश्येयुः कुर्वाणां तेन संविदम् ।
कुर्यास्तथा त्वं कल्याणि यथा संनिहितो भवेत् ॥ ५ ॥

इस प्रकार करना कि जिस प्रकार तुम्हें कोई बात करते न देखे। हे कल्याणि ! तुम वही यत्न करना कि जिससे तुम उसे उस स्थानमें भेज दो ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथा तौ कथयित्वा तु बाष्पमुत्सृज्य दुःखितौ ।
रात्रिशेषं तदत्युग्रं धारयामासतुर्हृदा ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– इस तरह निश्चित करके उन दोनोंने बाकी बची हुई वह घोर रात्री दुःखसे रो रो कर बिताई ॥ ६ ॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरुत्थाय कीचकः ।
गत्वा राजकुलायैव द्रौपदीमिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥

उस रात्रीके बीत जाने पर सबेरे उठकर कीचक भी सीधे राजाके भवनमें पहुंचा और द्रौपदीसे यह बोला ॥ ७ ॥

सभायां पश्यतो राज्ञः पातयित्वा पदाहनम् ।
न चैवालभथास्त्राणमभिपन्ना बलीयसा ॥ ८ ॥

सभामें राजा विराटके देखते देखते मैंने तुझे पृथ्वीपर गिराकर लातसे मारा, फिर भी तू रक्षा प्राप्त नहीं कर सकी अर्थात् तेरी रक्षा करने कोई नहीं आया। मुझ बलवान्का विरोध करनेसे कोई तेरी रक्षा नहीं कर सकता है ॥ ८ ॥

प्रवादेन हि मत्स्यानां राजा नाम्नायमुच्यते ।
अहमेव हि मत्स्यानां राजा वै वाहिनीपतिः ॥ ९ ॥

कोई मुझे दोष न दे, इस प्रवादके राजा विराट नाममात्रका राजा बना हुआ है। वास्तवमें मैं ही मत्स्यदेशका राजा और सेनापति हूं ॥ ९ ॥

सा सुखं प्रतिपद्यस्व दासो भीरु भवामि ते।
अह्नाय तव सुश्रोणि शतं निष्कान्ददाम्यहम् ॥ १० ॥

हे भीरु ! तू मुझे स्वीकार कर ले और सुखसे रह, मैं तेरा दास बनकर रहूंगा। हे उत्तम श्रोणिवाली ! मैं प्रति दिन तुझे सौ निष्क दूंगा ॥ १० ॥

दासीशतं च ते दद्यां दासानामपि चाऽपरम्।
रथं चाश्वतरीयुक्तमस्तु नौ भीरु संगमः ॥ ११ ॥

तेरी सेवाके लिये सौ दासियां और सौ दास दूंगा। हे भीरु ! तेरे लिये खच्चरयुक्त रथ उपस्थित रहेंगे, इसलिये तू मुझसे सङ्गम कर ॥ ११ ॥

द्रौपद्युवाच

एकं मे समयं त्वद्य प्रतिपद्यस्व कीचक।
न त्वां सखा वा भ्राता वा जानीयात्संगतं मया ॥ १२ ॥

द्रौपदी बोली— हे कीचक ! तुम आज मुझसे यह एक ही प्रतिज्ञा करो कि तुम्हारे और मेरे सङ्गमको भाई और मित्र भी न जान सकेंगे ॥ १२ ॥

अवबोधाद्धि भीतास्मि गन्धर्वाणां यशस्विनाम्।
एवं मे प्रतिजानीहि ततोऽहं वशगा तव ॥ १३ ॥

क्योंकि मैं यशस्वी गन्धर्वोंसे बहुत डरती हूँ, वे हमारे इस संगमको जान जाएंगे। यदि यह प्रतिज्ञा तुम मुझसे करो, तो मैं तुम्हारे वशमें हूँ ॥ १३ ॥

कीचक उवाच

एवमेतत्करिष्यामि यथा सुश्रोणि भाषसे।
एको भद्रे गमिष्यामि शून्यमावसथं तव ॥ १४ ॥
समागमार्थं रंभोरु त्वया मदनमोहितः।
यथा त्वां नावभोत्स्यन्ति गन्धर्वाः सूर्यवर्चसः ॥ १५ ॥

कीचक बोला— हे कदलीके समान जंघा वाली ! हे सुश्रोणि ! हे कल्याणि ! तुम जैसे कहती हो, मैं वैसेही करूंगा, कामसे पीडित मैं तुमसे संगम करनेके लिये शून्य घरमें अकेला ही जाऊंगा, ऐसा करनेसे सूर्यके समान महातेजस्वी गन्धर्व भी तुम्हें नहीं देख सकेंगे ॥ १४–१५ ॥

द्रौपद्युवाच

यदिदं नर्तनागारं मत्स्यराजेन कारितम्।
दिवात्र कन्या नृत्यन्ति रात्रौ यान्ति यथागृहम् ॥ १६ ॥

द्रौपदी बोली— यह जो राजा विराटने नाचनेके लिये घर बनवाया हुआ है, वहां दिनभर कन्यायें नाचती हैं और रातको अपने अपने घर चली जाती हैं ॥ १६ ॥

तमिस्रे तत्र गच्छेथा गंधर्वास्तन्न जानते ।
तत्र दोषः परिहृतो भविष्यति न संशयः ॥ १७ ॥

उसे गन्धर्व लोग नहीं जानते हैं । तुम अन्धेरेमें रात्रीके समय वहां जाना । निस्सन्देह वहां संगम करनेसे हमारा दोष कोई जान नहीं सकेगा ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तमर्थं प्रति जल्पन्त्याः कृष्णायाः कीचकेन ह ।
दिवसार्धं समभवन्मासेनैव समं नृप ॥ १८ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! इस प्रकार द्रौपदीका कीचकके साथ बात करते हुए दो पहर दिन बीत गया । और वह आधा दिन द्रौपदीके लिए महीनेके समान बीता ॥ १८ ॥

कीचकोऽथ गृहं गत्वा भृशं हर्षपरिप्लुतः ।
सैरंध्रीरूपिणं मूढो मृत्युं तं नावबुद्धवान् ॥ १९ ॥

तब कीचक बहुत प्रसन्न होकर अपने घरको चला गया; परन्तु उस मूर्खने यह न समझा कि सैरन्ध्री मेरे लिये मृत्युरूप हो गई है ॥ १९ ॥

गंधाभरणमाल्येषु व्यासक्तः स विशेषतः ।
अलंचकार सोऽऽत्मानं सत्वरः काममोहितः ॥ २० ॥

काममोहित कीचक उसी समयसे अपने शरीरको संवारने लगा । वह विशेषकर गंध, आभूषण माला आदि धारण करनेमें आसक्त हो गया ॥ २० ॥

तस्य तत्कुर्वतः कर्म कालो दीर्घ इवाभवत् ।
अनुचिन्तयतश्चापि तामेवायतलोचनाम् ॥ २१ ॥

कीचक विशालनयनी द्रौपदीका स्मरण करते हुए, अपने शरीरमें सुगन्धित पदार्थ, आभूषण और माला धारण करने लगा, उसको वह समय बहुत लम्बा जान पडा ॥ २१ ॥

आसीदभ्यधिका चास्य श्रीः श्रियं प्रमुमुक्षतः ।
निर्वाणकाले दीपस्य वर्तीमिव दिधक्षतः ॥ २२ ॥

मरनेकी इच्छा करनेवाले कीचकके आभूषण धारण करनेसे उस समय उसकी शोभा ऐसी बढी, जैसे बुझनेके समय दियेकी बत्तीका प्रकाश बढता है ॥ २२ ॥

कृतसंप्रत्ययस्तत्र कीचकः काममोहितः ।
नाजानाद्दिवसं यान्तं चिन्तयानः समागमम् ॥ २३ ॥

काममोहित कीचकने द्रौपदीके वचन पर विश्वास कर लिया, परन्तु समागमका ध्यान करते हुए उसे दिन कब डूब गया, इसका भी ध्यान न रहा ॥ २३ ॥

ततस्तु द्रौपदी गत्वा तदा भीमं महानसे।
उपातिष्ठत कल्याणी कौरव्यं पतिमन्तिकात् ॥ २४ ॥

उसी समय कल्याणी द्रौपदी भीमसेनके पास रसोई घरमें जाकर कुरुवंशमें उत्पन्न अपने पतिके पास खडी हो गई ॥ २४ ॥

तमुवाच सुकेशान्ता कीचकस्य मया कृतः।
संगमो नर्तनागारे यथावोचः परंतप ॥ २५ ॥

घुंघराले बालोंवाली वह द्रौपदी बोली कि जिस प्रकार शत्रुनाशी तुमने कहा था, उसी प्रकार मैंने आधी रातके समय कीचकको उसी नाच घरमें बुलाया है ॥ २५ ॥

शून्यं स नर्तनागारमागमिष्यति कीचकः।
एको निशि महाबाहो कीचकं तं निषूदय ॥ २६ ॥

कीचक आधी रातको अकेला ही उस शून्य नाचघरमें आवेगा, हे महाबाहू ! तुम वहीं उसको मार डालना ॥ २६ ॥

तं सूतपुत्रं कौन्तेय कीचकं मददर्पितम्।
गत्वा त्वं नर्तनागारं निर्जीवं कुरु पाण्डव ॥ २७ ॥

हे कुन्तीनन्दन पाण्डव ! तुम नाच घरमें जाकर उस काममोहित गर्वयुक्त सूतपुत्र कीचकका नाश करो ॥ २७ ॥

दर्पाच्च सूतपुत्रोऽसौ गन्धर्वानवमन्यते।
तं त्वं प्रहरतां श्रेष्ठ नडं नाग इवोद्धर ॥ २८ ॥

वह मूर्ख अभिमानके वशमें होकर गन्धर्वोंका निरादर करता है। हे मारनेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम उसको मारो और कीचमें फँसी हुई हथिनीके समान मेरा उद्धार करो ॥ २८ ॥

अश्रु दुःखाभिभूताया मम मार्जस्व भारत।
आत्मनश्चैव भद्रं ते कुरु मानं कुलस्य च ॥ २९ ॥

हे भारत ! तुम्हारा कल्याण हो। मुझ दुःखिनीके आंसू पोंछो तथा अपना और अपने कुलका मान रखो ॥ २९ ॥

भीमसेन उवाच

स्वागतं ते वरारोहे यन्मां वेदयसे प्रियम्।
न ह्यस्य कंचिदिच्छामि सहायं वरवर्णिनि ॥ ३० ॥

भीमसेन बोले– हे सुन्दर मुखवाली ! तुमने मुझको बहुत प्यारी बात सुनाई। मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, और, हे सुन्दरी ! युद्धके समय मैं किसी सहायककी इच्छा नहीं करता ॥ ३० ॥

या मे प्रीतिस्त्वयाख्याता कीचकस्य समागमे ।
हत्वा हिडिम्बं सा प्रीतिर्ममासीद्वरवर्णिनि ॥ ३१ ॥

हे सुन्दरि ! कीचकसे युद्ध होनेकी वार्ता सुनाकर मुझे वैसा ही आनन्द प्रदान किया, जैसा आनन्द हिडिम्बासुरके मारने पर हुआ था ॥ ३१ ॥

सत्यं भ्रातृंश्च धर्मं च पुरस्कृत्य ब्रवीमि ते।
कीचकं निहनिष्यामि वृत्रं देवपतिर्यथा ॥ ३२ ॥

मैं अपने धर्म और भाइयोंकी शपथ खाकर तुमसे सत्य कहता हूं कि कीचकको इस प्रकार मारूंगा, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था ॥ ३२ ॥

तं गह्वरे प्रकाशे वा पोथयिष्यामि कीचकम्।
अथ चेदवभोत्स्यन्ति हंस्ये मत्स्यानपि ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

मैं निश्चय ही कीचकको अन्धेरे अथवा चांदनीमें पीस दूंगा, यदि उसकी ओर होकर मत्स्य-देशी लोग लडेंगे तो उनका भी नाश कर दूंगा ॥ ३३ ॥

ततो दुर्योधनं हत्वा प्रतिपत्स्ये वसुंधराम्।
कामं मत्स्यमुपास्तां हि कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३४ ॥

फिर दुर्योधनको मारकर राज्य छीन लूंगा, राजा युधिष्ठिर भले ही इच्छानुसार विराटकी सेवा करते रहें ॥ ३४ ॥

द्रौपद्युवाच

यथा न संत्यजेथास्त्वं सत्यं वै मत्कृते विभो।
निगूढस्त्वं तथा वीर कीचकं विनिपातय ॥ ३५ ॥

द्रौपदी बोली— हे प्राणनाथ ! आप मेरे लिये अपने सत्यको अर्थात् छिपे रहनेके संकेतको मत छोडिये, वीर ! जैसे भी उसे छिपकर मार सके वैसा ही यत्न कीजिये ॥ ३५ ॥

भीमसेन उवाच

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
अदृश्यमानस्तस्याद्य तमस्विन्यामनिन्दिते ॥ ३६ ॥
नागो बिल्वमिवाक्रम्य पोथयिष्याम्यहं शिरः ।
अलभ्यामिच्छतस्तस्य कीचकस्य दुरात्मनः ॥ ३७ ॥

भीमसेन बोले— हे भीरु ! जैसे तुम कहती हो मैं वैसे ही करूँगा, हे अनिन्दिते ! मैं उस स्थानमें छिपकर अलभ्य होनेपर भी तुम्हें पानेकी इच्छा करनेवाले उस दुष्टात्मा कीचकके शिरको इस प्रकार तोडूंगा जैसे मतवाला हाथी बेलके फलको तोडता है ॥ ३६–३७ ॥

वैशम्पायन उवाच

भीमोऽथ प्रथमं गत्वा रात्रौ छन्न उपाविशत् ।
मृगं हरिरिवादृश्यः प्रत्याकाङ्क्षत्स कीचकम् ॥ ३८ ॥

वैशम्पायन बोले— तब भीमसेन रात्रीके समय पहलेसे ही छिपकर उस नाचघरमें जा बैठे और इस प्रकार कीचकका मार्ग देखने लगे, जैसे छिपकर सिंह हरिणका मार्ग देखता है ॥ ३८ ॥

कीचकश्चाप्यलंकृत्य यथाकाममुपाव्रजत् ।
तां वेलां नर्तनागारे पाञ्चालीसंगमाशया ॥ ३९ ॥

उसी समय कीचक भी द्रौपदीसे संगम करनेकी इच्छासे अपने शरीरको सजाकर उस नाचघरमें पहुंचा ॥ ३९ ॥

मन्यमानः स संकेतमागारं प्राविशच्च तम् ।
प्रविश्य च स तद्वेश्म तमसा संवृतं महत् ॥ ४० ॥

कीचक द्रौपदीके इशारेको मानकर अन्धकारसे घिरे हुए उस बडे महलमें घुसा और उस नाचघरमें जाकर प्रविष्ट हुआ ॥ ४० ॥

पूर्वागतं ततस्तत्र भीममप्रतिमौजसम् ।
एकान्तमास्थितं चैनमाससाद सुदुर्मतिः ॥ ४१ ॥

अनन्तर दुरात्मा कीचकने पहलेसे ही आये हुए महाबलवान् भीमसेनको एक ओर पलंगपर सोते हुए पाया ॥ ४१ ॥

शयानं शयने तत्र मृत्युं सूतः परामृशत् ।
जाज्वल्यमानं कोपेन कृष्णाधर्षणजेन ह ॥ ४२ ॥

द्रौपदीके निरादरसे उत्पन्न क्रोधके कारण जलते हुए भीमसेनके रूपमें सूतपुत्रने मानों साक्षात् मृत्युका ही हाथ पकडा ॥ ४२ ॥

उपसंगम्य चैवैनं कीचकः काममोहितः ।
हर्षोन्मथितचित्तात्मा स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥ ४३ ॥

पश्चात् कामसे व्याकुल कीचक आनन्दसे मथित चित्त और आत्मावाला होकर भीमसेनके पास गया, और प्रसन्न हो मुस्कराकर कहने लगा ॥ ४३ ॥

प्रापितं ते मया वित्तं बहुरूपमनन्तकम् ।
तत्सर्वं त्वां समुद्दिश्य सहसा समुपागतः ॥ ४४ ॥
नाकस्मान्मां प्रशंसन्ति सदा गृहगताः स्त्रियः ।
सुवासा दर्शनीयश्च नान्योऽस्ति त्वादृशः पुमान् ॥ ४५ ॥

हे सुन्दरि ! मैं तेरे लिये बहुत प्रकारका धन और सुन्दर सुन्दर आभूषण लाया हूं । वह सब मैं तुझे देने आया हूं, आज मेरे घरकी सब स्त्रियां अकस्मात् कहने लगीं कि तुम्हारे समान सुन्दर और उत्तम वस्त्रधारी पुरुष जगत्में और कोई नहीं है ॥ ४४–४५ ॥

भीमसेन उवाच

दिष्टया त्वं दर्शनीयोऽसि दिष्टयात्मानं प्रशंससि ।
ईदृशस्तु त्वया स्पर्शः स्पृष्टपूर्वो न कर्हिचित् ॥ ४६ ॥

भीमसेन बोले–ईश्वरने तुमको मेरे ही प्रारब्धसे सुन्दर बनाया है। तुम सौभाग्यसे अपनी प्रशंसा कर रहे हो, पर ऐसा स्पर्श तुमने भी कभी पहले अनुभव नहीं किया होगा ॥४६॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ।
समुत्पत्य च कौन्तेयः प्रहस्य च नराधमम् ।
भीमो जग्राह केशेषु माल्यवत्सु महाबलः ॥ ४७ ॥

वैशम्पायन बोले– भयंकर पराक्रमवाले, महाबाहु कुन्तीपुत्र भीमसेन यह कहकर वेगसे उठे और हंसकर महाबलवान् भीमसेनने नराधम कीचकके फूलोंकी मालाओंसे सजे हुए बाल पकड लिये ॥ ४७ ॥

स केशेषु परामृष्टो बलेन बलिनां वरः ।
आक्षिप्य केशान्वेगेन बाह्वोर्जग्राह पाण्डवम् ॥ ४८ ॥
बाहुयुद्धं तयोरासीत्क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ।
वसंते वाशिताहेतोर्बलवद्गजयोरिव ॥ ४९ ॥

इसप्रकार बालोंसे पकडे जाने पर बलशालियोंमें श्रेष्ठ कीचकने भी वेगसे अपने बालोंको छुडाकर भीमसेनके हाथ पकड लिये। तब उन दोनों क्रुद्ध हुए हुए नरसिंहोंका घोर बाहुयुद्ध उसीप्रकार होने लगा जैसे वसन्त ऋतुमें एक हथिनीके लिये दो हाथी लडते हों ॥ ४८–४९ ॥

ईषदागलितं चापि क्रोधाच्चलपदं स्थितम् ।
कीचको बलवान्भीमं जानुभ्यामाक्षिपद्भुवि ॥ ५० ॥

यद्यपि उस समय कीचकका बहुत थोडा बल रह गया था, तो भी उसने क्रोध कर अपनी घुटनोंके बलसे भीमसेनको पृथ्वी पर पटक दिया ॥ ५० ॥

पातितो भुवि भीमस्तु कीचकेन बलीयसा ।
उत्पपाताथ वेगेन दंडाहत इवोरगः ॥ ५१ ॥

बलवान् कीचकके द्वारा पृथ्वी पर गिरा दिए जानेपर भीमसेन पुनः दण्डेसे पीटे गए सांपके समान उठे ॥ ५१ ॥

स्पर्धया च बलोन्मत्तौ तावुभौ सूतपाण्डवौ ।
निशीथे पर्यकर्षेतां बलिनौ निशि निर्जने ॥ ५२ ॥

फिर बलसे उन्मत्त वे दोनों सूत और पाण्डव उस निर्जन स्थलमें आधी रातके समय स्पर्धाके साथ एक दूसरेको खींचने लगे ॥ ५२ ॥

ततस्तद्भवनं श्रेष्ठं प्राकंपत मुहुर्मुहुः ।
बलवच्चापि संक्रुद्धावन्योन्यं प्रतिगर्जताम् ॥ ५३ ॥

तब वह उत्तम भवन उन दोनों क्रोधी वीरोंके गर्जनेसे कांपने लगा और वे दोनों वीर भी एक दूसरेके प्रति गरजने लगे ॥ ५३ ॥

तलाभ्यां तु स भीमेन वक्षस्यभिहतो बली ।
कीचको रोषसंतप्तः पदान्न चलितः पदम् ॥ ५४ ॥

तब बलवान् भीमने कीचकके हृदयमें एक घूंसा मारा, परन्तु कीचक क्रोधमें भरकर एक चरण भी पीछे न हटा ॥ ५४ ॥

मुहूर्तं तु स तं वेगं सहित्वा भुवि दुःसहम् ।
बलादहीयत तदा सूतो भीमबलार्दितः ॥ ५५ ॥

इस भूमि पर स्थित किसीके द्वारा भी सहन करनेमें कठिन भीमके उस घूंसेको मुहूर्त भर तक सहन करनेके बाद उसका बल नष्ट होने लगा ॥ ५५ ॥

तं हीयमानं विज्ञाय भीमसेनो महाबलः ।
वक्षस्यानीय वेगेन ममन्थैनं विचेतसम् ॥ ५६ ॥

महाबली भीमने उसको बलहीन होता देखकर छाती तक उठाकर जोरसे पृथ्वीपर धर पटका और उस नष्ट संज्ञावाले कीचकको मथ दिया ॥ ५६ ॥

क्रोधाविष्टो विनिःश्वस्य पुनश्चैनं वृकोदरः ।
जग्राह जयतां श्रेष्ठः केशेष्वेव तदा भृशम् ॥ ५७ ॥

फिर विजय प्राप्त करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीमने क्रोधमें भरकर और लम्बा श्वास लेकर कीचकके बालोंको जोरसे पकड लिया ॥ ५७ ॥

गृहीत्वा कीचकं भीमो विरुराव महाबलः ।
शार्दूलः पिशिताकांक्षी गृहीत्वेव महामृगम् ॥ ५८ ॥

महाबलवान् भीमसेन कीचकको पकडकर इस प्रकार चिल्लाया जैसे मांस खानेकी इच्छा-वाला शार्दूल हरिनको पकड कर गर्जता है ॥ ५८ ॥

तस्य पादौ च पाणी च शिरो ग्रीवां च सर्वशः ।
काये प्रवेशयामास पशोरिव पिनाकधृक् ॥ ५९ ॥

फिर उसके हाथ, पैर और शिर तोडकर उसके पेटमें प्रविष्ट करा दिये । भीमने कीचकको इस प्रकार मारा जैसे शिव पशुको मारते हैं ॥ ५९ ॥

तं संमथितसर्वांगं मांसपिंडोपमं कृतम्।
कृष्णायै दर्शयामास भीमसेनो महाबलः ॥ ६० ॥

महापराक्रमी भीमने कीचकके सब अंग तोड कर और उसे मांसपिण्डकी भांति बनाकर द्रौपदीको दिखाया ॥ ६० ॥

उवाच च महातेजा द्रौपदीं पाण्डुनन्दन।
पश्यैनमेहि पांचालि कामुकोऽयं यथा कृतः ॥ ६१ ॥

फिर पाण्डुनन्दन महातेजस्वी भीम द्रौपदीसे बोले, हे पाञ्चालि ! तुम यहां आकर इस कामी कीचककी दशा देखो, मैंने इसे कैसे बना दिया है ॥ ६१ ॥

तथा स कीचकं हत्वा गत्वा रोषस्य वै शमम्।
आमंत्र्य द्रौपदीं कृष्णां क्षिप्रमायान्महानसम् ॥ ६२ ॥

इस प्रकार भीम कीचकको मारकर और अपने क्रोधको शान्त करके और द्रौपदीसे पूछकर शीघ्र ही रसोई घरमें आकर सो गये ॥ ६२ ॥

कीचकं घातयित्वा तु द्रौपदी योषितां वरा।
प्रहृष्टा गतसंतापा सभापालानुवाच ह ॥ ६३ ॥

स्त्रियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदी भी कीचकका नाश कराकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, फिर दुःखसे रहित और प्रसन्न होकर पहरेवालोंसे बोली ॥ ६३ ॥

कीचकोऽयं हतः शेते गंधर्वैः पतिभिर्मम।
परस्त्रीकामसंमत्तः समागच्छत पश्यत ॥ ६४ ॥

मेरे गन्धर्व–पतियोंके द्वारा मारा जाकर यह परस्त्रीकामुक कीचक सो रहा है, तुम लोग इसको आकर देखो ॥ ६४ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या नर्तनागाररक्षिणः।
सहसैव समाजग्मुरादायोल्काः सहस्रशः ॥ ६५ ॥

उसके ऐसे वचन सुनकर सहस्रों नृत्यालयके पहरेवाले मशाल जलाकर उस स्थानमें इकट्ठे होकर आये ॥ ६५ ॥

ततो गत्वाथ तद्वेश्म कीचकं विनिपातितम्।
गतासुं ददृशुर्भूमौ रुधिरेण समुक्षितम् ॥ ६६ ॥

उन सबने उस घरमें जाकर रुधिरसे भीगे हुए प्राणरहित कीचकको पृथ्वी पर पडा हुआ देखा ॥ ६६ ॥

क्वास्य ग्रीवा क्व चरणौ क्व पाणी क्व शिरस्तथा।
इति स्म तं परीक्षन्ते गंधर्वेण हतं तदा　　　　　　॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ५७७ ॥

इसकी गर्दन कहां है, इसके पैर कहां हैं, हाथ कहां हैं, और शिर कहां गया? इसे देखकर तब सब लोगोंने निश्चय किया कि इसको अवश्य ही गन्धर्वोंने मारा है ॥ ६७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २१ ॥ ५७७ ॥

: २२ :

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्काले समागम्य सर्वे तत्रास्य बांधवाः।
रुरुदुः कीचकं दृष्ट्वा परिवार्य समन्ततः　　　　　　॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले—हे राजा जनमेजय! इस समाचारको सुनकर कीचकके सब बान्धव वहां आये और कीचकको देखकर उसे चारों ओर से घेर कर रोने लगे ॥ १ ॥

सर्वे संहृष्टरोमाणः संत्रस्ताः प्रेक्ष्य कीचकम्।
तथा सर्वाङ्गसंभुग्नं कूर्मं स्थल इवोद्धृतम्　　　　　　॥ २ ॥

भूमि पर लाये गए कछुवेके सभी अंग जिस प्रकार उसके शरीरमें समा जाते हैं, उसी प्रकार कीचकको हाथ पैर रहित पडा हुआ देखकर सब डर गए और डरके कारण उनके रोंगटे खडे हो गए ॥ २ ॥

पोथितं भीमसेनेन तमिन्द्रेणेव दानवम्।
संस्कारयितुमिच्छन्तो बहिर्नेतुं प्रचक्रमुः　　　　　　॥ ३ ॥

उन्होंने भीमसेन द्वारा मारे हुए कीचकको इस प्रकार देखा, जैसे इन्द्रसे मारे हुए राक्षसको उसके बन्धु लोग देखते हैं, तदनन्तर उन्होंने संस्कार करनेकी इच्छासे कीचकको बाहर निकाला ॥ ३ ॥

ददृशुस्ते ततः कृष्णां सूतपुत्राः समागताः।
अदूरादनवद्यांगीं स्तंभमालिंग्य तिष्ठतीम्　　　　　　॥ ४ ॥

तब आए हुए उन कीचकके भाइयोंने थोडी दूर पर ही खम्भेसे चिपटकर खडी हुई सुन्दरी द्रौपदीको खडी देखा ॥ ४ ॥

समवेतेषु सूतेषु तानुवाचोपकीचकः।
हन्यतां शीघ्रमसती यत्कृते कीचको हतः　　　　　　॥ ५ ॥

उन एकत्रित हुए हुए सूतोंमेंसे उपकीचक बोला, इसी दुष्टाके कारण कीचक मारा गया है, इस लिये इसे भी शीघ्र ही मार डालना चाहिये ॥ ५ ॥

अथवा नेह हंतव्या दह्यतां कामिना सह ।
मृतस्याऽपि प्रियं कार्यं सूतपुत्रस्य सर्वथा ॥ ६ ॥

अथवा इसको यहां मत मारो, कीचकके साथ जीती ही जला दो। क्योंकि मरे हुए भी कामी कीचकका हम लोगोंको प्रिय करना चाहिये ॥ ६ ॥

ततो विराटमूचुस्ते कीचकोऽस्याः कृते हतः ।
सहाद्यानेन दह्येत तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥

तदनन्तर वे सब लोग राजा विराटके पास जाकर बोले कि इसी सैरंध्रीके कारण कीचक मारा गया है, अतः यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग कीचकके साथ इसको भी जला दें ? ॥७॥

पराक्रमं तु सूतानां मत्वा राजान्वमोदत ।
सैरंध्र्याः सूतपुत्रेण सह दाहं विशां पते ॥ ८ ॥

हे प्रजाओंके स्वामिन् ! राजाने सूतपुत्रोंके बलसे डरकर द्रौपदीको सूतपुत्र कीचकके साथ जलानेकी अनुमति दे दी ॥ ८ ॥

तां समासाद्य वित्रस्तां कृष्णां कमललोचनाम् ।
मोमुह्यमानां ते तत्र जगृहुः कीचका भृशम् ॥ ९ ॥

तब वे सब लोग भयसे व्याकुल, मोहसे भरी कमलनयनी द्रौपदीके पास आये, और द्रौपदीको पकडने लगे ॥ ९ ॥

ततस्तु तां समारोप्य निबद्ध्य च सुमध्यमाम् ।
जग्मुरुद्यम्य ते सर्वे श्मशानमभितस्तदा ॥ १० ॥

वे सुन्दरी द्रौपदीको अर्थी पर चढाकर और कीचकके साथ बांधकर उस अर्थीको उठाकर श्मशानकी ओर ले चले ॥ १० ॥

ह्रियमाणा तु सा राजन्सूतपुत्रैरनिंदिता ।
प्राक्रोशन्नाथमिच्छन्ती कृष्णा नाथवती सती ॥ ११ ॥

इस प्रकार सूतपुत्रोंके द्वारा जबर्दस्ती ले जाती हुई निन्दारहित, पतियोंवाली पतिव्रता द्रौपदी शरणकी कामना करती हुई अपने पतियोंको पुकार कर रोने लगी ॥ ११ ॥

द्रौपद्युवाच

जयो जयंतो विजयो जयत्सेनो जयद्बलः ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥ १२ ॥

द्रौपदी बोली– जय, जयन्त, विजय, जयत्सेन और जयद्बल मेरे इस वचनको सुनें । ये कीचक मुझे पकडे लिये जाते हैं ॥ १२ ॥

येषां ज्यातलनिर्घोषो विस्फूर्जितमिवाशनेः ।
व्यश्रूयत महायुद्धे भीमघोषस्तरस्विनाम् ॥ १३ ॥

युद्धमें जिन पराक्रमी गंधर्वोंके धनुषोंका शब्द बिजलीकी कडकके समान होता है तथा जिनकी गर्जना भी मेघोंके समान होती है॥ १३ ॥

रथघोषश्च बलवान्गंधर्वाणां यशस्विनाम् ।
ते मे वाचं विजानन्तु सूतपुत्रा नयन्ति माम् ॥ १४ ॥

जिन यशस्वी गन्धर्वोंके रथोंका शब्द महाघोर होता है, वे मेरे पति मेरे वचनको सुनें। ये सूतपुत्र मुझे पकडकर लिये जाते हैं ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्यास्ताः कृपणा वाचः कृष्णायाः परिदेविताः ।
श्रुत्वैवाभ्यपतद्भीमः शयनादविचारयन् ॥ १५ ॥

वैशम्पायन बोले– रोती हुई उस द्रौपदीकी उस दीनवाणीको सुनकर भीमसेन तत्काल बिना कुछ सोचे विचारे बिस्तर परसे उठ गए ॥ १५ ॥

भीमसेन उवाच

अहं श्रृणोमि ते वाचं त्वया सैरंध्रि भाषिताम्।
तस्मात्ते सूतपुत्रेभ्यो न भयं भीरु विद्यते ॥ १६ ॥

भीमसेन बोले– हे सुन्दरि सैरन्ध्रि ! तेरे द्वारा कहे गए वचनको मैं सुन रहा हूं, इसलिये, हे भीरु ! तुझे सूतपुत्रोंसे कुछ भय नहीं है॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा स महाबाहुर्विजजृम्भे जिघांसया ।
ततः स व्यायतं कृत्वा वेषं विपरिवर्त्य च ।
अद्वारेणाभ्यवस्कंद्य निर्जगाम बहिस्तदा ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– ऐसा कहकर महाबाहु भीमसेनने उन सूतपुत्रोंको मारनेकी इच्छासे जम्भाई ली और प्रयत्नसे अपने वेषको रंगबिरंगा बनाकर वेश बदल कर गन्धर्वके समान बन गए और अद्वारसे कूद कर बाहर निकल गए ॥ १७ ॥

स भीमसेनः प्राकारादारुह्य तरसा द्रुमम् ।
श्मशानाभिमुखः प्रायाद्यत्र ते कीचका गताः ॥ १८ ॥

तब भीमसेन जल्दीसे पेडके सहारे नगरके परकोटे पर चढकर, जहां वे कीचक गए थे, उस श्मशानकी ओर दौडे ॥ १८ ॥

स तं वृक्षं दशव्यामं सस्कंधविटपं बली ।
प्रगृह्याभ्यद्रवत्सूतान्दण्डपाणिरिवांतकः ॥ १९ ॥

दस पुरुष जितनी ऊंचाईवाले तथा शाखाओंवाले वृक्षको उखाड कर महाबलशाली भीम दण्डधारी यमराजके समान रूप धारण करके सूतोंकी ओर दौडे ॥ १९ ॥

ऊरुवेगेन तस्याथ न्यग्रोधाश्वत्थकिंशुकाः ।
भूमौ निपतिता वृक्षाः संघशस्तत्र शेरते ॥ २० ॥

उनके दौडनेके कारण उनकी जांघोंके वेगसे अनेक बड पीपल और ढाक वृक्ष टूटकर पृथ्वी पर गिर गये और उन वृक्षोंका ढेर लग गया ॥ २० ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं दृष्ट्वा गंधर्वमागतम् ।
वित्रेसुः सर्वतः सूता विषादभयकंपिताः ॥ २१ ॥

सिंहके समान क्रुद्ध उस गन्धर्वको आया हुआ देखकर वे सभी सूत दुःख और भयसे कांपते हुए बहुत ही डर गए ॥ २१ ॥

तमन्तकमिवायान्तं गन्धर्वं प्रेक्ष्य ते तदा ।
दिधक्षन्तस्तदा ज्येष्ठं भ्रातरं ह्युपकीचकाः ।
परस्परमथोचुस्ते विषादभयकंपिताः ॥ २२ ॥

तब अपने बडे भाईको जलानेकी इच्छा करनेवाले वे सब उपकीचक यमके समान आते हुए उस गंधर्वको देखकर दुःख और भयसे कंपित होते हुए आपसमें एक दूसरेसे बातें करने लगे ॥ २२ ॥

गंधर्वो बलवानेति क्रुद्ध उद्यम्य पादपम् ।
सैरंध्री मुच्यतां शीघ्रं महन्नो भयमागतम् ॥ २३ ॥

यह क्रोधमें भरा हुआ गन्धर्व वृक्ष लिये चला आता है इस लिये सैरन्ध्रीको छोड दो । हमारे लिए महान् भय उपस्थित हो गया है ॥ २३ ॥

ते तु दृष्ट्वा तमाविद्धं भीमसेनेन पादपम् ।
विमुच्य द्रौपदीं तत्र प्राद्रवन्नगरं प्रति ॥ २४ ॥

जब उन्होंने देखा कि यह गन्धर्व हम लोगोंको इस वृक्षसे मार डालेगा, तब वे लोग द्रौपदीको वहीं छोड कर नगरकी ओर भागे ॥ २४ ॥

द्रवतस्तांस्तु संप्रेक्ष्य स वज्री दानवानिव ।
शतं पंचाधिकं भीमः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २५ ॥

भागते हुए सूतोंको देखकर भीमने उनमेंसे एकसौ पांच सूतोंको इस प्रकार यमराजके घर भेज दिया, जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंको मारते हैं ॥ २५ ॥

तत आश्वासयत्कृष्णां प्रविमुच्य विशां पते ।
उवाच च महाबाहुः पांचालीं तत्र द्रौपदीम् ।
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां दुर्धर्षः स वृकोदरः ॥ २६ ॥

हे राजन् ! इसके बाद द्रौपदीको खोलकर उसे आश्वासन दिया और अत्यन्त शक्तिशाली बडी भुजाओंवाला वह वृकोदर भीम बहुत दुःखी तथा आंसुओंसे पूर्ण मुखवाली पांचाली द्रौपदीसे बोला ॥ २६ ॥

एवं ते भीरु वध्यन्ते ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्।
प्रैहि त्वं नगरं कृष्णे न भयं विद्यते तव।
अन्येनाहं गमिष्यामि विराटस्य महानसम् ॥ २७ ॥

हे सुन्दरी! पापरहित तुम्हें जो क्लेश देते हैं, वे इसी प्रकार मारे जाते हैं, हे द्रौपदी! अब तुम नगरको जाओ। तुम्हें कुछ भय नहीं है, मैं भी दूसरे मार्गसे विराटके रसोईघरको जाता हूं॥ २७ ॥

पंचाधिकं शतं तच्च निहतं तेन भारत।
महावनमिव छिन्नं शिश्ये विगलितद्रुमम् ॥ २८ ॥

हे भारत! महाबलवान् भीमसेनसे कीचकोंका एकसौ पाँचका दल ऐसे नष्ट हुआ, जैसे कटे पडे पेडोंसे युक्त वन॥ २८ ॥

एवं ते निहता राजञ्शतं पंच च कीचकाः।
स च सेनापतिः पूर्वमित्येतत्सूतषट्शतम् ॥ २९ ॥

एक तो पहले सेनापति कीचकको भीमने मारा था और एकसौ पांचको फिर मारा, इस प्रकार एकसौ छः कीचक मारे गये॥ २९ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं नरा नार्यश्च संगताः।
विस्मयं परमं गत्वा नोचुः किंचन भारत ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२ ॥ ६०७ ॥

हे भारत जनमेजय! इस महान् आश्चर्यको देखकर सब नगरके स्त्रीपुरुष अत्यधिक आश्चर्यचकित होकर कुछ भी नहीं बोले॥ ३० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बाईसवाँ अध्याय समाप्त॥ २२ ॥ ६०७ ॥

: २३ :

वैशम्पायन उवाच

ते दृष्ट्वा निहतान्सूतान्राज्ञे गत्वा न्यवेदयन्।
गंधर्वैर्निहता राजन्सूतपुत्राः परःशताः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय! तब सैकडों सूतपुत्र महाबलवान् कीचकोंको गन्धर्वोंके हाथसे मरा हुआ देख राजासे जाकर बोले॥ १ ॥

यथा वज्रेण वै दीर्णं पर्वतस्य महच्छिरः।
विनिकीर्णं प्रदृश्येत तथा सूता महीतले ॥ २ ॥

हे महाराज! जिस प्रकार बज्रसे इन्द्रने पर्वतके महान् शिखरको काट कर गिरा दिया था, वैसे ही गन्धर्वोंने कीचकोंको मार डाला है और सब कीचक पृथ्वी पर इधर उधर बिखरे हुए दिखाई पड रहे हैं॥ २ ॥

सैरंध्री च विमुक्तासौ पुनरायाति ते गृहम्।
सर्वं संशयितं राजन्नगरं ते भविष्यति ॥ ३ ॥

सैरन्ध्री छूटकर पुनः आपके नगरमें आ रही है। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार तुम्हारा सारा नगर सशयंग्रस्त हो जायेगा ॥ ३ ॥

तथारूपा हि सैरंध्री गंधर्वाश्च महाबलाः।
पुंसामिष्टश्च विषयो मैथुनाय न संशयः ॥ ४ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि पुरुषोंको मैथुन सदा ही प्यारा है और सैरन्ध्री बहुत रूपवती है, एवं गन्धर्व भी बहुत बलवान् है ॥ ४ ॥

यथा सैरंध्रिदोषेण न ते राजन्निदं पुरम्।
विनाशमेति वै क्षिप्रं तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार सैरन्ध्रीके दोषसे, हे राजन् ! आपके इस नगरका नाश शीघ्र न हो, ऐसा उपाय कीजिये ॥ ५ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विराटो वाहिनीपतिः।
अब्रवीत्क्रियतामेषां सूतानां परमक्रिया ॥ ६ ॥
एकस्मिन्नेव ते सर्वे सुसमिद्धे हुताशने।
दह्यन्तां कीचकाः शीघ्रं रत्नैर्गन्धैश्च सर्वशः ॥ ७ ॥

उनके ये वचन सुनकर बहुत बडी सेनाके स्वामी विराट बोले– इन सब कीचकोंकी मरणोत्तर क्रिया करो। इन सब सूतपुत्रोंको एक ही अच्छी तरह प्रज्वलित अग्निमें रत्न और सुगन्धित पदार्थोंके साथ भली प्रकार जला दो ॥ ६–७ ॥

सुदेष्णां चाब्रवीद्राजा महिषीं जातसाध्वसः।
सैरंध्रीमागतां ब्रूया ममैव वचनादिदम् ॥ ८ ॥

फिर राजाने अपनी पटरानी सुदेष्णासे भयभीत होकर कहा कि जब सैरन्ध्री यहां आवे, तब तुम मेरे वचनसे उससे ऐसा कहना ॥ ८ ॥

गच्छ सैरंध्रि भद्रं ते यथाकामं चराबले।
बिभेति राजा सुश्रोणि गंधर्वेभ्यः पराभवात् ॥ ९ ॥

कि हे सैरन्ध्री ! तुम्हारा कल्याण हो, हे सुश्रोणि ! राजा विराट गन्धर्वोंके तिरस्कारसे बहुत डरते हैं, इसलिये हे अबले ! जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां चली जाओ; ॥ ९ ॥

न हि तामुत्सहे वक्तुं स्वयं गंधर्वरक्षिताम्।
स्त्रियस्त्वदोषास्तां वक्तुमतस्त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ १० ॥

गंधर्वोंसे सुरक्षित उस द्रौपदीसे स्वयं जाकर कुछ कहनेका साहस मुझमें नहीं है, पर तुम स्त्री होनेके कारण उससे कुछ कहोगी, तो भी कोई दोष नहीं होगा, इसीलिए मैं तुमसे कह रहा हूँ ॥ १० ॥

अथ मुक्ता भयात्कृष्णा सूतपुत्रान्निरस्य च।
मोक्षिता भीमसेनेन जगाम नगरं प्रति ॥ ११ ॥

द्रौपदी भयसे छूटकर और सूतपुत्रोंको मारकर भीमसेनके द्वारा छुडाई जाकर नगरकी ओर चली ॥ ११ ॥

त्रासितेव मृगी बाला शार्दूलेन मनस्विनी।
गात्राणि वाससी चैव प्रक्षाल्य सलिलेन सा ॥ १२ ॥

उस समय मनस्विनी द्रौपदीकी ऐसी दशा हुई जैसी सिंहसे डरी हुई हरिणीकी। नगरमें आकर द्रौपदीने अपने अंगों और वस्त्रोंको जलसे धोया ॥ १२ ॥

तां दृष्ट्वा पुरुषा राजन्प्राद्रवन्त दिशो दश।
गंधर्वाणां भयत्रस्ताः केचिद्दृष्टीर्न्यमीलयन् ॥ १३ ॥

उसको नगरमें आती हुई देख नगरके लोग गन्धर्वोंके डरसे दसों दिशाओंमें भाग गए, और कोई कोई तो डरसे आंख बन्द करके बैठ गए ॥ १३ ॥

ततो महानसद्वारि भीमसेनमवस्थितम्।
ददर्श राजन्पांचाली यथा मत्तं महाद्विपम् ॥ १४ ॥

तब द्रौपदीने भीमको रसोई घरके द्वार पर मतवाले हाथीके समान बैठे हुए देखा ॥ १४ ॥

तं विस्मयन्ती शनकैः संज्ञाभिरिदमब्रवीत्।
गंधर्वराजाय नमो येनाऽस्मि परिमोचिता ॥ १५ ॥

उसे देखकर आश्चर्य करती हुई वह बहुत ही धीरे इशारोंसे बोली— गन्धर्वराजको मैं प्रणाम करती हूं कि जिसके द्वारा मैं भयसे छुडा दी गई हूँ ॥ १५ ॥

भीमसेन उवाच

ये यस्या विचरन्तीह पुरुषा वशवर्तिनः।
तस्यास्ते वचनं श्रुत्वा अनृणा विचरन्त्युत ॥ १६ ॥

भीमसेन बोले— जो पुरुष इस विराटनगरमें जिसके वशमें होकर रहते थे, वे आज उसके इन वचनोंको सुनकर ऋणहीन होकर सुखसे विहार करें ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सा नर्तनागारे धनंजयमपश्यत।
राज्ञः कन्या विराटस्य नर्तयानं महाभुजम् ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले— तदनन्तर द्रौपदीने विराटके नर्त्तनागारमें राजा विराटकी कन्याओंको नचाते हुए महाबाहु अर्जुनको देखा ॥ १७ ॥

ततस्ता नर्तनागाराद्विनिष्क्रम्य सहार्जुनाः ।
कन्या ददृशुरायान्तीं कृष्णां क्लिष्टामनागसम्　　॥ १८ ॥

तब वे सब कन्यायें नृत्यशालासे अर्जुनके सहित बाहर निकल कर आती हुई दुःखिनी और निरपराध द्रौपदीको देखने लगीं ॥ १८ ॥

कन्या ऊचुः

दिष्ट्या सैरंध्रि मुक्तासि दिष्ट्यासि पुनरागता ।
दिष्ट्या विनिहताः सूता ये त्वां क्लिश्यन्त्यनागसम्　　॥ १९ ॥

कन्यायें बोलीं– हे सैरन्ध्री ! तू आज प्रारब्धहीसे छूटी है और सौभाग्यसे ही वापस आ सकी है, और प्रारब्धहीसे उन कीचकोंका नाश हुआ है जो तुझ निरपराधिनीको कष्ट देते थे ॥ १९ ॥

बृहन्नडोवाच

कथं सैरंध्रि मुक्ताऽसि कथं पापाश्च ते हताः ।
इच्छामि वै तव श्रोतुं सर्वमेव यथातथम्　　॥ २० ॥

बृहन्नडा बोली– हे सैरन्ध्री ! तुम कैसे छूटीं ? और किस प्रकार पापी कीचकोंका नाश हुआ ? मैं सब समाचार यथार्थ रूपसे सुनना चाहती हूं, तुम कहो ॥ २० ॥

सैरंध्र्युवाच

बृहन्नडे किं नु तव सैरंध्र्या कार्यमद्य वै ।
या त्वं वससि कल्याणि सदा कन्यापुरे सुखम्　　॥ २१ ॥

सैरन्ध्री बोली– हे बृहन्नडे ! हे कल्याणि ! तुम कन्याओंके पुरमें सुखसे रहती हो, अब तुम्हें सैरन्ध्रीसे क्या प्रयोजन है ? ॥ २१ ॥

न हि दुःखं समाप्नोषि सैरंध्री यदुपाश्नुते ।
तेन मां दुखितामेवं पृच्छसे प्रहसन्निव　　॥ २२ ॥

सैरन्ध्रीको जो दुःख भोगना पडता है, वह तुम्हें नहीं भोगना पडता, इसीलिये तुम मुझ दुःखिनीसे इस प्रकार हंसकर पूछ रही हो ॥ २२ ॥

बृहन्नडोवाच

बृहन्नडापि कल्याणि दुःखमाप्नोत्यनुत्तमम् ।
तिर्यग्योनिगता बाले न चैनामवबुद्ध्यसे　　॥ २३ ॥

बृहन्नडा बोली– हे कल्याणि ! बृहन्नडा भी घोर आपत्ति भोगती है, हे बाले ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि वह नीचयोनिको प्राप्त हो गई है ॥ २३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः सहैव कन्याभिर्द्रौपदी राजवेश्म तत्।
प्रविवेश सुदेष्णायाः समीपमपलायिनी ॥ २४ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर दुःखसे डरकर न भागनेवाली द्रौपदी सब कन्याओंके सहित राजमहलमें सुदेष्णा रानीके पास गई ॥ २४ ॥

तामब्रवीद्राजपुत्री विराटवचनादिदम्।
सैरन्ध्रि गम्यतां शीघ्रं यत्र कामयसे गतिम् ॥ २५ ॥

तब राजपत्नी सुदेष्णाने राजा विराटकी आज्ञाके अनुसार द्रौपदीसे कहा, हे सैरन्ध्री ! तुम्हारी जहां इच्छा हो वहां शीघ्र चली जाओ ॥ २५ ॥

राजा बिभेति भद्रं ते गंधर्वेभ्यः पराभवात्।
त्वं चापि तरुणी सुभ्रु रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ २६ ॥

हे उत्तम भौहोंवाली ! तुम्हारा भला होगा। राजा विराट गंधर्वसे पराजित होनेसे डरता है और तुम अत्यन्त सुन्दरी, युवती और इस दुनियामें रूपसे असामान्य हो ॥ २६ ॥

सैरंध्र्युवाच

त्रयोदशाहमात्रं मे राजा क्षमतु भामिनि।
कृतकृत्या भविष्यन्ति गंधर्वास्ते न संशयः ॥ २७ ॥

सैरन्ध्री बोली– हे भामिनी ! महाराज केवल तेरह दिन हमारे ऊपर और कृपा करें, इसके पश्चात् मेरे पति गन्धर्व निस्सन्देह कृतकृत्य हो जायेंगे ॥ २७ ॥

ततो मां तेऽपनेष्यन्ति करिष्यन्ति च ते प्रियम्।
ध्रुवं च श्रेयसा राजा योक्ष्यते सह बांधवैः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥
समाप्तं कीचकवधपर्व ॥ ६३५ ॥

तब वे मुझको यहांसे ले जायेंगे और तुम्हारा कल्याण करेंगे। और निस्सन्देह राजाको भी बन्धुओंके साथ कल्याणसे युक्त करेंगे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तेवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥
कीचकवधपर्व समाप्त ॥ ६३५ ॥

: २४ :

वैशम्पायन उवाच

कीचकस्य तु घातेन सानुजस्य विशांपते।
अत्याहितं चिन्तयित्वा व्यस्मयन्त पृथग्जनाः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजा जनमेजय ! जब भाइयोंके सहित कीचक मारा गया, तब सब लोग भयभीत होकर आश्चर्य सहित इस कथाको कहने लगे ॥ १ ॥

तस्मिन्पुरे जनपदे संजल्पोऽभूच्च सर्वशः।
शौर्याद्धि वल्लभो राज्ञो महासत्त्वश्च कीचकः　　॥ २॥

उस नगर और देशमें मनुष्योंका समूह यही बात करता था कि उस कीचकका सामर्थ्य बहुत ज्यादा होनेके कारण अपनी शूरवीरताके कारण वह राजाका अत्याधिक प्रिय हो गया था॥ २॥

आसीत्प्रहर्ता च नृणां दारामर्शी च दुर्मतिः।
स हतः खलु पापात्मा गन्धर्वैर्दुष्टपूरुषः　　॥ ३॥

सब शत्रुओंका नाशक था परन्तु वह दुर्बुद्धि कीचक सदा दूसरोंकी स्त्रियोंको टेढी नजरसे देखता था, इसलिए उस अधमको गन्धर्वोंके हाथोंसे अन्तमें मृत्युके मुंहमें गिरना ही पडा॥३॥

इत्यजल्पन्महाराज परानीकविशातनम्।
देशे देशे मनुष्याश्च कीचकं दुष्प्रधर्षणम्　　॥ ४॥

इस प्रकार, हे महाराज! शत्रुसेनाका नाश करनेवाले अजेय कीचकके सम्बन्धमें हर देशमें लोग कहने लगे॥ ४॥

अथ वै धार्तराष्ट्रेण प्रयुक्ता ये बहिश्चराः।
मृगयित्वा बहून्ग्रामान्राष्ट्राणि नगराणि च　　॥ ५॥

दुर्योधनने पाण्डवोंको ढूंढनेके लिये जो दूत भेजे थे, वे सब अनेक ग्रामों, नगरों और देशोंमें अच्छी प्रकार पाण्डवोंको ढूंढकर॥ ५॥

संविधाय यथादिष्टं यथादेशप्रदर्शनम्।
कृतचिंता न्यवर्तंत ते च नागपुरं प्रति　　॥ ६॥

और जो जो मिला अथवा उन्हें जो कुछ दिखाई दिया उन सबको अच्छी तरह स्मरणमें रखकर अपना कार्य समाप्त करके वे दूत राजधानी वापस आ गये॥ ६॥

तत्र दृष्ट्वा तु राजानं कौरव्यं धृतराष्ट्रजम्।
द्रोणकर्णकृपैः सार्धं भीष्मेण च महात्मना　　॥ ७॥
संगतं भ्रातृभिश्चापि त्रिगर्तैश्च महारथैः।
दुर्योधनं सभामध्ये आसीनमिदमब्रुवन्　　॥ ८॥

उन्होंने राजसभामें जाकर महारथ त्रिगर्त्त, महातमा भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अपने भाइयोंके साथ धृतराष्ट्रपुत्र राजा दुर्योधनको बैठे देखा और उससे यह बोले॥ ७-८॥

×

कृतोऽस्माभिः परो यत्नस्तेषामन्वेषणे सदा।
पांडवानां मनुष्येंद्र तस्मिन्महति कानने ॥ ९ ॥
निर्जने मृगसंकीर्णे नानाद्रुमलतावृते।
लताप्रतानबहुले नानागुल्मसमावृते ॥ १० ॥

हे राजन्! मनुष्यरहित, वन्य पशुओंसे भरे, अनेक वृक्ष–लतासे व्याप्त, बेलोंसे संकुलित, नाना तरहके गुल्मोंसे घिरे हुए, घोर वनमें पाण्डवोंको ढूंढनेमें हमने बहुत प्रयत्न किया ॥ ९–१० ॥

न च विद्मो गता येन पार्थाः स्युर्दृढविक्रमाः।
मार्गमाणाः पदन्यासं तेषु तेषु तथा तथा ॥ ११ ॥

पर हम लोग नहीं जानते कि महापराक्रमी पाण्डव लोग कहां चले गये। हम लोगोंको वनमें उनके चरणोंके चिह्न भी नहीं मिले ॥ ११ ॥

गिरिकूटेषु तुंगेषु नानाजनपदेषु च।
जनाकीर्णेषु देशेषु खर्वटेषु पुरेषु च ॥ १२ ॥
नरेंद्र बहुशोऽन्विष्टा नैव विद्मश्च पांडवान्।
अत्यंतभावं नष्टास्ते भद्रं तुभ्यं नरर्षभ ॥ १३ ॥

हमने पर्वतों, पर्वतोंके ऊंचे शिखरों, नगरों, मनुष्योंसे भरे देशों, पर्वतकी उपत्यकाओं और पुरोंमें पाण्डवोंको बहुत ढूंढा, परन्तु उन लोगोंका कहीं भी पता नहीं लगा। हे पृथ्वीनाथ! हे पुरुषसिंह! हम लोगोंको निश्चय होता है कि पाण्डव लोग मर गये, अब तुम्हारा कल्याण हो ॥ १२–१३ ॥

वर्त्मान्यन्विष्यमाणास्तु रथानां रथसत्तम।
कंचित्कालं मनुष्येंद्र सूतानामनुगा वयम् ॥ १४ ॥

हे उत्तम रथोंके स्वामी! हम लोगोंने पाण्डवोंको रथोंके मार्गसे भी ढूंढा हे राजन्! हम लोग थोडे दिन तक पाण्डवोंके सारथियोंके पास भी रहे ॥ १४ ॥

मृगयित्वा यथान्यायं विदितार्थाः स्म तत्त्वतः।
प्राप्ता द्वारवतीं सूता ऋते पार्थैः परंतप ॥ १५ ॥

वहाँ भी हमने उन्हें तलाश किया, और हमें यथार्थवृत्त यह ज्ञात हुआ कि वे सब सारथि पाण्डवोंके विना ही द्वारिकामें आ बसे हैं ॥ १५ ॥

न तत्र पांडवा राजन्नापि कृष्णा पतिव्रता।
सर्वथा विप्रनष्टास्ते नमस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥

हे राजेन्द्र! द्वारिकामें न पतिव्रता द्रौपदी है और न महाव्रतधारी पाण्डव हैं, हे भरतकुलसिंह! हम आपको प्रणाम करते हैं। पाण्डव लोग निश्चय ही मर गये हैं ॥ १६ ॥

न हि विद्मो गतिं तेषां वासं वापि महात्मनाम्।
पांडवानां प्रवृत्तिं वा विद्मः कर्मापि वा कृतम्।
स नः शाधि मनुष्येंद्र अत ऊर्ध्वं विशां पते ॥ १७ ॥

हे राजन्! उन महात्माओंकी गति क्या है? उनका वासस्थान कहां है? पाण्डवोंकी प्रवृत्ति क्या है, वे क्या करते हैं, यह हम कुछ भी नहीं जानते, अतः हे पृथ्वीनाथ! अब आप हम लोगोंको कोई दूसरी आज्ञा दीजिये ॥ १७ ॥

अन्वेषणे पांडवानां भूयः किं करवामहे।
इमां च नः प्रियामीक्ष वाचं भद्रवतीं शुभाम् ॥ १८ ॥

अब पाण्डवोंको ढूंढनेके लिए हम और क्या करें। पर हमारी इस कल्याणकारक और प्रिय बातको आप सुनें ॥ १८ ॥

येन त्रिगर्ता निकृता बलेन महता नृप।
सूतेन राज्ञो मत्स्यस्य कीचकेन महात्मना ॥ १९ ॥

हे राजन्! मत्स्य देशके राजाके जिस महात्मा कीचक नामक सूतने अपने विशाल सामर्थ्यसे त्रिगर्त्तोंका नाश किया था ॥ १९ ॥

स हतः पतितः शेते गंधर्वैर्निशि भारत।
अदृश्यमानैर्दुष्टात्मा सह भ्रातृभिरच्युत ॥ २० ॥

हे वीर भारत! वह दुष्टात्मा रातमें न दीखनेवाले गन्धर्वोंसे अपने बन्धुबांधवों सहित मारा जाकर पडा हुआ सो रहा है ॥ २० ॥

प्रियमेतदुपश्रुत्य शत्रूणां तु पराभवम्।
कृतकृत्यश्च कौरव्य विधत्स्व यदनंतरम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ६५६ ॥

हे कौरव! शत्रुओंके पराजयकी इस प्रिय बातको सुनकर कृतार्थ हों और इसके बाद जो उचित कार्य हो कीजिये ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चोवीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥ ६५६ ॥

: २५ :

वैशम्पायन उवाच

ततो दुर्योधनो राजा श्रुत्वा तेषां वचस्तदा।
चिरमंतर्मना भूत्वा प्रत्युवाच सभासदः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय! तब राजा दुर्योधनने उनके वचन सुनकर बहुत समयतक विचार किया, फिर सभासदोंसे बोला ॥ १ ॥

सुदुःखा खलु कार्याणां गतिर्विज्ञातुमंततः।
तस्मात्सर्वे उदीक्षध्वं क नु स्युः पांडवा गताः ॥ २ ॥

कार्योंकी गतिको पूरे तौरसे जानना बहुत ही कठिन है, इसलिये तुम सब विचार कर देखो, कि वे पाण्डव कहां चले गये ? ॥ २ ॥

अल्पावशिष्टं कालस्य गतभूयिष्ठमंततः।
तेषामज्ञातचर्यायामस्मिन्वर्षे त्रयोदशे ॥ ३ ॥

अज्ञातवासमें इस तेरहवें वर्षका बहुतसा भाग तो समाप्त हुआ और बहुत थोडा समय शेष है ॥ ३ ॥

अस्य वर्षस्य शेषं चेद्व्यतीयुरिह पांडवाः।
निवृत्तसमयास्ते हि सत्यव्रतपरायणाः ॥ ४ ॥

यदि इस वर्षका बाकी बचा हुआ समय भी व्यतीत हो जाएगा, तो महापराक्रमी सत्यव्रत-धारी पाण्डव इस तेरहवें वर्षके पूरा होते ही प्रतिज्ञा पूर्ण कर प्रत्यक्ष हो जायंगे ॥ ४ ॥

क्षरन्त इव नागेंद्राः सर्वे आशीविषोपमाः।
दुःखा भवेयुः संरब्धाः कौरवान्प्रति ते ध्रुवम् ॥ ५ ॥

वे लोग मतवाले हाथीके समान बलवान् और विषैले सांपके तुल्य क्रोधी हैं, अब उन्होंने तेरह वर्षतक महादुःख भोगा है, इसलिये अवश्य ही कौरवोंको दुःखदायी होंगे ॥ ५ ॥

अर्वाक्कालस्य विज्ञाताः कृच्छ्ररूपधराः पुनः।
प्रविशेयुर्जितक्रोधास्तावदेव पुनर्वनम् ॥ ६ ॥

वे सब समयके जाननेवाले घोररूपधारी पाण्डव यदि इस समय प्रत्यक्ष हो जायें तो फिर भी क्रोधको जीतकर वनको चले जायेंगे ॥ ६ ॥

तस्मात्क्षिप्रं बुभुत्सध्वं यथा नोऽत्यंतमव्ययम्।
राज्यं निर्द्वंद्वमव्यग्रं निःसपत्नं चिरं भवेत् ॥ ७ ॥

इसलिये तुम शीघ्र ही उन लोगोंको ढूंढ लो। ताकि हमारा राज्य अविनाशी निर्द्वन्द्व, भय-रहित, शत्रुरहित और चिरकालावस्थायी रह सके ॥ ७ ॥

अथाब्रवीत्ततः कर्णः क्षिप्रं गच्छन्तु भारत।
अन्ये धूर्ततरा दक्षा निभृताः साधुकारिणः ॥ ८ ॥

उसी समय कर्ण बोले– हे भारत ! इसी समय दूसरे धूर्त्त, बुद्धिमान्, चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले दूत पाण्डवोंको ढूंढने जावें ॥ ८ ॥

चरन्तु देशान्संवीताः स्फीताञ्जनपदाकुलान् ।
तत्र गोष्ठीष्वथान्यासु सिद्धप्रव्रजितेषु च ॥ ९ ॥
परिचारेषु तीर्थेषु विविधेष्वाकरेषु च ।
विज्ञातव्या मनुष्यैस्तैस्तर्कया सुविनीतया ॥ १० ॥

वे सब उत्तम देश, मनुष्योंसे भरे नगर, रमणीय सभा, सिद्धोंके स्थान, राजधानी, तीर्थ और अनेक प्रकारके स्थानमें पाण्डवोंको ढूंढें, और तर्कशालिनी बुद्धिसे विचारें कि पाण्डव कहां हैं ? ॥ ९-१० ॥

विविधैस्तत्परैः सम्यक्तज्ज्ञैर्निपुणसंवृतैः ।
अन्वेष्टव्याश्च निपुणं पांडवाश्छन्नवासिनः ॥ ११ ॥

और गुप्त रहस्योंका पता लगानेवाले, तज्ज्ञ और धूर्त इस प्रकारके गुप्तचर स्वयं उपायसे गुप्त रहकर छिपे हुए पाण्डवोंका पता लगायें ॥ ११ ॥

नदीकुंजेषु तीर्थेषु ग्रामेषु नगरेषु च ।
आश्रमेषु च रम्येषु पर्वतेषु गुहासु च ॥ १२ ॥

नदियों, कुञ्जों, तीर्थों, गांवों, नगरों, रमणीय आश्रमों, पर्वतों और गुफाओंमें भी पाण्डवोंको ढूंढना चाहिये ॥ १२ ॥

अथाग्रजानंतरजः पापभावानुरागिणम् ।
ज्येष्ठं दुःशासनस्तत्र भ्राता भ्रातरमब्रवीत् ॥ १३ ॥

तदनन्तर महापापी दुर्योधनका छोटा भाई दुःशासन अपने बडे भाई राजा दुर्योधनसे बोला ॥ १३ ॥

एतच्च कर्णो यत्प्राह सर्वमीक्षामहे तथा ।
यथोद्दिष्टं चराः सर्वे मृगयन्तु ततस्ततः ।
एते चान्ये च भूयांसो देशाद्देशं यथाविधि ॥ १४ ॥

कर्णने जिस प्रकार कहा है वही हम भी ठीक समझते हैं, वैसे ही ये दूत पाण्डवोंको ढूंढें। ये सब लोग क्रमके अनुसार एक देशसे दूसरे देशको जावें और पाण्डवोंको ढूंढें ॥ १४ ॥

न तु तेषां गतिर्वासः प्रवृत्तिश्चोपलभ्यते ।
अत्याहितं वा गूढास्ते पारं वोर्मिमतो गताः ॥ १५ ॥

यदि उनकी कुछ भी गति, निवास या प्रवृत्तिका पता न लगे तो जान लीजिये कि वीर पाण्डव या तो मर गए हैं या बहुत छिपकर रह रहे हैं अथवा समुद्रके पार चल गये हैं ॥ १५ ॥

व्यालैर्वापि महारण्ये भक्षिताः शूरमानिनः ।
अथ वा विषमं प्राप्य विनष्टाः शाश्वतीः समाः ॥ १६ ॥

अथवा स्वयंको अत्याधिक शूर माननेवाले उन पाण्डवोंको उस महावनमें सांपोंने खा लिया होगा अथवा बहुत दिनतक दुःख भोगते भोगते कहीं मर गये होंगे ॥ १६ ॥

तस्मान्मानसमव्यग्रं कृत्वा त्वं कुरुनंदन।
कुरु कार्यं यथोत्साहं मन्यसे यन्नराधिप ॥ १७॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ६७३ ॥

हे कुरुनन्दन! हे पृथ्वीनाथ! इसलिये आप अपने मनको स्थिर करके उत्साह सहित जो आप चाहें उन कार्योंको कीजिये ॥ १७॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥ ६७३ ॥

: २६ :

वैशम्पायन उवाच

अथाब्रवीन्महावीर्यो द्रोणस्तत्त्वार्थदर्शिवान्।
न तादृशा विनश्यन्ति नापि यान्ति पराभवम् ॥ १॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय! इसके पश्चात् महाबलवान् सब शास्त्रोंको जाननेवाले द्रोणाचार्य बोले– पाण्डवोंके समान पुरुष नष्ट नहीं होते और न कोई उनका पराभव ही कर सकता है ॥ १॥

शूराश्च कृतविद्याश्च बुद्धिमन्तो जितेंद्रियाः।
धर्मज्ञाश्च कृतज्ञाश्च धर्मराजमनुव्रताः ॥ २॥

वे चारों शूर, विद्वान्, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और धर्मराज युधिष्ठिरके भक्त हैं ॥ २॥

नीतिधर्मार्थतत्त्वज्ञं पितृवच्च समाहितम्।
धर्मे स्थितं सत्यधृतिं ज्येष्ठं ज्येष्ठापचायिनम् ॥ ३॥

चारों पाण्डव नीति और धर्मके तत्वको जाननेवाले धर्मपरायण, धैर्यशाली, पितृतुल्य ज्येष्ठ भाई बुद्धिमान्, युधिष्ठिरका अनुसरण करनेवाले हैं ॥ ३॥

अनुव्रता महात्मानं भ्रातरं भ्रातरो नृप।
अजातशत्रुं ह्रीमंतं तं च भ्रातॄननुव्रतम् ॥ ४॥

हे महाराज! जिसका कोई भी शत्रु नहीं है, ऐसे वैभवशाली, लज्जाशील अपने भाईयोंके सलाहके अनुसार चलनेवाले महात्मा भाई युधिष्ठिरकी आज्ञामें वे सब पाण्डव चलते हैं ॥४॥

तेषां तथा विधेयानां निभृतानां महात्मनाम्।
किमर्थं नीतिमान्पार्थः श्रेयो नैषां करिष्यति ॥ ५॥

अपने इस प्रकारके भक्त महात्मा, बलवान्, शान्त तथा वशंवद भाइयोंके लिये नीतिनिष्णात महाराज युधिष्ठिर कल्याणकी बात क्यों नहीं सोचेंगे? ॥ ५॥

तस्माद्यत्नात्प्रतीक्षन्ते कालस्योदयमागतम्।
न हि ते नाशमृच्छेयुरिति पश्याम्यहं धिया ॥ ६ ॥

इसलिये मुझे अपनी बुद्धिसे निश्चय होता है कि उनका नाश नहीं हुआ है। वे लोग कहीं छिपकर अपना समय बिता रहे हैं और अभ्युदयके कालकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ६ ॥

सांप्रतं चैव यत्कार्यं तच्च क्षिप्रमकालिकम्।
क्रियतां साधु संचिन्त्य वासश्चैषां प्रचिन्त्यताम् ॥ ७ ॥

इसलिये इस समय जो कुछ करनेके योग्य कार्य हो, तुमको अत्यन्त विचारकर करना चाहिये। और उनके निवास स्थानका पता लगाना चाहिये, क्योंकि अब विलम्ब करनेका समय नहीं है ॥ ७ ॥

यथावत्पाण्डुपुत्राणां सर्वार्थेषु धृतात्मनाम्।
दुर्ज्ञेयाः खलु शूरास्ते अपापास्तपसा वृताः ॥ ८ ॥

पाण्डव शूरवीर, पापरहित और तपस्वी हैं; इसलिये उनको जानना बहुत कठिन है। तुम सब कामोंमें धीरज धारण करनेवाले महात्मा पाण्डवोंको शीघ्र ढूंढो ॥ ८ ॥

शुद्धात्मा गुणवान्पार्थः सत्यवान्नीतिमाञ्शुचिः।
तेजोराशिरसंख्येयो गृह्णीयादपि चक्षुषी ॥ ९ ॥

महाराज युधिष्ठिर पवित्रात्मा, गुणवान्, पवित्र, सत्यवादी, नीतिके जाननेवाले और अत्यन्त तेजके समूह हैं, इसलिये देखनेमात्रसे वे लोगोंको मोहित कर सकते हैं ॥ ९ ॥

विज्ञाय क्रियतां तस्माद्भूयश्च मृगयामहे।
ब्राह्मणैश्चारकैः सिद्धैर्ये चान्ये तद्विदो जनाः ॥ १० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ६८३ ॥

इसलिये तुम उनको यत्नसे ढूंढो, फिर हम ब्राह्मण, गुप्तचर, सिद्ध और उनको जाननेवाले मनुष्योंसे ढुंढवायेंगे ॥ १० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥ ६८३ ॥

: २७ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शांतनवो भीष्मो भरतानां पितामहः ।
श्रुतवान्देशकालज्ञस्तत्त्वज्ञः सर्वधर्मवित् ॥ १ ॥
आचार्यवाक्योपरमे तद्वाक्यमभिसंदधत् ।
हितार्थं स उवाचेमां भारतीं भारतान्प्रति ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! द्रोणाचार्यके वचनके पश्चात् उनके वचनकी प्रशंसा करते हुए सब धर्मोंके तत्त्व तथा देश और कालको जाननेवाले, बुद्धिमान्, सब कौरवोंके पितामह शन्तनुपुत्र भीष्म सबके कल्याणके लिये भरतवंशोत्पन्न कौरवोंसे यह बात बोले ॥ १–२ ॥

युधिष्ठिरे समासक्तां धर्मज्ञे धर्मसंश्रिताम् ।
असत्सु दुर्लभां नित्यं सतां चाभिमतां सदा ।
भीष्मः समवदत्तत्र गिरं साधुभिरर्चिताम् ॥ ३ ॥

भीष्मने वहां धर्म जाननेवाले युधिष्ठिरके बारेमें धर्मयुक्त, दुर्जनोंके लिए दुर्लभ, सज्जनोंको प्रिय, साधुओंको मान्य वचन कहे ॥ ३ ॥

यथैष ब्राह्मणः प्राह द्रोणः सर्वार्थतत्त्ववित् ।
सर्वलक्षणसंपन्नाः नाशं नार्हन्ति पांडवाः ॥ ४ ॥
श्रुतवृत्तोपसंपन्नाः साधुव्रतसमन्विताः ।
वृद्धानुशासने मग्नाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ५ ॥

(भीष्म बोले) सब अर्थके तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मण द्रोणाचार्यने जो कुछ कहा है वह सब सत्य है । पाण्डव सब लक्षणोंसे पूर्ण, उत्तम कार्य करनेवाले, वेदपाठी, व्रतधारी, अनेक श्रुतियोंके जाननेवाले, सत्यवादी, बूढोंकी आज्ञा माननेवाले, समयवेत्ता और पवित्र हैं । वे लोग किसी भी प्रकार नष्ट नहीं हो सकते ॥ ४–५ ॥

समयं समयज्ञास्ते पालयन्तः शुचिव्रताः ।
नावसीदितुमर्हंति उद्वहंतः सतां धुरम् ॥ ६ ॥

वे समयको जाननेवाले शुद्ध व्रतवाले तथा अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेवाले हैं । वे सज्जनोंके पालनकी धुरा वहन करनेके कारण कभी दुःखी नहीं हो सकते ॥ ६ ॥

धर्मतश्चैव गुप्तास्ते स्ववीर्येण च पांडवाः ।
न नाशमधिगच्छेयुरिति मे धीयते मतिः　　॥ ७ ॥

वे पाण्डव अपने बल और धर्मके कारण ही रक्षित हैं, इसलिए मेरी बुद्धि तो यही निश्चय करती है कि वे पाण्डव नाशको प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

तत्र बुद्धिं प्रणेष्यामि पांडवान्प्राति भारत ।
न तु नीतिः सुनीतस्य शक्यतेऽन्वेषितुं परः　　॥ ८ ॥

हे भारत ! मैं उनको ढूंढनेकी एक नीति बतलाता हूं । उत्तम नीतिवाले पुरुषकी नीतिके अन्तका पता अन्य अनीतिमान् पुरुष नहीं लगा सकते ॥ ८ ॥

यत्तु शक्यमिहास्माभिस्तान्वै संचिंत्य पांडवान्
बुद्ध्या प्रवक्तुं न द्रोहात्प्रवक्ष्यामि निबोध तत्　　॥ ९ ॥

इसलिये पाण्डवोंका विचार करके हम लोगोंको जो करना चाहिये, वह बुद्धिसे विचार करके तुमसे कहता हूं । यह सम्मति मैं तुम्हें द्रोहसे नहीं देता हूं, उसे तुम सुनो ॥ ९ ॥

सा त्वियं साधु वक्तव्या न त्वनीतिः कथंचन ।
वृद्धानुशासने तात तिष्ठतः सत्यशीलिनः　　॥ १० ॥

हे तात ! वृद्धोंके अनुशासनमें रहनेवाले सत्यशीलसे हमेशा उत्तम नीतिका ही कथन करना चाहिये । अनीतिकी बात तो कभी भी और किसी भी प्रकार न कहे ॥ १० ॥

अवश्यं त्विह धीरेण सतां मध्ये विवक्षता
यथामति विवक्तव्यं सर्वशो धर्मलिप्सया　　॥ ११ ॥

सज्जनोंके बीचमें बोलनेकी इच्छा करनेवाले धीर पुरुषको धर्म प्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए सच सच ही बोलना चाहिये ॥ ११ ॥

तत्र नाहं तथा मन्ये यथायमितरो जनः ।
पुरे जनपदे वापि यत्र राजा युधिष्ठिरः　　॥ १२ ॥
नासूयको न चापीर्षुर्नातिवादी न मत्सरी ।
भविष्यति जनस्तत्र स्वं स्वं धर्ममनुव्रतः　　॥ १३ ॥

इस सम्बन्धमें इतर लोगोंका जैसा विचार है, वैसा मैं नहीं मानता । जिस नगर या शहरमें भी राजा युधिष्ठिर होंगे वहां न कोई ईर्ष्या करनेवाला होगा, न कोई दुष्ट होगा, न अभिमानी होगा और न परद्रोही ही होगा । वहां सभी मनुष्य अपने अपने धर्मके अनुसार कर्म करनेवाले होंगे ॥ १२-१३ ॥

+

ब्रह्मघोषाश्च भूयांसः पूर्णाहुत्यस्तथैव च ।
क्रतवश्च भविष्यन्ति भूयांसो भूरिदक्षिणाः ॥ १४ ॥

जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशमें चारों वेदोंकी ध्वनियां तथा पूर्णाहुति और महादक्षिणा-वाले अनेक यज्ञ होते होंगे ॥ १४ ॥

सदा च तत्र पर्जन्यः सम्यग्वर्षी न संशयः ।
संपन्नसस्या च मही निरीतीका भविष्यति ॥ १५ ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वहां मेघ सदा ही उचित समयपर वर्षा करता होगा। पृथिवी अन्नसे भरी होगी, और देश दुःखसे रहित होगा ॥ १५ ॥

रसवन्ति च धान्यानि गुणवन्ति फलानि च ।
गन्धवन्ति च माल्यानि शुभशब्दा च भारती ॥ १६ ॥

उस देशके अन्न गुणोंसे, फल रसोंसे, फूल सुगंधियोंसे, वाणी कल्याणकारी शब्दोंसे युक्त होगी ॥ १६ ॥

वायुश्च सुखसंस्पर्शो निष्प्रतीपं च दर्शनम् ।
भयं नाभ्याविशेत्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिर ॥ १७ ॥

वायु सुखस्पर्श तथा शीतलतासे युक्त और प्रजामें शास्त्रोंका दर्शन अर्थात् अध्ययन पाखण्ड-रहित होगा। जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, वहां कोई भी भय प्रवेश नहीं करेगा ॥ १७ ॥

गावश्च बहुलास्तत्र न कृशा न च दुर्दुहाः ।
पयांसि दधिसर्पींषि रसवन्ति हितानि च ॥ १८ ॥

उस देशमें असंख्य गायें होंगी, जो न दुबली होंगी और न कठिनतासे दुही जानेवाली होंगी। दूध, दही और घी रसोंसे भरा और पुष्टिकारक होगा ॥ १८ ॥

गुणवन्ति च पानानि भोज्यानि रसवन्ति च।
तत्र देशे भविष्यंति यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ १९ ॥

जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशमें खाने और पीनेकी वस्तुएं गुणयुक्त और रससे भरी हुई होंगी ॥ १९ ॥

रसाः स्पर्शाश्च गंधाश्च शब्दाश्चापि गुणान्विताः ।
दृश्यानि च प्रसन्नानि यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २० ॥

जहां राजा युधिष्ठिर होंगे, वहां रस, स्पर्श, गन्ध और शब्द गुणोंसे भरे होंगे और सभी दृश्य भी प्रसन्नतादायक होंगे ॥ २४ ॥

स्वैः स्वैर्गुणैः सुसंयुक्तास्तस्मिन्वर्षे त्रयोदशे ।
देशे तास्मिन्भविष्यन्ति तात पांडवसंयुते ॥ २१ ॥

हे तात ! इस तेरहवें वर्षमें पाण्डवोंके सहित जहा राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशकी सब प्रजायें अपने अपने गुणोंसे युक्त होंगी ॥ २१ ॥

संप्रीतिमाञ्जनस्तत्र संतुष्टः शुचिरव्ययः ।
देवतातिथिपूजासु सर्वभूतानुरागवान् ॥ २२ ॥

वहांके लोग प्रसन्न, सन्तुष्ट, शुद्ध, पवित्र, धनवान्, देवता और आतिथियोंकी पूजामें रत और सभी उत्कृष्ट भावोंसे भरे हुए होंगे ॥ २२ ॥

इष्टदानो महोत्साहः शश्वद्धर्मपरायणः ।
अशुभद्विट् शुभप्रेप्सुर्नित्ययज्ञः शुभव्रतः ।
भविष्यति जनस्तत्र यत्र राजा युधिष्ठिरः ॥ २३ ॥

जिस देशमें राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशके लोग इच्छाके अनुसार दान देनेवाले, महान् उत्साहवाले, सदा धर्मका आचरण करनेवाले, अशुभ कर्मोंसे द्वेष करनेवाले, शुभकामोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले, प्रतिदिन यज्ञ करनेवाले, और उत्तम व्रतोंका आचरण करनेवाले होंगे ॥ २३ ॥

त्यक्तवाक्यानृतस्तात शुभकल्याणमंगलः ।
शुभार्थेप्सुः शुभमतिर्यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
भविष्यति जनस्तत्र नित्यं चेष्टप्रियव्रतः ॥ २४ ॥

हे तात दुर्योधन ! जिस देशमें राजा युधिष्ठिर होंगे, उस देशके लोग अनृत वाक्योंको छोडकर सदा सत्य बोलनेवाले, शुभ, कल्याणकारी और मंगलकारी कार्य करनेवाले, शुभ अर्थोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम बुद्धिवाले और प्रिय व्रतोंके आचरणमें तत्पर होंगे ॥ २४ ॥

धर्मात्मा स तदादृश्यः सोऽपि तात द्विजातिभिः ।
किं पुनः प्राकृतैः पार्थः शक्यो विज्ञातुमन्ततः ॥२५ ॥

हे तात ! कुन्तीनन्दन धर्मप्राण युधिष्ठिरको जाननेमें धर्मात्मा ब्राह्मण भी समर्थ नहीं हैं, फिर सामान्य पुरुषोंके द्वारा वे कैसे जाने जा सकेंगे ॥ २५ ॥

यस्मिन्सत्यं धृतिर्दानं परा शान्तिर्ध्रुवा क्षमा ।
ह्रीः श्रीः कीर्तिः परं तेज आनृशंस्यमथार्जवम् ॥ २६ ॥

युधिष्ठिरमें सत्य, धारणा, दान, दम, उत्कृष्ट शान्ति, अटलक्षमा, लज्जा, तेज, कीर्त्ति, उत्कृष्ट तेज, शील और साधुता ये गुण निवास करते हैं ॥ २६ ॥

तस्मात्तत्र निवासं तु छन्नं सत्रेण धीमतः
गतिं वा परमां तस्य नोत्सहे वक्तुमन्यथा ॥ २७ ॥

ऐसी ही जगह महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर छिपकर रह रहे होंगे। इस प्रकार जानकर उन्हें खोजनेका प्रयत्न करो, इसके अलावा और कुछ मैं बोलना नहीं चाहता ॥ २७ ॥

एवमेतत्तु संचिंत्य यत्कृतं मन्यसे हितम् ।
तत्क्षिप्रं कुरु कौरव्य यद्येवं श्रद्दधासि मे ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ७११ ॥

यदि तुमको मेरे वचनपर बिश्वास हो तो विचार करके, जिसे करनेसे तुम्हारा हित होगा, ऐसा मानते हो, उस कार्यको शीघ्रतासे करो ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥ ७११ ॥

: २८ :

वैशम्पायन उवाच

ततः शारद्वतो वाक्यमित्युवाच कृपस्तदा ।
युक्तं प्राप्तं च वृद्धेन पांडवान्प्रति भाषितम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय! इसके पश्चात् शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्य ये वचन बोले– वृद्ध भीष्मने पाण्डवोंके विषयमें जो कुछ कहा है वह सब सत्य है ॥ १ ॥

धर्मार्थसहितं श्लक्ष्णं तत्त्वतश्च सहेतुमत् ।
तत्रानुरूपं भीष्मेण ममाप्यत्र गिरं शृणु ॥ २ ॥

भीष्मकी वाणी सहेतुक, धर्मसे भरी, अनुकूल और अत्यन्त कोमल थी। मैं भी इस विषयमें कुछ कहना चाहता हूं; सुनिये ॥ २ ॥

तेषां चैव गतिस्तीर्थैर्वासश्चैषां प्रचिंत्यताम् ।
नीतिर्विधीयतां चापि सांप्रतं या हिता भवेत् ॥ ३ ॥

पाण्डवोंके रहनेका स्थान एवं समाचार दूतोंके द्वारा जानना चाहिये और जो कल्याणदायक नीति हो वह भी इस समय बरतनी चाहिये ॥ ३ ॥

नावज्ञेयो रिपुस्तात प्राकृतोऽपि बुभूषता ।
किं पुनः पांडवास्तात सर्वास्त्रकुशला रणे ॥ ४ ॥

हे तात! अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको चाहिए कि वह साधारण वैरीकी भी उपेक्षा न करे, फिर युद्धमें तथा सब शस्त्रोंमें प्रवीण पाण्डवोंकी तो कथा ही क्या है? ॥ ४ ॥

तस्मात्सत्रं प्रविष्टेषु पांडवेषु महात्मसु ।
गूढभावेषु छन्नेषु काले चोदयमागते ॥ ५ ॥

इसलिए महात्मा पाण्डव कपटका आश्रय लेकर अपने मनोरथोंको छिपाकर छिपे हुए हैं और उनके अज्ञातवासका समय समाप्त होनेवाला है ॥ ५ ॥

स्वराष्ट्रपरराष्ट्रेषु ज्ञातव्यं बलमात्मनः ।
उदये पांडवानां च प्राप्ते काले न संशयः ॥ ६ ॥

इसमें सन्देह नहीं है कि अब पाण्डवोंके उदय होनेका समय आ गया है, इसलिये तुम अपने और अपने शत्रुओंके राज्यमें सेनाकी शक्तिका ज्ञान कर लो ॥ ६ ॥

निवृत्तसमयाः पार्था महात्मानो महाबलाः ।
महोत्साहा भविष्यन्ति पांडवा ह्यतितेजसः ॥ ७ ॥

क्योंकि इस वर्षके बीतते ही अपार तेजस्वी महात्मा और महाबलवान् पाण्डवोंका उत्साह बहुत बढ जायेगा ॥ ७ ॥

तस्माद्बलं च कोशं च नीतिश्चापि विधीयताम् ।
यथा कालोदये प्राप्ते सम्यक्तैः संदधामहे ॥ ८ ॥

इसलिये तुम सेना, कोष और राजनीतिका विचार करो, जिससे कि फिर समय आनेपर हम लोग उनके साथ उचित कार्य कर सकें ॥ ८ ॥

तात मन्यामि तत्सर्वं बुध्यस्व बलमात्मनः ।
नियतं सर्वमित्रेषु बलवत्स्वबलेषु च ॥ ९ ॥

हे तात ! तुम अपनी बुद्धिसे भी अपने बलका विचार करो, तथा निर्बल और बलवान् मित्रोंका भी विचार कर लो ॥ ९ ॥

उच्चावचं बलं ज्ञात्वा मध्यस्थं चापि भारत ।
प्रहृष्टमप्रहृष्टं च संदधाम तथा परैः ॥ १० ॥

इसके बाद हमारे पास उत्तम सेना कितनी है, मध्यम सेना कितनी है और निकृष्ट सेना कितनी है, उन सेनाओंमें कितने सन्तुष्ट हैं और कितने असन्तुष्ट हैं, इसका ठीक ठीक अन्दाज लेकर फिर हम शत्रुओंसे बातचीत करें ॥ १० ॥

साम्ना भेदेन दानेन दंडेन बलिकर्मणा।
न्यायेनानम्य च परान्बलाच्चानम्य दुर्बलान् ॥ ११ ॥
सांत्वयित्वा च मित्राणि बलं चाभाष्यतां सुखम् ।
सकोशबलसंवृद्धः सम्यक्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२ ॥

चाहे शान्तिसे हो, चाहे भेदसे हो, चाहे दानसे हो, चाहे दण्डसे हो, चाहे कुछ देनेसे हो, तुम सब राजाओंसे मेल कर लो। बलवानोंको न्यायसे, दुर्बलोंको बलसे और मित्रोंको सांत्वनाके मीठे और सुखकारक भाषणसे अपने वशमें कर लो, इसके पश्चात् सेना और कोषको बढावो, इस प्रकार तुम्हारी सफलता होगी ॥ ११-१२ ॥

योत्स्यसे चापि बलिभिररिभिः प्रत्युपस्थितैः ।
अन्यैस्त्वं पांडवैर्वापि हीनस्वबलवाहनैः ॥ १३ ॥

इतनी तैय्यारी करनेके बाद तुम, यदि कोई दूसरा बलवान् शत्रु भी तुमसे लडनेके लिए आएगा, तो उससे भी लड सकोगे, फिर जिनके पास स्वयंकी सेना नहीं है, रथ आदि वाहन भी नहीं हैं, उनसे तो तुम लड ही लोगे ॥ १३ ॥

एवं सर्वं विनिश्चित्य व्यवसायं स्वधर्मतः।
यथाकालं मनुष्येन्द्र चिरं सुखमवाप्स्यसि ॥ १४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ७२५ ॥

इसलिये तुम धर्मानुसार विचारकर यथा समय सब कार्योंको करोगे तो बहुत कालतक सुख भोगोगे ॥ १४ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥ ७२५ ॥

: २९ :

वैशम्पायन उवाच

अथ राजा त्रिगर्तानां सुशर्मा रथयूथपः ।
प्राप्तकालमिदं वाक्यमुवाच त्वरितो भृशम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले- हे राजा जनमेजय ! उसी समय त्रिगर्त देशका राजा रथसेना का पति सुशर्मा प्राप्त हुए समयके अनुकूल यह वाक्य शीघ्रतासे बोला ॥ १ ॥

असकृन्निकृनः पूर्वं मत्स्यैः साल्वेयकैः सह ।
सूतेन चैव मत्स्यस्य कीचकेन पुनः पुनः ॥ २ ॥
बाधितो बन्धुभिः सार्धं बलाद्बलवता विभो ।
स कर्णमभ्युदीक्ष्याथ दुर्योधनमभाषत ॥ ३ ॥

उस समय सुशर्माने राजा दुर्योधन और कर्णकी ओर देखकर ये वचन कहे– हे प्रभो! मत्स्यदेशके राजा विराटके जिस सेनापति सूत कीचकने कई बार मत्स्य और शाल्व देशके क्षत्रियोंकी सहायतासे त्रिगर्त देशको जीता था, उसको बन्धुओं सहित किसी बलशालीने मार डाला है ॥ २-३ ॥

असकृन्मत्स्यराज्ञा मे राष्ट्रं बाधितमोजसा ।
प्रणेता कीचकश्चास्य बलवानभवत्पुरा ॥ ४ ॥

पहले समयमें अनेक बार मत्स्यराज विराटने बलपूर्वक मेरे राज्यमें बहुत उपद्रव किया था । उसका कीचक नामक सेनापति बडा बलवान् था ॥ ४ ॥

क्रूरोऽमर्षी स दुष्टात्मा भुवि प्रख्यातविक्रमः ।
निहतस्तत्र गंधर्वैः पापकर्मा नृशंसवान् ॥ ५ ॥

उस महाक्रोधी, क्रूर, दुष्ट, महाबलवान्, संसारमें प्रसिद्ध पराक्रमवाले, पापी और निर्लज्ज कीचकको गन्धर्वोंने मार डाला है ॥ ५ ॥

तस्मिंश्च निहते राजन्हीनदर्पो निराश्रयः ।
भविष्यति निरुत्साहो विराट इति मे मतिः ॥ ६ ॥

मेरी समझमें उसके मारे जानेसे राजा विराटका सारा अभिमान जाता रहा होगा तथा वह निरुत्साह और निराश्रय हो गया होगा ॥ ६ ॥

तत्र यात्रा मम मता यदि ते रोचतेऽनघ ।
कौरवाणां च सर्वेषां कर्णस्य च महात्मनः ॥ ७ ॥

हे पापरहित ! यदि तुम्हारी, सब कौरवों और महात्मा कर्णकी संमति हो, तो मेरा विचार है कि हम सब उसके राज्य पर आक्रमण करें ॥ ७ ॥

एतत्प्राप्तमहं मन्ये कार्यमात्ययिकं हितम् ।
राष्ट्रं तस्याभियात्वाशु बहुधान्यसमाकुलम् ॥ ८ ॥

मेरी बुद्धिमें यह काम इस समय करनेके योग्य है । इस समय किया गया यह काम बहुत हितकारी होगा, इसलिए बहुत धान्यसे भरे हुए उस राष्ट्र पर शीघ्र ही हमला कर दें ॥८॥

आदद्यामोऽस्य रत्नानि विविधानि वसूनि च ।
ग्रामान्राष्ट्राणि वा तस्य हरिष्यामो विभागशः ॥ ९ ॥

इस प्रकार उससे हम अनेक प्रकारके रत्न और धन छीन लें। फिर हम सब लोग उसके गांव और राज्य बांट लेंगे ॥ ९ ॥

अथ वा गोसहस्राणि बहूनि च शुभानि च ।
विविधानि हरिष्यामः प्रतिपीडय पुरं बलात् ॥ १० ॥

अथवा अपने बलसे उसके राज्यको नष्ट भ्रष्ट करके अनेक प्रकारकी उत्तम गायें छीन लायेंगे ॥ १० ॥

कौरवैः सह संगम्य त्रिगर्तैश्च विशां पते ।
गास्तस्यापहरामाशु सह सर्वैः सुसंहताः ॥ ११ ॥

हे राजन् ! हम लोग त्रिगर्त और कौरवोंके साथ जाकर तथा सब इकट्ठे होकर उसकी गौओंको शीघ्र ही छीन लावें ॥ ११ ॥

संधिं वा तेन कृत्वा तु निबध्नीमोऽस्य पौरुषम् ।
हत्वा चास्य चमूं कृत्स्नां वशमन्वानयामहे ॥ १२ ॥

अथवा उसके साथ सन्धि करके उसके पराक्रमको बांध दें अथवा उसकी सब सेनाको मारकर हम राजाको ही वशमें कर लें ॥ १२ ॥

तं वशे न्यायतः कृत्वा सुखं वत्स्यामहे वयम् ।
भवतो बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥

फिर हम सब लोग न्यायसे उसे वशमें करके सुखपूर्वक रहेंगे। ऐसा करनेसे निःसन्देह तुम लोगोंके बलकी वृद्धि होगी ॥ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कर्णो राजानमब्रवीत् ।
सूक्तं सुशर्मणा वाक्यं प्राप्तकालं हितं च नः ॥ १४ ॥

राजाके ये वचन सुनकर कर्णने राजा दुर्योधनसे कहा— हे राजन् ! सुशर्माने बहुत उत्तम बात कही है। यह कार्य हम लोगोंका इसी समय करने योग्य है। इससे अवश्यही हमारा कल्याण होगा ॥ १४ ॥

तस्मात्क्षिप्रं विनिर्यामो योजयित्वा वरूथिनीम् ।
विभज्य चाप्यनीकानि यथा वा मन्यसेऽनघ ॥ १५ ॥

इसलिए हम लोग सेनाका प्रबन्ध तथा उनका विभाग करके शीघ्रही विराटनगरको चलें, अथवा, हे निष्पाप राजन् ! तुम जैसा मानते हो, कहो ॥ १५ ॥

प्रज्ञावान्कुरुवृद्धोऽयं सर्वेषां नः पितामहः ।
आचार्यश्च तथा द्रोणः कृपः शारद्वतस्तथा ॥ १६ ॥

अथवा हम सबके पितामह, महापण्डित, कुरुकुलवृद्ध भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य और शरद्वान्के पुत्र कृपाचार्यकी जैसी संमति हो, वैसा ही कार्य करना चाहिये ॥ १६ ॥

मन्यन्ते ते यथा सर्वे तथा यात्रा विधीयताम् ।
संमन्त्र्य चाशु गच्छामः साधनार्थं महीपतेः ॥ १७ ॥

वे सब जैसी सम्मति दें, उसके अनुसार हम यात्रा करें । सब लोगोंकी संमतिके अनुसार हम शीघ्रही राजा विराटको जीतनेके लिये जायें ॥ १७ ॥

किं च नः पाण्डवैः कार्यं हीनार्थबलपौरुषैः ।
अत्यर्थं वा प्रनष्टास्ते प्राप्ता वापि यमक्षयम् ॥ १८ ॥

अब हमें धन, बल और पौरुषसे रहित पाण्डवोंसे क्या प्रयोजन है? वे या तो समूल नष्ट हो गए होंगे, अथवा यमलोक चले गये होंगे ॥ १८ ॥

यामो राजन्ननुद्विग्ना विराटविषयं वयम् ।
आदास्यामो हि गास्तस्य विविधानि वसूनि च ॥ १९ ॥

हे राजन् ! अब हम लोग विराटनगरको निर्भय होकर जायें और वहां जाकर उसकी सब गायें तथा सब धन सम्पत्ति छीन लायें ॥ १९ ॥

ततो दुर्योधनो राजा वाक्यमादाय तस्य तत् ।
वैकर्तनस्य कर्णस्य क्षिप्रमाज्ञापयत्स्वयम् ॥ २० ॥
शासने नित्यसंयुक्तं दुःशासनमनन्तरम् ।
सह वृद्धैस्तु संमन्त्र्य क्षिप्रं योजय वाहिनीम् ॥ २१ ॥

तब राजा दुर्योधनने उस विकर्तनपुत्र कर्णके वचन मान लिये और सब वृद्धोंसे संमति करके अपनी आज्ञापालन करनेमें हमेशा तत्पर रहनेवाले अपने भाई दुःशासनको स्वयं आज्ञा दी कि शीघ्र ही सेना को तैयार करो ॥ २०-२१ ॥

यथोद्देशं तु गच्छामः सहिताः सर्वकौरवैः ।
सुशर्मा तु यथोद्दिष्टं देशं यातु महारथः ॥ २२ ॥
त्रिगर्तैः सहितो राजा समग्रबलवाहनः ।
प्रागेव हि सुसंवीतो मत्स्यस्य विषयं प्रति ॥ २३ ॥

(दुर्योधन बोले) हम सब कौरवोंके साथ अपनी मंजिलकी तरफ चलें । महारथी राजा सुशर्मा सेना और वाहनोंसे अच्छी तरह घिरकर त्रिगर्तोंके साथ पहलेही मत्स्यदेशके विराट नगरको चले जायें ॥ २२-२३ ॥

जघन्यतो वयं तत्र यास्यामो दिवसान्तरम् ।
विषयं मत्स्यराजस्य सुसमृद्धं सुसंहताः ॥ २४ ॥

पीछेसे हम लोग भी संगठित होकर दूसरे दिन धनधान्यसे समृद्ध मत्स्यराज्यके देश पर आक्रमण करते हुए आयेंगे ॥ २४ ॥

ते यात्वा सहसा तत्र विराटनगरं प्रति ।
क्षिप्रं गोपान्समासाद्य गृह्णन्तु विपुलं धनम् ॥ २५ ॥

वे सुशर्मा आदि वीर वहां विराटनगरमें अचानक पहुंचकर शीघ्र ही ग्वालोंसे युद्ध करके बहुतसा धन अपने कब्जेमें कर लें ॥ २५ ॥

गवां शतसहस्राणि श्रीमन्ति गुणवन्ति च ।
वयमपि निगृह्णीमो द्विधा कृत्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥

हम भी अपनी सेनाको दो भागोंमें बांटकर सुन्दर और उत्तम गुणोंसे युक्त लाखों गायोंको अपने अधिकारमें कर लेंगे ॥ २६ ॥

स स्म गत्वा यथोद्दिष्टां दिशं वह्नेर्महीपतिः
आदत्त गाः सुशर्माथ घर्मपक्षस्य सप्तमीम् ॥ २७ ॥

राजाकी आज्ञाक अनुसार वह महासेना हस्तिनापुरसे निकलकर अग्निकोणकी ओर चली, उस दिन कृष्णपक्षकी सप्तमी थी । इस सेनाके सेनापति राजा सुशर्मा थे ॥ २७ ॥

अपरं दिवसं सर्वे राजन्संभूय कौरवाः ।
अष्टम्यां तान्यगृह्णन्त गोकुलानि सहस्रशः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ७५३ ॥

हे राजन्! दूसरे दिन अर्थात् कृष्णपक्षकी अष्टमीको सभी कौरवोंने मिलकर हजारों गायोंके समूहोंको पकड लिया ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥ ७५३ ॥

: ३० :

वैशम्पायन उवाच

ततस्तेषां महाराज तथैवामिततेजसाम् ।
छद्मलिंगप्रविष्टानां पांडवानां महात्मनाम् ॥ १ ॥
व्यतीतः समयः सम्यग्वसतां वै पुरोत्तमे ।
कुर्वतां तस्य कर्माणि विराटस्य महीपतेः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! कपटवेशमें प्रविष्ट हुए अत्यन्त तेजस्वी महात्मा पाण्डवोंके विराट राजाकी सेवा करते हुए उस उत्तम नगरमें रहते हुए उनका वह अज्ञातवासका समय उत्तम रीतिसे बीत गया ॥ १–२ ॥

ततस्त्रयोदशस्यान्ते तस्य वर्षस्य भारत ।
सुशर्मणा गृहीतं तु गोधनं तरसा बहु ॥ ३ ॥

हे भारत ! तेरहवें वर्षके अन्तके दिन कौरवोंकी सेनाका प्रथमभाग विराटनगरमें पहुंचा । राजा सुशर्माने विराटके अहीरोंसे सब गौवें छीन लीं ॥ ३ ॥

ततो जवेन महता गोपाः पुरमथाऽव्रजत् ।
अपश्यन्मत्स्यराजं च रथात्प्रस्कंद्य कुंडली ॥ ४ ॥

उसी समय विराटके ग्वाले बहुत वेगसे दौडकर नगरमें आये और कुण्डलोंको धारण करनेवाले उन ग्वालोंके स्वामीने रथसे उतरकर मत्स्यराजको देखा ॥ ४ ॥

शूरैः परिवृतं योधैः कुंडलांगदधारिभिः ।
सद्भिश्च मंत्रिभिः सार्धं पांडवैश्च नरर्षभैः ॥ ५ ॥
तं सभायां महाराजमासीनं राष्ट्रवर्धनम् ।
सोऽब्रवीदुपसंगम्य विराटं प्रणतस्तदा ॥ ६ ॥

उस समय राजा, कुण्डल और बाजूबंदधारी महापराक्रमी योद्धाओंसे, नरश्रेष्ठ पाण्डवों और मन्त्रियोंसे घिरे हुए बैठे थे । सभामें विराजमान तथा राष्ट्रको बढानेवाले महाराज विराटको देखकर उनके पास जाकर गोपने प्रणाम करके कहा ॥ ५–६ ॥

अस्मान्युधि विनिर्जित्य परिभूय सबांधवान् ।
गवां शतसहस्राणि त्रिगर्ताः कालयन्ति ते ।
तान्परीप्स मनुष्येन्द्र मा नेशुः पशवस्तव ॥ ७ ॥

हे राजन् ! त्रिगर्त देशके राजा सुशर्माने बान्धवों सहित हम लोगोंको युद्धमें जीतकर आपकी एक लाख गौवें छीन ली हैं। हे राजेन्द्र ! उन्हें वापिस लेनेका आप शीघ्र प्रबन्ध कीजिये, वह आपके पशु नष्ट न हो जायें ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा नृपतिः सेनां मत्स्यानां समयोजयत्।
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ॥ ८ ॥

गोपके ऐसे वचन सुनकर राजाने शीघ्र ही सेनाको सन्नद्ध होनेकी आज्ञा दी। राजाकी आज्ञा सुनतेही रथ, हाथी, घोडे और पदातियोंसे भरी हुई सेना युद्धके लिये तैयार हो गई। रथोंपर ध्वजायें उडने लगीं ॥ ८ ॥

राजानो राजपुत्राश्च तनुत्राण्यत्र भेजिरे।
भानुमन्ति विचित्राणि सूपसेव्यानि भागशः ॥ ९ ॥

राजा और राजपुत्र, अच्छी तरहसे धारण करने योग्य, विचित्र तथा तेजस्वी शस्त्रों तथा कवचोंको एक एक करके धारण करने लगे ॥ ९ ॥

सवज्रायसगर्भं तु कवचं तप्तकांचनम्।
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीकोऽभ्यहारयत् ॥ १० ॥

उसी समय राजा विराटके प्यारे भाई शतानीकने लोहेका बना ऊपरसे सोनेके तारोंसे खिंचा, वज्रके समान दृढ कवच पहन लिया ॥ १० ॥

सर्वपारसवं वर्म कल्याणपटलं दृढम्।
शतानीकादवरजो मदिराश्वोऽभ्यहारयत् ॥ ११ ॥

उसके पश्चात् शतानीकके छोटे भाई मदिराश्वने भी सब शस्त्रोंकी चोटोंको सहनेमें समर्थ और सोनेसे मढे हुए दृढ कवचको पहना ॥ ११ ॥

शतसूर्यं शतावर्तं शतबिंदु शताक्षिमत्।
अभेद्यकल्पं मत्स्यानां राजा कवचमाहरत् ॥ १२ ॥

उसके बाद मत्स्योंके राजा विराटने सौ सूर्योंके समान प्रकाशमान, सैंकडों बिन्दुओंसे शोभित तथा सैंकडों नेत्रोंके आकारवाले चक्रोंसे युक्त अभेद्य कवच धारण किया ॥ १२ ॥

उत्सेधे यस्य पद्मानि शतं सौगंधिकानि च।
सुवर्णपृष्ठं सूर्याभं सूर्यदत्तोऽभ्यहारयत् ॥ १३ ॥

उसके पश्चात् अनेक सुगन्धित कमलोंसे शोभित, पीठमें सोनेका और सर्वत्र लोहेका बना सूर्यके समान कान्तिवाला कवच राजाके छोटे भाई सूर्यदत्तने धारण किया ॥ १३ ॥

दृढमायसगर्भं तु श्वेतं वर्म शताक्षिमत्।
विराटस्य सुतो ज्येष्ठो वीरः शंखोऽभ्यहारयत् ॥ १४ ॥

इसके पश्चात् राजाके बडे पुत्र वीर शंखने अन्दर लोहमय पर ऊपरसे सफेद और सैंकडों आंखोंवाले दृढ कवचको पहना ॥ १४ ॥

ततश्च तनुत्राणि यथास्वानि महारथाः ।
योत्स्यमानाभ्यनह्यन्त देवरूपाः प्रहारिणः ॥ १५ ॥

उसके पश्चात् देवोंके समान रूपवाले तथा शत्रुओंपर प्रहार करनेवाले तथा युद्ध करनेके लिये सन्नद्ध अनेक महारथियोंने यथायोग्य कवच धारण किये ॥ १५ ॥

सूपस्करेषु शुभ्रेषु महत्सु च महारथाः ।
पृथक्कांचनसन्नाहान्रथेष्वश्वानयोजयन् ॥ १६ ॥

उसी समय उन महारथियोंने सुन्दर प्रकाशमान तथा युद्ध सामग्रीसे भरपूर रथोंमें सोनेके अलंकारोंसे शोभित घोडोंको जोडा ॥ १६ ॥

सूर्यचंद्रप्रतीकाशो रथे दिव्ये हिरण्मयः ।
महानुभावो मत्स्यस्य ध्वज उच्छिश्रिये तदा ॥ १७ ॥

उसी समय महानुभाव विराटके दिव्य रथमें सोनेसे बनी हुई तथा सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रकाशित ध्वजा चढाई गई ॥ १७ ॥

अथान्यान्विविधाकारान्ध्वजान्हेमविभूषितान् ।
यथास्वं क्षत्रियाः शूरा रथेषु समयोजयन् ॥ १८ ॥

उसके पश्चात् दूसरे भी सब क्षत्रिय वीरोंने अपने अपने रथोंमें सोनेके दण्डवाली अनेक प्रकारकी ध्वजायें लगाईं ॥ १८ ॥

अथ मत्स्योऽब्रवीद्राजा शतानीकं जघन्यजम् ।
कंकबल्लवगोपाला दामग्रंथिश्च वीर्यवान् ।
युध्येयुरिति मे बुद्धिर्वर्तते नाऽत्रसंशयः ॥ १९ ॥

उसी समय राजा विराटने अपने छोटे भाई शतानीकसे कहा– मैं समझता हूँ कि कङ्क, बल्लव, गोपाल और दामग्रंथि भी अवश्य युद्ध करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥

एतेषामपि दीयन्तां रथा ध्वजपताकिनः ।
कवचानि विचित्राणि दृढानि च मृदूनि च ।
प्रतिमुञ्चन्तु गात्रेषु दीयन्तामायुधानि च ॥ २० ॥

ये चारों बहुत बलवान् दीखते हैं, इसलिये तुम इन चारोंको भी ध्वजायुक्त रथ और विचित्र तथा दृढ, कोमल कवच दे दो। साथ ही इन्हें शस्त्रास्त्र भी दे दो। ये लोग अपने शरीरों पर कवचोंको पहनें और शस्त्रोंको धारण करें ॥ २० ॥

वीरांगरूपाः पुरुषा नागराजकरोपमाः ।
नेमे जातु न युध्येरन्निति मे धीयते मतिः । ॥ २१ ॥

इनके अंग और रूप वीरोंके समान हैं, इनके हाथ हाथीके सूंडके समान हैं, अतः मेरा यह बिचार है कि ये लोग कदापि युद्धसे नहीं हटेंगे ॥ २१ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु नृपतेर्वाक्यं त्वरितमानसः ।
शतानीकस्तु पार्थेभ्यो रथान्राजन्समादिशत् ।
सहदेवाय राज्ञे च भीमाय नकुलाय च ॥ २२ ॥

हे राजन् ! राजाकी यह आज्ञा सुनते ही शीघ्रतासे कर्म करनेवाले शतानीकने युधिष्ठिर, भीम,नकुल और सहदेवको रथ, कवच और शस्त्र दिये ॥ २२ ॥

तान्प्रहृष्टास्ततः सूता राजभक्तिपुरस्कृताः ।
निर्दिष्टान्नरदेवेन रथाञ्शीघ्रमयोजयन् ॥ २३ ॥

उसी समय राजासे आज्ञा पाकर राजभक्त सारथियोंने पाण्डवोंके निमित्त उत्तम रथोंमें शीघ्रतासे घोडे जोडे ॥ २३ ॥

कवचानि विचित्राणि दृढानि च मृदूनि च ।
विराटः प्रादिशद्यानि तेषामक्लिष्टकर्मणाम् ।
तान्यामुच्य शरीरेषु दंशितास्ते परंतपाः ॥ २४ ॥

उन कठोर कर्म करनेवाले पाण्डवोंको विराटने जो कोमल पर दृढ और बिचित्र कवच दिए थे, उनको शत्रुनाशी पाण्डवोंने शरीरों पर चढाया और प्रसन्न होकर निकल पडे ॥ २४ ॥

तरस्विनश्छन्नरूपाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
विराटमन्वयुः पश्चात्सहिताः कुरुपुंगवाः
चत्वारो भ्रातरः शूराः पांडवाः सत्यविक्रमाः ॥ ॥ २५ ॥

कपट वेशको धारण किए हुए, प्रहार करनेवाले तथा युद्ध करनेमें कुशल वे शूरवीर कुरुकुल-श्रेष्ठ सत्यपराक्रमी चारों भाई पाण्डव प्रसन्न होकर राजा विराटके साथ चल दिये॥२५॥

भीमाश्च मत्तमातंगाः प्रभिन्नकरटामुखाः ।
क्षरन्त इव जीमूताः सुदंताः षष्टिहायनाः ॥ २६ ॥

उस सेनामें भयंकर मतवाले जिनसे मद टपक रहा था, बडे बडे दांतवाले तथा साठ वर्षके हाथी ऐसे लगते जैसे पानी बरसाते हुए काले बादल ॥ २६ ॥

स्वारूढा युद्धकुशलैः शिक्षितैर्हस्तिसादिभिः ।
राजानमन्वयुः पश्चाचलन्त इव पर्वताः ॥ २७ ॥

वे महावतोंके द्वारा अच्छी तरह शिक्षित तथा युद्धमें कुशल हाथी वीरोंको अपनी पीठों पर चढाकर वीरोंके सहित विराटके पीछे इस प्रकार चले जैसे साक्षात् पर्वत चल रहें हों ॥२७॥

विशारदानां वश्यानां हृष्टानां चानुयायिनाम् ।
अष्टौ रथसहस्राणि दश नागशतानि च ।
षष्टिश्चाश्वसहस्राणि मत्स्यानामभिनिर्ययुः ॥ २८ ॥

युद्धविद्यामें प्रवीण, हमेशा आज्ञामें रहनेवाले मुख्य और हर्षयुक्त योद्धाओंके आठ हजार रथ, एक हजार हाथी और साठ हजार घोडे विराटके साथ नगरसे निकले ॥ २८ ॥

तदनीकं विराटस्य शुशुभे भरतर्षभ ।
संप्रयातं महाराज निनीषन्तं गवां पदम् ॥ २९ ॥

हे भरतोंमें श्रेष्ठ महाराज जनमेजय ! गायोंके स्थानको ले जाई जानेके लिए निकली हुई वह विराटकी सेना बहुत शोभित हुई ॥ २९ ॥

तद्बलाग्र्यं विराटस्य संप्रस्थितमशोभत ।
दृढायुधजनाकीर्णं गजाश्वरथसंकुलम् ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ७८३ ॥

दृढ शस्त्रों और वीरोंसे सम्पन्न, हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त वह विराटकी श्रेष्ठसेना चलती हुई बहुत ही शोभित हुई ॥ ३० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥ ७८३ ॥

: ३१ :

वैशम्पायन उवाच

निर्याय नगराच्छूरा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ।
त्रिगर्तानस्पृशन्मत्स्याः सूर्ये परिणते सति ॥ १ ॥

मत्स्यदेशकी शूरवीर और उत्तमरीतिसे प्रहार करनेवाले योद्धाओंसे युक्त वह विशाल सेना नगरसे निकलकर सूर्यके अस्तमनके समय त्रिगर्तोंसे जा भिडी ॥ १ ॥

ते त्रिगर्ताश्च मत्स्याश्च संरब्धा युद्धदुर्मदाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोषु गृद्धा महाबलाः ॥ २ ॥

युद्धके लिए उन्मत्त, क्रोधसे भरी हुई, गायोंको पानेकी इच्छा करनेवाली, महाबलशाली त्रिगर्त और मत्स्यकी सेनायें गर्जना करती हुई एक दूसरेसे भिड गईं ॥ २ ॥

भीमाश्च मत्तमातंगास्तोमरांकुशचोदिताः ।
ग्रामणीयैः समारूढाः कुशलैर्हस्तिसादिभिः ॥ ३ ॥

जिनपर ग्रामाधिकारी कुशल महावतोंके साथ बैठे हैं, ऐसे वे बडे शरीरवाले मतवाले हाथी तोमर और अंकुशोंसे प्रेरित होकर चलने लगे ॥ ३ ॥

तेषां समागमो घोरस्तुमुलो लोमहर्षणः ।
देवासुरसमो राजन्नासीत्सूर्ये विलम्बति ॥ ४ ॥

उनका यह युद्ध ऐसा घोर हुआ कि वीरोंके रोमाञ्च खडे होने लगे, हे राजन् ! सूर्यास्तके समय यह युद्ध देवासुर संग्रामके तुल्य हो गया ॥ ४ ॥

उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्रज्ञायत किंचन ।
पक्षिणश्चापतन्भूमौ सैन्येन रजसावृताः ॥ ५ ॥

आकाशमें धूल छा गई, उससे कुछ भी जान नहीं पडता था । सेनाके द्वारा उडाई गई धूलसे अन्धे होकर पक्षीगण भूमि पर गिरने लगे ॥ ५ ॥

इषुभिर्व्यतिसंसद्भिरादित्योऽन्तरधीयत ।
खद्योतैरिव संयुक्तमन्तरिक्षं व्यराजत ॥ ६ ॥

इधर उधर उडते हुए बाणोंके कारण सूर्य छिप गया । आकाश शस्त्रोंके कारण जुगनुओंसे भरे हुएके समान दीखने लगा ॥ ६ ॥

रुक्मपृष्ठानि चापानि व्यतिषक्तानि धन्विनाम् ।
पततां लोकवीराणां सव्यदक्षिणमस्यताम् ॥ ७ ॥

दायें बायें बाणोंको छोडनेवाले तथा एक दूसरे पर हमला करते हुए धनुषधारी वीरोंके सोनेसे मढे हुए पृष्ठ भागवाले धनुष आपसमें टकराने लगे ॥ ७ ॥

रथा रथैः समाजग्मुः पादातैश्च पदातयः ।
सादिभिः सादिनश्चैव गजैश्चापि महागजाः ॥ ८ ॥

रथी रथीसे, पदाति पदातिसे, घोडेवाले घोडेवालोंसे और हाथीवाले हाथीवालोंसे युद्ध करने लगे ॥ ८ ॥

असिभिः पट्टिशैः प्रासैः शक्तिभिस्तोमरैरपि ।
संरब्धाः समरे राजन्निजघ्नुरितरेतरम् । ॥ ९ ॥

हे राजन् ! क्रोधित हुए वीर युद्धमें खड्ग, पट्टिश, भाले, शक्ति और तोमरोंसे एक दूसरेको मारने लगे ॥ ९ ॥

निघ्नन्तः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ।
न शेकुरभिसंरब्धाः शूरान्कर्तुं पराङ्मुखान् ॥ १० ॥

परिघके समान भुजावाले वीर क्रोधित होकर एक दूसरेको मारने लगे, परन्तु यह किसीकी शक्ति न हुई कि वह दूसरेकी सेनाको हटा दे ॥ १० ॥

क्लृप्तोत्तरोष्ठं सुनसं क्लृप्तकेशमलंकृतम्
अदृश्यत शिरश्छिन्नं रजोध्वस्तं सकुण्डलम् ॥ ११ ॥

किसीका ऊपरका होठ, किसीकी नाक, और किसीके सजे संवारे बाल कट गये तथा कुण्डलोंसे अलंकृत कटा हुआ सिर धूलिमें लिपटा हुआ दिखाई दिया ॥ ११ ॥

अदृश्यंस्तत्र गात्राणि शरैश्छिन्नानि भागशः ।
शालस्कन्धनिकाशानि क्षत्रियाणां महामृधे ॥ १२ ॥

उस महासंग्राममें क्षत्रियोंके बाणोंके द्वारा कटे हुए अवयवोंवाले शरीर शालवृक्षकी डालियोंके समान दिखाई दिए ॥ १२ ॥

नागभोगनिकाशैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।
आकीर्णा वसुधा तत्र शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥ १३ ॥

युद्धकी भूमि हाथीके शुण्डादण्डके समान चन्दन चर्चित हाथों और कुण्डलधारी शिरोंसे भर गई ॥ १३ ॥

उपशाम्यद्रजो भौमं रुधिरेण प्रसर्पता ।
कश्मलं प्राविशद्घोरं निर्मर्यादमवर्तत ॥ १४ ॥

रुधिरके बहनेसे भूमि परकी सब धूल दब गई, तब वीरोंको मूर्च्छा होने लगी और युद्ध मर्यादा रहित होने लगा ॥ १४ ॥

शतानीकः शतं हत्वा विशालाक्षश्चतुःशतम् ।
प्रविष्टौ महतीं सेनां त्रिगर्तानां महारथौ ।
आर्च्छेतां बहुसंरब्धा केशाकेशि नखानखि ॥ १५ ॥

इसी समय शतानीकने एकसौ और विशालाक्षने चारसौ वीरोंको मारकर वे दोनों महारथी त्रिगर्तोंकी विशाल सेनामें घुस गए। वे वीर एक दूसरेके बाल पकडकर तथा एक दूसरेके नख मार कर युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥

लक्षयित्वा त्रिगर्तानां तौ प्रविष्टौ रथव्रजम् ।
जग्मतुः सूर्यदत्तश्च मदिराश्वश्च पृष्ठतः ॥ १६ ॥

त्रिगर्तोंकी सेनामें प्रविष्ट हुए दोनों महारथियोंको देखकर आगेसे सूर्यदत्त और पीछेसे मदिराक्षने भी सुशर्माकी सेनामें प्रवेश किया ॥ १६ ॥

+

विराटस्तत्र संग्रामे हत्वा पंचशतान्रथान् ।
हयानां च शतान्यत्र हत्वा पंच महारथान् ॥ १७ ॥

राजा विराटने पांचसौ रथोंको, सौ घोडोंको और पांच महारथियोंको मारकर घोर युद्ध किया ॥ १७ ॥

चरन्स विविधान्मार्गान्रथेषु रथयूथपः ।
त्रिगर्तानां सुशर्माणमाच्छेद्रुक्मरथं रणे ॥ १८ ॥

फिर वे महारथी अपने रथ पर चढकर त्रिगर्तके राजा सुशर्माके सोनेके रथ पर युद्धमें टूट पडे ॥ १८ ॥

तौ व्यावहरतां तत्र महात्मानौ महाबलौ ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ १९ ॥

ये महात्मा महाबलवान् दोनों राजा युद्धभूमिमें इस प्रकार गर्जकर युद्ध करने लगे, जैसे गोष्ठ में दो बैल लडते हैं ॥ १९ ॥

ततो रथाभ्यां रथिनौ व्यतियाय समन्ततः ।
शरान्व्यसृजतां शीघ्रं तोयधारा घनाविव ॥ २० ॥

तब दोनों महारथी अपने अपने रथसे निकलकर युद्ध करने लगे । ये दोनों राजा चारों ओर इसप्रकार बाण बरसाने लगे, जैसे मेघ जल बरसाते हैं ॥ २० ॥

अन्योन्यं चातिसंरब्धौ विचेरतुरमर्षणौ ।
कृतास्त्रौ निशितैर्बाणैरसिशक्तिगदाभृतौ ॥ २१ ॥

तलवार, शक्ति और गदा को धारण करनेवले, शस्त्रविद्यामें कुशल, अत्यन्त, क्रोधी तथा एक दूसरेको न सहनेवाले वे दोनों तीक्ष्ण बाणोंसे एक दूसरे पर प्रहार करते हुए युद्ध भूमिमें घूमने लगे ॥ २१ ॥

ततो राजा सुशर्माणं विव्याध दशभिः शरैः ।
पंचभिः पंचभिश्चास्य विव्याध चतुरो हयान् ॥ २२ ॥

तदनन्तर राजा विराटने सुशर्माको दस बाणोंसे बींध दिया और पांच पांच बाणोंसे उसके चारों घोडोंको बींध दिया ॥ २२ ॥

तथैव मत्स्यराजानं सुशर्मा युद्धदुर्मदः ।
पञ्चाशता शितैर्बाणैर्विव्याध परमास्त्रवित् ॥ २३ ॥

इसी प्रकार शस्त्रोंके जाननेवाले महायोद्धा सुशर्माने भी राजा विराटके शरीरमें पचास तीक्ष्ण बाण मारे ॥ २३ ॥

ततः सैन्यं समावृत्य मत्स्यराजसुशर्मणोः ।
नाभ्यजानंस्तदान्योन्यं प्रदोषे रजसावृते ॥ २४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ८०७ ॥

तब सायंकालके समय सर्वत्र धूलि छा जानेके कारण मत्स्यराज विराट और सुशर्माकी सेनायें घिरकर एक दूसरेको पहचान न सकीं ॥ २४ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३१ ॥ ८०७ ॥

: ३२ :

वैशम्पायन उवाच

तमसाभिप्लुते लोके रजसा चैव भारत ।
व्यतिष्ठन्वै मुहूर्तं तु व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! जनमेजय जब सब लोक अन्धकार और धूलसे भर गये, तब दोनों सेनायें व्यूह बनाकर घडी भरके लिये युद्धसे विमुख हो गईं ॥ १ ॥

ततोऽन्धकारं प्रणुदन्नुदतिष्ठत चन्द्रमाः ।
कुर्वाणो विमलां रात्रिं नन्दयन्क्षत्रियान्युधि ॥ २ ॥

तब अन्धकारका विनाश कर निर्मल रात्रिको प्रकाशित करता हुआ और युद्धमें क्षत्रियोंका आनन्द बढाता हुआ चन्द्रमा उदय हुआ ॥ २ ॥

ततः प्रकाशमासाद्य पुनर्युद्धमवर्तत ।
घोररूपं ततस्ते स्म नावेक्षन्त परस्परम् ॥ ३ ॥

तब चांदनी होनेपर घोर युद्ध होने लगा । उस समय युद्धमें योद्धा लोग एक दूसरेको देख भी नहीं पाते थे ॥ ३ ॥

ततः सुशर्मा त्रैगर्तः सह भ्रात्रा यवीयसा ।
अभ्यद्रवन्मत्स्यराजं रथव्रातेन सर्वशः ॥ ४ ॥

उसी समय राजा सुशर्मा अपने छोटे भाई और रथोंके सहित राजा विराटकी ओर दौडा और उसे उसने चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

ततो रथाभ्यां प्रस्कंद्य भ्रातरौ क्षत्रियर्षभौ ।
गदापाणी सुसंरब्धौ समभ्यद्रवतां हयान् ॥ ५ ॥

तदनन्तर वे दोनों रथसे उतर कर और गदा धारण करके और क्रोधमें भरकर विराटके घोडोंकी ओर दौडे ॥ ५ ॥

तथैव तेषां तु बलानि तानि क्रुद्धान्यथान्योन्यमभिद्रवन्ति ।
गदासिखड्गैश्च परश्वधैश्च प्रासैश्च तीक्ष्णाग्रसुपीतधारैः ॥ ६ ॥

उसी तरह राजा सुशर्माकी और विराटकी वह सेना भी क्रोधसे तीक्ष्ण धाँरवाले खड्ग गदा फरसे, परिघ और भाले धारण करके एक दूसरेकी ओर दौडी ॥ ६ ॥

बलं तु मत्स्यस्य बलेन राजा सर्वं त्रिगर्ताधिपतिः सुशर्मा ।
प्रमथ्य जित्वा च प्रसह्य मत्स्यं विराटमोजस्विनमभ्यधावत् ॥ ७ ॥

त्रिगर्तदेशाधिपति राजा सुशर्मा मत्स्याधिपति विराटकी सेनाको कुचलकर और विजय प्राप्तकर वीर विराटकी ओर बढे ॥ ७ ॥

तौ निहत्य पृथग्धुर्यावुभौ च पार्ष्णिसारथी ।
विरथं मत्स्यराजानं जीवग्राहमगृह्णताम् ॥ ८ ॥

उन दोनों भाइयोंने विराटके दोनों घोडे पार्ष्णि (पीठरक्षक) और सारथीको मारकर रथहीन मत्स्यराज विराटको जीवित ही पकड लिया ॥ ८ ॥

तमुन्मथ्य सुशर्मा तु रुदतीं वधुकामिव ।
स्यंदनं स्वं समारोप्य प्रययौ शीघ्रवाहनः ॥ ९ ॥

सुशर्माने विराटकी मरम्मत करके, जैसे कोई पुरुष रोती हुई स्त्रीको भगा ले जाता है, उसी प्रकार विराटको अपने रथमें डालकर शीघ्र चल पडा ॥ ९ ॥

तस्मिन्गृहीते विरथे विराटे बलवत्तरे ।
प्राद्रवन्त भयान्मत्स्यास्त्रिगर्तैरर्दिता भृशम् ॥ १० ॥

जब बलवान् विराट रथहीन होकर पकडे गये, तब उनकी सब सेना त्रिगर्तोंसे सताये जाने पर व्याकुल होकर भयसे भागने लगी ॥ १० ॥

तेषु संत्रास्यमानेषु कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर ।
अभ्यभाषन्महाबाहुं भीमसेनमरिंदमम् ॥ ११ ॥

तब उनको भयभीत देखकर कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने शत्रुनाशक महाबाहु भीमसेनसे कहा ॥ ११ ॥

मत्स्यराजः परामृष्टस्त्रिगर्तेन सुशर्मणा ।
तं मोक्षय महाबाहो न गच्छेद्द्विषतां वशम् ॥ १२ ॥

हे महाबाहो ! इस त्रिगर्तराज सुशर्माने मत्स्यराज विराटको पकड लिया है, इसलिये तुम उसे छुडाओ, जिससे कि राजा शत्रुओंके वशमें न हो जाये ॥ १२ ॥

उषिताः स्मः सुखं सर्वे सर्वकामैः सुपूजिताः ।
भीमसेन त्वया कार्या तस्य वासस्य निष्कृतिः ॥ १३ ॥

हे भीम ! हम इसके घरमें सुखसे अपनी इच्छापूर्ति करते हुए एक वर्ष रहे हैं, तुम उस निवासका बदला दो ॥ १३ ॥

भीमसेन उवाच

अहमेनं परित्रास्ये शासनात्तव पार्थिव ।
पश्य मे सुमहत्कर्म युध्यतः सह शत्रुभिः ॥ १४ ॥

भीमसेन बोले– हे महाराज ! मैं आपकी आज्ञासे अभी विराटको छुडा लेता हूं, आप इस युद्धमें शत्रुओंके साथ मेरे महान् पराक्रमको देखिये ॥ १४ ॥

स्वबाहुबलमाश्रित्य तिष्ठ त्वं भ्रातृभिः सह ।
एकांतमाश्रितो राजन्पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ १५ ॥

हे राजन् ! आप अपने बाहुबलका आश्रय लेकर भाइयोंके सहित एकान्तमें खडे हो जाइए और एकान्तमें खडे होकर, हे राजन् ! आप आज मेरे पराक्रमको देखिये ॥ १५ ॥

सुस्कंधोऽयं महावृक्षो गदारूप इव स्थितः ।
एनमेव समारुज्य द्रावयिष्यामि शात्रवान् ॥ १६ ॥

यह बडी शाखावाला जो वृक्ष गदाके समान खडा हुआ है, मैं अभी उसको उखाडकर सब शत्रुओंको भगाये देता हूं ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

तं मत्तमिव मातंगं वीक्षमाणं वनस्पतिम् ।
अब्रवीद्भ्रातरं वीरं धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– जब भीमसेन मतवाले हाथीके समान उस वृक्षको देखने लगे, तब धर्मराज युधिष्ठिरने अपने वीर भाई भीमसेनसे कहा ॥ १७ ॥

मा भीम साहसं कार्षीस्तिष्ठत्वेष वनस्पतिः ।
मा त्वा वृक्षेण कर्माणि कुर्वाणमतिमानुषम् ।
जनाः समवबुध्येरन्भीमोऽयमिति भारत ॥ १८ ॥

हे भीम ! तुम साहस मत करो । इस वनस्पतिको खडा रहने दो । इस प्रकार वृक्षसे ही अमानुषीय कामोंको करते हुए देखकर तुम्हें लोग ' यह भीम है ' इस प्रकार ज़ान लेंगे ॥ १८ ॥

अन्यदेवायुधं किंचित्प्रतिपद्यस्व मानुषम् ।
चापं वा यदि वा शक्तिं निस्त्रिंशं वा परश्वधम् ॥ १९ ॥

अतः तुम धनुष, शक्ति, तलवार अथवा फरसा इनमेंसे दूसरा ही शस्त्र धारण करो, जो मनुष्योंके धारण करनेके योग्य हो ॥ १९ ॥

यदेव मानुषं भीम भवेदन्यैरलक्षितम् ।
तदेवायुधमादाय मोक्षयाशु महीपतिम् ॥ २० ॥

भीम ! जो शस्त्र मनुष्यके द्वारा धारण करने योग्य हो, तथा जिससे लोग तुम्हें पहिचान न जायें, ऐसा शस्त्र लेकर तुम राजाको जल्दीसे जल्दी छुडा लो ॥ २० ॥

यमौ च चक्ररक्षौ ते भवितारौ महाबलौ ।
व्यूहतः समरे तात मत्स्यराजं परीप्सतः ॥ २१ ॥

महाबलवान् नकुल और सहदेव तुम्हारे रथके चक्रकी रक्षा करेंगे, और मत्स्यराज विराटको छुडानेकी इच्छा करनेवाले वे दोनों व्यूहकी रचना करेंगे ॥ २१ ॥

ततः समस्तास्ते सर्वे तुरगानभ्यचोदयन् ।
दिव्यमस्त्रं विकुर्वाणास्त्रिगर्तान्प्रत्यमर्षणाः ॥ २२ ॥

तब उन तीनोंने घोडे हांके और त्रिगर्तों पर क्रोधित होकर दिव्यास्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी ॥ २२ ॥

तान्निवृत्तरथान्दृष्ट्वा पांडवान्सा महाचमूः ।
वैराटी परमक्रुद्धा युयुधे परमाद्भुतम् ॥ २३ ॥

अपने रथ लौटाकर पाण्डवोंको युद्ध करते देख विराटकी सब सेना लौटी। विराटका पुत्र भी क्रोधमें भरकर अद्भुत युद्ध करने लगा ॥ २३ ॥

सहस्रं न्यवधीत्तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
भीमः सप्तशतान्योधान्परलोकमदर्शयत् ।
नकुलश्चापि सप्तैव शतानि प्राहिणोच्छरैः ॥ २४ ॥

उस युद्धमें राजा युधिष्ठिरने हजार वीरोंको मारा। भीमने सात सौ वीरोंको यमलोक दिखाया नकुलने भी बाणोंसे सातसौ वीरोंको यमलोक भेज दिया ॥ २४ ॥

शतानि त्रीणि शूराणां सहदेवः प्रतापवान् ।
युधिष्ठिरसमादिष्टो निजघ्ने पुरुषर्षभः ।
भित्त्वा तां महतीं सेनां त्रिगर्तानां नरर्षभ ॥ २५ ॥

हे नरश्रेष्ठ जनमेजय ! युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर प्रतापी तथा पुरुषश्रेष्ठ सहदेवने भी त्रिगर्तोंकी उस विशाल सेनाके व्यूह तोड कर तीन सौ शूरवीरोंको मार डाला ॥ २५ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा त्वरमाणो महारथः ।
अभिद्रुत्य सुशर्माणं शरैरभ्यतुदद्भृशम् ॥ २६ ॥

तब महारथी राजा युधिष्ठिरने भी जल्दी करते हुए सुशर्माके पास जाकर उसे अपने बाणोंसे बहुत पीडित किया ॥ २६ ॥

सुशर्मापि सुसंक्रुद्धस्त्वरमाणो युधिष्ठिरम् ।
अविध्यन्नवभिर्बाणैश्चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २७ ॥

सुशर्माने भी क्रोधमें भरकर शीघ्रतामे राजा युधिष्ठिरके शरीरमें नौ बाण मारे और चार बाण चारों घोडोंको मारे ॥ २७ ॥

ततो राजन्नाशुकारी कुंतीपुत्रो वृकोदरः ।
समासाद्य सुशर्माणमश्वानस्य व्यपोथयत् ॥ २८ ॥

हे राजन्! उसी समय शीघ्रता करनेवाला कुन्तीपुत्र भीम राजा सुशर्माके पास आ पहुंचे और उसके चारों घोडोंको उन्होंने मार डाला ॥ २८ ॥

पृष्ठगोपौ च तस्याथ हत्वा परमसायकैः ।
अथास्य सारथिं क्रुद्धो रथोपस्थादपाहरत ॥ २९ ॥

उसके बाद उसके पृष्ठरक्षकोंको बाणोंसे मारकर क्रोधसे उसके सारथीको भी रथसे पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २९ ॥

चक्ररक्षश्च शूरश्च शोणाश्वो विश्रुतः ।
स भयाद्द्वैरथं दृष्ट्वा त्रैगर्तं प्राजहत्तदा ॥ ३० ॥

उसी समय इस द्वैरथ युद्धको देखकर शोणाश्व नामसे प्रसिद्ध सुशर्माके रथके चक्रका रक्षक शूरवीर होने पर भी भयसे सुशर्माको छोडकर भाग गया ॥ ३० ॥

ततो विराटः प्रस्कन्द्य रथादथ सुशर्मणः ।
गदामस्य परामृश्य तमेवाजघ्निवान्बली ।
स चचार गदापाणिर्वृद्धोऽपि तरुणो यथा ॥ ३१ ॥

उसी समय बलवान् राजा विराट सुशर्माके रथसे उतरे और सुशर्माकी ही गदा छीनकर उस पर टूट पडे और गदा हाथमें लेकर विराट बूढे होनेपर भी तरुण पुरुषके समान युद्ध-भूमिमें घूमने लगे ॥ ३१ ॥

भीमस्तु भीमसंकाशो रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
त्रिगर्तराजमादत्त सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ ३२ ॥

कुण्डलोंको धारण किए हुए महापराक्रमी भीमने भी अपने रथसे उतरकर त्रिगर्तराज सुशर्माको उसी प्रकार पकड लिया जिस प्रकार कोई सिंह छोटे हिरणको पकड लेता है ॥ ३२ ॥

तस्मिन्गृहीते विरथे त्रिगर्तानां महारथे।
अभज्यत बलं सर्वं त्रैगर्तं तद्भयातुरम् ॥ ३३ ॥

महारथी सुशर्माके रथहीन होनेपर पकडे जानेसे उसकी सब सेना भयसे व्याकुल होकर भाग गई ॥ ३३ ॥

निवर्त्य गास्ततः सर्वाः पाण्डुपुत्रा महाबलाः।
अवजित्य सुशर्माणं धनं चादाय सर्वशः ॥ ३४ ॥

महाबली पाण्डवोंने सब गायें छीन लीं और उनका सब धन लूट लिया तथा सुशर्माको पकड लिया ॥ ३४ ॥

स्वबाहुबलसंपन्ना ह्रीनिषेधा यतव्रताः।
संग्रामशिरसो मध्ये तां रात्रिं सुखिनोऽवसन् ॥ ३५ ॥

मुख्य युद्धभूमिके मध्यभागमें बाहुबल लज्जा और व्रतसे सम्पन्न पाण्डवलोग उस रात्रिको सुखसे रहे ॥ ३५ ॥

ततो विराटः कौन्तेयानतिमानुषविक्रमान्।
अर्चयामास वित्तेन मानेन च महारथान् ॥ ३६ ॥

राजा विराटने अमानुष पराक्रम करनेवाले महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवोंका मान और धनसे सत्कार किया ॥ ३६ ॥

विराट उवाच

यथैव मम रत्नानि युष्माकं तानि वै तथा।
कार्यं कुरुत तैः सर्वे यथाकामं यथासुखम् ॥ ३७ ॥

विराट बोले– जो कुछ हमारे रत्न हैं वे सब आप ही लोगोंके हैं। इसलिये आप लोग अपनी अपनी इच्छानुसार राज्यके काम कीजिए और सुख भोगिये ॥ ३७ ॥

ददान्यलंकृताः कन्या वसूनि विविधानि च।
मनसश्चाप्यभिप्रेतं यद्वः शत्रुनिबर्हणाः ॥ ३८ ॥

मैं आप लोगोंको भूषणोंके सहित अनेक कन्यायें देता हूं और अनेक प्रकारके धन तथा जो कुछ और चाहेंगे वह भी वह दूंगा। आप लोग युद्धमें सब शत्रुओंका नाश करनेवाले महा बलवान् हैं ॥ ३८ ॥

युष्माकं विक्रमादद्य मुक्तोऽहं स्वस्तिमानिह।
तस्माद्भवन्तो मत्स्यानामीश्वराः सर्व एव हि ॥ ३९ ॥

मैं आप लोगोंके पराक्रमसे ही आज शत्रुके हाथसे छूटकर सुखी हो सका हूं, इसलिये आप ही सब इस मत्स्य देशके राजा हैं ॥ ३९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तथाभिवादिनं मत्स्यं कौरवेयाः पृथक् पृथक् ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ४० ॥

वैशम्पायन बोले– राजा विराटके ऐसे वचन सुनकर युधिष्ठिरादि पाण्डव पृथक् पृथक् रूपसे हाथ जोडकर बोले ॥ ४० ॥

प्रतिनन्दाम ते वाक्यं सर्वं चैव विशां पते ।
एतेनैव प्रतीताः स्मो यत्त्वं मुक्तोऽद्य शत्रुभिः ॥ ४१ ॥

हे महाराज! आप जो कुछ कहते हैं, वह सब सत्य है । हम लोग आपके वचनकी प्रशंसा करते हैं । हे पृथ्वीनाथ ! आप शत्रुओंके हाथसे छूट गये, इसीसे हमको सब कुछ प्राप्त हो गया, हम बडे प्रसन्न हैं ॥ ४१ ॥

अथाब्रवीत्प्रीतमना मत्स्यराजो युधिष्ठिरम् ।
पुनरेव महाबाहुर्विराटो राजसत्तमः ।
एहि त्वामभिषेक्ष्यामि मत्स्यराजोऽस्तु नो भवान् ॥ ४२ ॥

पाण्डवोंके ऐसे वचन सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ महाबाहु मत्स्यराज विराट प्रसन्न होकर युधिष्ठिरसे फिर बोले– आप हमारे पास आइए, मैं आपका अभिषेक करूंगा । आप हमारे इस मत्स्यदेशके राजा बनिए ॥ ४२ ॥

मनसश्चाप्यभिप्रेतं यत्ते शत्रुनिबर्हण ।
तत्तेऽहं संप्रदास्यामि सर्वमर्हति नो भवान् ॥ ४३ ॥

इसके अलावा, हे शत्रुनाशी! आपकी और भी जो मनोकामनायें हों । उन्हें भी पूरा करूंगा, क्योंकि आप इन सबको प्राप्त करनेके अधिकारी हैं ॥ ४३ ॥

रत्नानि गाः सुवर्णं च मणिमुक्तमथापि वा ।
वैयाघ्रपद्य विप्रेन्द्र सर्वथैव नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥

रत्न, गौ, सुवर्ण, अथवा मणि, मुक्ता और भी अनेक वस्तु जो हमारे पास हैं, सब आपहीकी हैं। हे वैयाघ्रपदगोत्रोत्पन्न ! हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥४४॥

त्वत्कृते ह्यद्य पश्यामि राज्यमात्मानमेव च ।
यतश्च जातसंरम्भः स च शत्रुवशं गतः ॥ ४५ ॥

मैं आज अपना राज्य और स्वयंको भी आपका हुआ ही देख रहा हूं, क्योंकि युद्धके प्रारंभ होनेपर सब कुछ शत्रुके अधिकारमें चला गया था, पर आपके कारण छूट गया ॥ ४५ ॥

ततो युधिष्ठिरो मत्स्यं पुनरेवाभ्यऽभाषत ।
प्रतिनन्दामि ते वाक्यं मनोज्ञं मत्स्य भाषसे ॥ ४६ ॥

ऐसे वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिरने राजा विराटसे पुनः कहा– हे राजन् ! हम आपके उत्तम वचनोंसे बडे प्रसन्न हैं । मत्स्यराट् ! आप बडी सुन्दर बात कह रहे हैं ॥ ४६ ॥

आनृशंस्यपरो नित्यं सुसुखः सततं भव ।
गच्छन्तु दूतास्त्वरितं नगरं तव पार्थिव ।
सुहृदां प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥ ४७ ॥

अब आपके दूत इस प्रिय समाचारको आपके प्रियजनोंको सुनानेके लिए शीघ्र ही नगरमें जायें, और नगरमें जाकर आपके विजयकी घोषणा करें ॥ ४७ ॥

ततस्तद्वचनान्मत्स्यो दूतान्राजा समादिशत् ।
आचक्षध्वं पुरं गत्वा संग्रामे विजयं मम ॥ ४८ ॥

तब राजा विराटने युधिष्ठिरके वचनानुसार दूतोंको आज्ञा दी कि तुम लोग नगरमें जाकर मेरे विजयका समाचार कह दो ॥ ४८ ॥

कुमाराः समलंकृत्य पर्यागच्छन्तु मे पुरात् ।
वादित्राणि च सर्वाणि गणिकाश्च स्वलंकृताः ॥ ४९ ॥

कुमारगण सब आभूषण पहन कर नगरसे मेरे पास आवें, अनेक प्रकारके बाजे बजें और वैश्यायें आभूषणोंसे सजधज जायें ॥ ४९ ॥

ते गत्वा केवलां रात्रिमथ सूर्योदयं प्रति ।
विराटस्य पुराभ्याशे दूता जयमघोषयन् ॥ ५० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ८५७ ॥

वे दूत केवल एक रात्रि बिताकर सूर्योदयके करीब विराट नगरके पास जा पहुंचे और वहां पहुंचकर उन्होंने विराटके बिजयकी घोषणा की ॥ ५० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥ ८५७ ॥

: ३३ :

वैशम्पायन उवाच

याते त्रिगर्तं मत्स्ये तु पशूंस्तान्स्वान्परीप्सति ।
दुर्योधनः सहामात्यो विराटमुपयादथ ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! मत्स्यराज पशुओंको छुडानेके लिये त्रिगर्तपर आक्रमण करनेके लिए गए, उसी दिन दुर्योधन अपने मंत्रियोंके साथ विराटनगर पर आक्रमण कर बैठा ॥ १ ॥

भीष्मो द्रोणश्च कर्णश्च कृपश्च परमास्त्रवित् ।
द्रौणिश्च सौबलश्चैव तथा दुःशासनः प्रभुः ॥ २ ॥

भीष्म और द्रोणाचार्य, और कर्ण, शस्त्रविद्याके जाननेवाले कृपाचार्य, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा सुबलपुत्र शकुनि, सामर्थ्यशाली दुःशासन ॥ २ ॥

विविंशतिर्विकर्णश्च चित्रसेनश्च वीर्यवान् ।
दुर्मुखो दुःसहश्चैव ये चैवाऽन्ये महारथाः ॥ ३ ॥

विविंशति, विकर्ण, बलवान् चित्रसेन, दुर्मुख और दुःशल तथा दूसरे भी महारथी दुर्योधनके साथ गए ॥ ३ ॥

एते मत्स्यानुपागम्य विराटस्य महीपतेः ।
घोषान्विद्राव्य तरसा गोधनं जव्हुरोजसा ॥ ४ ॥

उन्होंने मत्स्यदेशमें पहुंकर राजा विराटके गोपालोंको भगाकर जबर्दस्तीसे सारी गौओंको छीन लिया ॥ ४ ॥

षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते ।
महता रथवंशेन परिवार्य समन्ततः ॥ ५ ॥

विशाल रथसेनासे चारों ओरसे घेरा डालकर कौरव साठ हजार गायोंको भगा ले गए ॥५॥

गोपालानां तु घोषेषु हन्यतां तैर्महारथैः ।
आरावः सुमहानासीत्संप्रहारे भयंकरे ॥ ६ ॥

उस भयंकर युद्धके शुरु होने पर उन महारथियोंके द्वारा पीटे जाते हुए गोपालोंकी चिल्लाहटोंका बडा भारी शोर हुआ ॥ ६ ॥

गवाध्यक्षस्तु संत्रस्तो रथमास्थाय सत्वरः ।
जगाम नगरायैव परिक्रोशंस्तदार्तवत् ॥ ७ ॥

अन्तमें ग्वालोंका स्वामी भयसे व्याकुल हो और रथपर चढकर दुःखितकी भांति रोता हुआ नगरकी ओर भाग गया ॥ ७ ॥

स प्रविश्य पुरं राज्ञो नृपवेश्माभ्ययात्ततः।
अवतीर्य रथात्तूर्णमाख्यातुं प्रविवेश ह ॥ ८ ॥

वह विराटनगरमें प्रविष्ट होकर राजमहलके पास गया और वहां जाकर वह रथसे शीघ्र उतरा और राजासे सब समाचार कहनेके लिए राजमहलमें घुसा ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा भूमिंजयं नाम पुत्रं मत्स्यस्य मानिनम्।
तस्मै तत्सर्वमाचष्ट राष्ट्रस्य पशुकर्षणम् ॥ ९ ॥

वहां भूमिंजय नामक मत्स्यराजके अभिमानी पुत्रको देखकर उसने उससे शत्रुओंके द्वारा गायोंके अपहरणकी सब कथा कह सुनाई ॥ ९ ॥

षष्टिं गवां सहस्राणि कुरवः कालयन्ति ते।
तद्विजेतुं समुत्तिष्ठ गोधनं राष्ट्रवर्धनम् ॥ १० ॥

हे वीर! कौरव लोग आपकी साठ हजार गायें लिये जाते हैं, इसलिये आप शीघ्रही उनसे राष्ट्रको समृद्ध करनेवाली गौओंको जीतनेके लिये उठ खडे हो जाइये ॥ १० ॥

राजपुत्र हितप्रेप्सुः क्षिप्रं निर्याहि वै स्वयम्।
त्वां हि मत्स्यो महीपालः शून्यपालमिहाकरोत् ॥ ११ ॥

हे राजपुत्र! अपने हितके लिये आप स्वयं शीघ्र निकलें। राजा विराटने आपको ही इस शून्य नगरीका राजा बनाया है ॥ ११ ॥

त्वया परिषदो मध्ये श्लाघते स नराधिपः।
पुत्रो ममानुरूपश्च शूरश्चेति कुलोद्वहः ॥ १२ ॥

राजा विराट प्रायः सभामें आपकी प्रशंसा किया करते हैं कि मेरा पुत्र मेरे समान बलवान्, शूर और कुलदीपक है ॥ १२ ॥

इष्वस्त्रे निपुणो योधः सदा वीरश्च मे सुतः।
तस्य तत्सत्यमेवास्तु मनुष्येन्द्रस्य भाषितम् ॥ १३ ॥

मेरा पुत्र सब शस्त्रविद्यामें चतुर, योद्धाओंमें श्रेष्ठ और महावीर है। अब आप राजा विराटके वचनको सत्य कीजिये ॥ १३ ॥

आवर्तय कुरूञ्जित्वा पशून्पशुमतां वर।
निर्दहैषामनीकानि भीमेन शरतेजसा ॥ १४ ॥

हे पशुओंको रखनेवालोंमें श्रेष्ठ! आप गौओंको छुडा लीजिये। इनकी सेनाको अपने भयंकर बाणरूपी अग्निसे जला डालिये ॥ १४ ॥

धनुश्च्युतै रुक्मपुंखैः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
द्विषतां भिन्ध्यनीकानि गजानामिव यूथपः ॥ १५ ॥

धनुषसे छूटे, सोनेके पंखवाले, झुके हुए नोकोंवाले बाणोंसे उनकी सेनाको उसीप्रकार छिन्न-भिन्न कर दीजिये, जैसे हाथियोंका राजा झुण्डको तितर बितर कर देता है ॥ १५ ॥

पाशोपधानां ज्यातंत्रीं चापदण्डां महास्वनाम् ।
शरवर्णां धनुर्वीणां शत्रुमध्ये प्रवादय ॥ १६ ॥

आप युद्धमें जाकर, डोरी लगानेके दो सिरे जिसके तारकी खूंटियां हैं, डोरी जिसका तार है, धनुषकी लकडी जिसका दण्डरूप है, जिसका शब्द महान् है तथा शर जिसके शब्दवर्ण हैं, ऐसी धनुषरूपवीणाको शत्रुओंके बीचमें बजाइये ॥ १६ ॥

श्वेता रजतसंकाशा रथे युज्यन्तु ते हयाः ।
ध्वजं च सिंहं सौवर्णमुच्छ्रयन्तु तवाभिभोः ॥ १७ ॥

हे राजन् ! आपके रथमें इसी समय चांदीके समान स्वच्छ वर्णवाले घोडे जोडे जायें, रथपर ऊंची सोनेके दण्डवाली सिंहाकार ध्वजा फडके ॥ १७ ॥

रुक्मपुंखाः प्रसन्नाग्रा मुक्ता हस्तवता त्वया ।
छादयन्तु शराः सूर्यं राज्ञामायुर्निरोधिनः ॥ १८ ॥

उत्तम हाथोंवाले आपके द्वारा छोडे गए, राजाओंकी आयुको क्षीण करनेवाले और सोनेके पंखवाले तीक्ष्णग्राभागवाले बाण सूर्यको ढक लें ॥ १८ ॥

रणे जित्वा कुरून्सर्वान्वज्रपाणिरिवासुरान् ।
यशो महादवाप्य त्वं प्रविशेदं पुरं पुनः ॥ १९ ॥

आप युद्धमें कौरवोंको इस प्रकार जीतिये जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवोंको जीतते हैं । तब महान् यशको प्राप्त करके इस नगरमें प्रवेश कीजिएगा ॥ १९ ॥

त्वं हि राष्ट्रस्य परमा गतिर्मत्स्यपतेः सुतः ।
गतिमन्तो भवन्त्वद्य सर्वे विषयवासिनः ॥ २० ॥

मत्स्यराज विराटके पुत्रके रूपमें आप ही इस राष्ट्रकी परम गति हैं । आपके राष्ट्रमें रहने वाली हम सब प्रजायें आपके कारण सनाथ हुईं ॥ २० ॥

स्त्रीमध्य उक्तस्तेनासौ तद्वाक्यमभयंकरम्।
अन्तःपुरे श्लाघमान इदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ८७८ ॥

इस उत्साहसे भरे हुए वचनको सुनकर अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीचमें बैठ कर श्लाघा करते हुए विराटपुत्र उत्तर इसप्रकार बोला ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥ ८७८ ॥

: ३४ :

उत्तर उवाच

अद्याहमनुगच्छेयं दृढधन्वा गवां पदम्।
यदि मे सारथिः कश्चिद्भवेदश्वेषु कोविदः ॥ १ ॥

उत्तर बोला— यदि कोई अश्वविद्यामें प्रवीण सारथि मुझे मिले तो मैं इसीसमय दृढ धनुष लेकर गौओंको खोजनेके लिये चला जाऊं ॥ १ ॥

तमेव नाधिगच्छामि यो मे यन्ता भवेन्नरः।
पश्यध्वं सारथिं क्षिप्रं मम युक्तं प्रयास्यतः ॥ २ ॥

जो मनुष्य मेरे घोडेका नियमन करनेवाला हो, ऐसे मनुष्यको ही मैं पा नहीं रहा हूं, इसलिए युद्ध करनेके लिए जाते हुए मेरे लायक कोई सारथि हो, तो शीघ्र ही ढूंढ लाओ ॥ २ ॥

अष्टाविंशतिरात्रं वा मासं वा नूनमन्ततः।
यत्तदासीन्महद्युद्धं तत्र मे सारथिर्हतः ॥ ३ ॥

जो महान् युद्ध एक महीना या अठ्ठाइस दिनतक चला था, उसमें मेरा सारथी मारा गया ॥ ३ ॥

स लभेयं यदि त्वन्यं हययानविदं नरम्।
त्वरावानद्य यात्वाहं समुच्छ्रितमहाध्वजम् ॥ ४ ॥
विगाह्य तत्परानीकं गजवाजिरथाकुलम्।
शस्त्रप्रतापनिर्वीर्यान्कुरूञ्जित्वाऽनये पशून् ॥ ५ ॥

यदि मैं घोडोंकी विद्या जाननेवाले अन्य सारथीको पा जाऊं, तो इसी समय शीघ्रतासे उडती हुइ ऊंची पताका, रथ, हाथी और घोडोंसे भरी हुई कौरवोंकी सेनामें घुसकर अपने बाणोंके प्रतापसे कौरवोंको वीर्यहीन बनाकर उनसे पशुओंको छीन लाऊं ॥ ४–५ ॥

दुर्योधनं शान्तनवं कर्णं वैकर्तनं कृपम् ।
द्रोणं च सह पुत्रेण महेष्वासान्समागतान् ॥ ६ ॥
वित्रासयित्वा संग्रामे दानवानिव वज्रभृत् ।
अनेनैव मुहूर्तेन पुनः प्रत्यानये पशून् ॥ ७ ॥

मैं युद्धमें आए हुए महाधनुर्धारी दुर्योधन शान्तनुपुत्र, वैकर्तन भीष्म कर्ण, कृपाचार्य और पुत्रसहित द्रोण आदि महावीरोंको, जिस प्रकार वज्रधारी इन्द्र दानवोंको डराते हैं, उसी प्रकार डराकर एक मुहूर्तके अन्दर ही गौओंको छीन लाऊंगा ॥ ६-७ ॥

शून्यमासाद्य कुरवः प्रयान्त्यादाय गोधनम् ।
किं नु शक्यं मया कर्तुं यदहं तत्र नाभवम् ॥ ८ ॥

गौओंकी जगहको शून्य देखकर कौरव हमारी गौओंको छीनकर लिए जाते हैं। उस समय मैं वहां नहीं था, तो उसके लिये मैं क्या करूं ? ॥ ८ ॥

पश्येयुरद्य मे वीर्यं कुरवस्ते समागताः ।
किं नु पार्थोऽर्जुनः साक्षादयमस्मान्प्रबाधते ॥ ९ ॥

आज आये हुए वे सब कौरव मेरे पराक्रमको देखें। उन्हें ऐसा प्रतीत होगा कि कहीं साक्षात् अर्जुन ही तो कहीं हमारे साथ युद्ध नहीं कर रहा है ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद्वचनं स्त्रीषु भाषतः स्म पुनः पुनः ।
नामर्षयत पाञ्चाली बीभत्सोः परिकीर्तनम् ॥ १० ॥

वैशम्पायन बोले– उत्तरको उन स्त्रियोंमें इस प्रकार बार बार अर्जुनका नाम लेकर बडबड करते हुए देखकर द्रौपदी उसके उन वचनोंको सह न सकी ॥ १० ॥

अथैनमुपसंगम्य स्त्रीमध्यात्सा तपस्विनी ।
व्रीडमानेव शनकैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥

तब तपस्विनी द्रौपदी स्त्रियोंके बीचसे उठी और उत्तरके पास जाकर लज्जासहित धीरे धीरे यह बात कहने लगी ॥ ११ ॥

योऽसौ बृहद्वारणाभो युवा सुप्रियदर्शनः ।
बृहन्नडेति विख्यातः पार्थस्यासीत्स सारथिः ॥ १२ ॥

यह जो बडे हाथीके समान डीलडौलवाला, सुन्दर और युवा बृहन्नडाके नामसे विख्यात है, यह अर्जुनका सारथी था ॥ १२ ॥

धनुष्यनवरश्चासीत्तस्य शिष्यो महात्मनः।
दृष्टपूर्वो मया वीर चरन्त्या पाण्डवान्प्रति ॥ १३ ॥

हे वीर! यह धनुर्वेदमें महात्मा अर्जुनका अद्वितीय शिष्य भी था, मैं जब पाण्डवोंके घरमें रहती थी, तब इसको मैंने देखा था ॥ १३ ॥

यदा तत्पावको दावमदहत्खाण्डवं महत्।
अर्जुनस्य तदानेन संगृहीता हयोत्तमाः ॥ १४ ॥

जब अग्निने महान् खाण्डव वनको जलाया था, तब इसीने अर्जुनके घोडोंके लगाम पकडे थे ॥ १४ ॥

तेन सारथिना पार्थः सर्वभूतानि सर्वशः।
अजयत्खाण्डवप्रस्थे न हि यन्तास्ति तादृशः ॥ १५ ॥

इसी सारथिकी सहायतासे अर्जुनने खाण्डव वनमें सब प्राणियोंको जीता था। जगत्में इस बृहन्नडाके समान सारथ्य कर्म करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥ १५ ॥

येयं कुमारी सुश्रोणी भगिनी ते यवीयसी।
अस्याः स वचनं वीर करिष्यति न संशयः ॥ १६ ॥

हे वीर! उत्तम जांघोंवाली तुम्हारी जो यह छोटी बहिन है, इसीको उसके पास भेज दो वह इसके वचनको अवश्य मानेगा, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १६ ॥

यदि वै सारथिः स स्यात्कुरून्सर्वानसंशयम्।
जित्वा गाश्च समादाय ध्रुवमागमनं भवेत् ॥ १७ ॥

यदि बृहन्नडा तुम्हारा सारथी बन जाये, तो निस्सन्देह तुम सब कौरवोंको जीतकर और गायें लेकर लौट आओगे ॥ १७ ॥

एवमुक्तः स सैरन्ध्र्या भगिनीं प्रत्यभाषत।
गच्छ त्वमनवद्याङ्गि तामानय बृहन्नडाम् ॥ १८ ॥

द्रौपदीके ऐसे वचन सुन उत्तर अपनी बहिनसे बोला– हे अनिन्दित अंगोंवाली! तुम शीघ्र बृहन्नडाके पास जाकर उसे बुला लाओ ॥ १८ ॥

सा भ्रात्रा प्रेषिता शीघ्रमगच्छन्नर्तनागृहम्।
यत्रास्ते स महाबाहुश्छन्नः सत्रेण पाण्डवः ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ८९७ ॥

अपने भाईके द्वारा भेजी गई उत्तरा शीघ्र ही उस नर्तनागारमें गई, जहां वह महाबाहु अर्जुन छिपकर रहते थे ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥ ८९७ ॥

३५

वैशम्पायन उवाच

स तां दृष्ट्वा विशालाक्षीं राजपुत्रीं सखीं सखा ।
प्रहसन्नब्रवीद्राजन्कुत्रागमनमित्युत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् ! उस विशालनयनोंवाली अपनी सखी राजपुत्रीको आया हुआ देखकर हंसते हुए अर्जुनने पूछा– तुम क्यों आई हो ? ॥ १ ॥

तमब्रवीद्राजपुत्री समुपेत्य नरर्षभम् ।
प्रणयं भावयन्ती स्म सखीमध्य इदं वचः ॥ २ ॥

तब पुरुषसिंह अर्जुनके पास जाकर वह राजपुत्री प्रेमको दर्शाती हुई सखियोंके मध्यमें यह वचन बोली ॥ २ ॥

गावो राष्ट्रस्य कुरुभिः काल्यन्ते नो बृहन्नडे ।
तान्विजेतुं मम भ्राता प्रयास्यति धनुर्धरः ॥ ३ ॥

हे बृहन्नडे ! कौरव लोग हमारे राष्ट्रके पशुओंको लिये जा रहे हैं, उन गौओंको उनसे जीतकर लानेके लिये धनुर्धारी मेरा भाई उत्तर जाना चाहता है ॥ ३ ॥

नचिरं च हतस्तस्य संग्रामे रथसारथिः ।
तेन नास्ति समः सूतो योऽस्य सारथ्यमाचरेत् ॥ ४ ॥

अधिक समय नहीं हुआ कि उसका सारथी युद्धमें मारा गया है, इसलिये उस जैसा उत्तम सारथ्य करनेवाला कोई नहीं है जो मेरे भाईका साराथि बन सके ॥ ४ ॥

तस्मै प्रयतमानाय सारथ्यर्थे बृहन्नडे ।
आचचक्षे हयज्ञाने सैरन्ध्री कौशलं तव ॥ ५ ॥

अतः, हे बृहन्नडे ! वह सारथ्यकर्ममें निपुण सारथीको प्राप्त करनेका यत्न कर रहा था, तो उसके सामने सैरन्ध्रीने अश्वविद्यामें तुम्हारी निपुणताकी बहुत प्रशंसा की ॥ ५ ॥

सा सारथ्यं मम भ्रातुः कुरु साधु बृहन्नडे ।
पुरा दूरतरं गावो ह्रियन्ते कुरुभिर्हि नः ॥ ६ ॥

हे बृहन्नडे ! तुम अब मेरे भाईका सारथ्य करो; नहीं तो कौरव लोग हमारी गौओंको लेकर बहुत दूर निकल जायेंगे ॥ ६ ॥

अथैतद्वचनं मेऽद्य नियुक्ता न करिष्यसि ।
प्रणयादुच्यमानां त्वं परित्यक्ष्यामि जीवितम् ॥ ७ ॥

अतः यदि तुम मेरे द्वारा प्रेमपूर्वक कहे गए इस वचनको नहीं मानोगी, तो मैं अपने जीवनको त्याग दूंगी ॥ ७ ॥

एवमुक्तस्तु सुश्रोण्या तया सख्या परंतपः ।
जगाम राजपुत्रस्य सकाशममितौजसः ॥ ८ ॥

सुन्दर अंगवाली तथा सखी राजपुत्रीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर शत्रुनाशक अर्जुन महातेजस्वी राजपुत्रके पास आये ॥ ८ ॥

तं सा व्रजन्त त्वरितं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
अन्वगच्छद्विशालाक्षी शिशुर्गजवधूरिव ॥ ९ ॥

वह विशालयनोंवाली राजपुत्री भी मतवाले हाथीकी चालसे चलनेवाले उस अर्जुनके पीछे इस प्रकार चली कि जैसे कोई हथिनी अपने बच्चेके पीछे जाती है ॥ ९ ॥

दूरादेव तु तं प्रेक्ष्य राजपुत्रोऽभ्यभाषत ।
त्वया सारथिना पार्थः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत् ॥ १० ॥

उसको दूरसे ही देखकर राजपुत्र उत्तर बोला– हे बृहन्नडे ! तुम्हींको सारथी बनाकर अर्जुनने खाण्डव वनमें अग्निको तृप्त किया था ॥ १० ॥

पृथिवीमजयत्कृत्स्नां कुन्तीपुत्रो धनंजयः ।
सैरन्ध्री त्वां समाचष्ट सा हि जानाति पाण्डवान् ॥ ११ ॥

तुम्हारी सहायतासे अर्जुनने सब पृथ्वीको जीता था । हमसे वह सब समाचार सैरन्ध्रीने कहा है, क्योंकि वह पाण्डवोंको जानती है ॥ ११ ॥

संयच्छ मामकानश्वांस्तथैव त्वं बृहन्नडे ।
कुरुभिर्योत्स्यमानस्य गोधनानि परीप्सतः ॥ १२ ॥

इसलिये, हे बृहन्नडे ! कौरवोंसे युद्ध करके गोधनको छुडाकर लानेकी इच्छा करनेवाले मेरे घोडोंकी लगामको भी तुम उसी प्रकार पकडो ॥ १२ ॥

अर्जुनस्य किलासीस्त्वं सारथिर्दयितः पुरा ।
त्वयाजयत्सहायेन पृथिवीं पाण्डवर्षभः ॥ १३ ॥

तुम प्राचीन समयमें अर्जुनके प्यारे सारथी थे, तुम्हारी ही सहायतासे पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सब पृथ्वीको जीता था ॥ १३ ॥

एवमुक्ता प्रत्युवाच राजपुत्रं बृहन्नडा ।
का शक्तिर्मम सारथ्यं कर्तुं संग्राममूर्धनि ॥ १४ ॥
गीतं वा यदि वा नृत्तं वादित्रं वा पृथग्विधम् ।
तत्करिष्यामि भद्रं ते सारथ्यं तु कुतो मयि ॥ १५ ॥

इस प्रकार कहे जानेपर बृहन्नडा राजपुत्रीसे बोली– इस महान् संग्राममें तुम्हारा सारथ्य करनेकी शक्ति मुझमें कहां है ? तुम्हारा कल्याण हो । नाचना हो गाना हो या बाजे बजाने हों तो वह काम मैं कर सकता हूँ, पर सारथि बननेकी शक्ति मुझमें कहां ? ॥ १४–१५ ॥

उत्तर उवाच

बृहन्नडे गायनो वा नर्तनो वा पुनर्भव।
क्षिप्रं मे रथमास्थाय निगृह्णीष्व हयोत्तमान् ॥ १६ ॥

उत्तर बोला– हे बृहन्नडे ! चाहे तुम नाचनेवाले हो, चाहे गानेवाले हो। मेरे रथपर शीघ्रतासे चढ जाओ, और मेरे उत्तम घोडोंकी बागडोर थाम लो ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच

स तत्र नर्मसंयुक्तमकरोत्पाण्डवो बहु।
उत्तरायाः प्रमुखतः सर्वं जानन्नरिंदम ॥ १७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे शत्रुनाशी ! यद्यपि अर्जुन सब विद्याओंको जानते थे, तथापि उत्तराके आगे अनेक प्रकारके बहाने बनाने लगे ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य कवचं शरीरे प्रत्यमुञ्चत।
कुमार्यस्तत्र तं दृष्ट्वा प्राहसन्पृथुलोचनाः ॥ १८ ॥

वह उत्तरके दिये कवचको उलटा करके पहनने लगे। तब विशाल नयनोंवाली कन्यायें उन्हें इस प्रकार करता देखकर हंसने लगीं ॥ १८ ॥

स तु दृष्ट्वा विमुह्यन्तं स्वयमेवोत्तरस्ततः।
कवचेन महार्हेण समनह्यद्बृहन्नडाम् ॥ १९ ॥

उस समय अर्जुनको विमुग्ध हुआ देख उत्तरने अपने हाथसे बृहन्नडाको बहुमूल्य कवच पहनाया ॥ १९ ॥

स बिभ्रत्कवचं चाग्र्यं स्वयमप्यंशुमत्प्रभम्।
ध्वजं च सिंहमुच्छ्रित्य सारथ्ये समकल्पयत् ॥ २० ॥

और स्वयंने भी उत्तम सूर्यके समान प्रकाशमान श्रेष्ठ कवच पहना और सिंहचिन्हित ध्वजाको रथपर चढाकर अर्जुनको सारथी बनाया ॥ २० ॥

धनूंषि च महार्हाणि बाणांश्च रुचिरान्बहून्।
आदाय प्रययौ वीरः स बृहन्नडसारथिः ॥ २१ ॥

तदनन्तर रथमें उत्तम धनुष और बहुतसे सुन्दर बाणोंको रखकर बृहन्नडाको सारथी बनाकर वह वीर चलने लगा ॥ २१ ॥

अथोत्तरा च कन्याश्च सख्यस्ताः प्राब्रुवंस्तदा ।
बृहन्नडे आनयेथा वासांसि रुचिराणि नः ॥ २२ ॥
पाञ्चालिकार्थं सूक्ष्माणि चित्राणि विविधानि ।
विजित्य संग्रामगतान्भीष्मद्रोणमुखान्कुरून् ॥ २३ ॥

चलते समय उत्तरा, उसकी सखियाँ और अन्य राजकन्यायें कहने लगीं, हे बृहन्नडे ! तुम संग्राममें भीष्म द्रोण आदि कौरवोंको जीतकर हमारी गुडियोंके लिये सुन्दर सुन्दर बारीक कोमल वस्त्र लेते आना ॥ २२–२३ ॥

अथ ता ब्रुवतीः कन्याः सहिताः पांडुनन्दनः ।
प्रत्युवाच हसन्पार्थो मेघदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २४ ॥

तब ऐसे वचन कहती हुई कन्याओंसे पाण्डुपुत्र अर्जुन मेघ और नगारेके समान वाणीसे हंसते हुए बोले ॥ २४ ॥

यद्युत्तरोऽयं संग्रामे विजेष्यति महारथान् ।
अथाहरिष्ये वासांसि दिव्यानि रुचिराणि च ॥ २५ ॥

यदि ये राजपुत्र उत्तर युद्धमें महारथी कौरवोंको जीतेंगे, तो मैं अवश्य दिव्य और सुन्दर वस्त्रोंको लेता आऊंगा ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा तु बीभत्सुस्ततः प्राचोदयद्रथान् ।
कुरूनभिमुखाञ्छूरो नानाध्वजपताकिनः ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ९२३ ॥

महावीर अर्जुनने ऐसा कहकर रथको उस ओर हांका जिधर पताकाओंसे भरी हुई कौरवोंकी सेना खडी थी ॥ २६ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३५ ॥ ९२३ ॥

: ३६ :

वैशंपायन उवाच

स राजधान्या निर्याय वैराटिः पृथिवींजयः ।
प्रयाहीत्यब्रवीत्सूतं यत्र ते कुरवो गताः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजा जनमेजय ! पृथिवीको जीतनेवाला वह विराटराजका पुत्र उत्तर राजधानीसे निकलकर अपने सारथीसे बोला– हे सूत ! जिधर कौरवोंकी सेना है उधरहीको हमारा रथ ले चलो ॥ १ ॥

समवेतान्कुरून्याबज्जिगीषूनवजित्य वै।
गाश्चैषां क्षिप्रमादाय पुनरायामि स्वं पुरम् ॥ २ ॥

ताकि जीतनेकी अभिलाषासे एकत्रित हुए इन सब कौरवोंको जीतकर और उनसे गौओंको छीनकर मैं शीघ्र ही अपने नगरको लौट आऊं ॥ २ ॥

ततस्तांश्चोदयामास सदश्वान्पाण्डुनन्दनः।
ते हया नरसिंहेन चोदिता वातरंहसः।
आलिखन्त इवाकाशमूहुः काञ्चनमालिनः ॥ ३ ॥

तब पाण्डुपुत्र अर्जुनने उन उत्तम घोडोंको वेगसे हांका। पुरुषसिंह अर्जुनके हांकनेसे वायुके समान वेगवाले और सोनेकी मालाओंको धारण किए वे घोडे इस प्रकार वेगसे चले मानो आकाशको भी फाड डालेंगे ॥ ३ ॥

नातिदूरमथो यात्वा मत्स्यपुत्रधनंजयौ।
अवेक्षेताममित्रघ्नौ कुरूणां बलिनां बलम्।
श्मशानमभितो गत्वा आससाद कुरूनथ ॥ ४ ॥

तब कुछ ही दूर जाकर शत्रुओंके मारनेवाले उत्तर और अर्जुनने बलशाली कौरवोंकी सेना देखी। श्मशानके समीपसे होकर वे कौरवोंके पास पहुंच गये ॥ ४ ॥

तदनीकं महत्तेषां विबभौ सागरस्वनम्।
सर्पमाणमिवाकाशे वनं बहुलपादपम् ॥ ५ ॥

उस समय कौरवोंकी सेना गरजते हुए समुद्रकी भांति दिखाई दे रही थी और ऊपरकी ओर आकाशमें (चलते हुए झण्डोंसे) चलते हुए घने वृक्षोंवाले वनकी भांति शोभा दे रही थी ॥ ५ ॥

ददृशे पार्थिवो रेणुर्जनितस्तेन सर्पता।
दृष्टिप्रणाशो भूतानां दिवस्पृङ्नरसत्तम ॥ ६ ॥

अर्जुनने आकाशमें उस सेनाके कारण उठी हुई उडती धूलको देखा। हे नरश्रेष्ठ जनमेजय! वह धूल आकाशतक छा गई थी, जिससे किसीको कुछ भी नहीं दिखाई पडता था ॥ ६ ॥

तदनीकं महद्दृष्ट्वा गजाश्वरथसंकुलम् ।
कर्णदुर्योधनकृपैर्गुप्तं शान्तनवेन च ॥ ७ ॥
द्रोणेन च सपुत्रेण महेष्वासेन धीमता ।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः पार्थं वैराटिरब्रवीत् ॥ ८ ॥

कर्ण, दुर्योधन, कृपाचार्य और शन्तनुपुत्र भीष्म तथा अश्वत्थामासहित महाधनुर्धारी तथा बुद्धिमान् द्रोणसे रक्षित और हाथी, घोडे एवं रथसे भरपूर उस विशाल सेनाको देखते ही भयके मारे उत्तरके रोम खडे हो गये, और वह अर्जुनसे कहने लगा ॥ ७-८ ॥

नोत्सहे कुरुभिर्योद्धुं रोमहर्षं हि पश्य मे ।
बहुप्रवीरमत्युग्रं देवैरपि दुरासदम् ।
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि कुरुसैन्यमनन्तकम् ॥ ९ ॥

हे सारथे ! मेरी शक्ति कौरवोंसे युद्ध करनेकी नहीं है । देखो, मेरे शरीरके सब रोवें खडे हो गये, इस सेनामें बडे बडे वीर विद्यमान हैं, जिनको देवता भी नहीं जीत सकते मैं कौरवोंकी इस महा सेनासे युद्ध नहीं कर सकता ॥ ९ ॥

नाशंसे भारतीं सेनां प्रवेष्टुं भीमकार्मुकाम् ।
रथनागाश्वकलिलां पत्तिध्वजसमाकुलाम् ।
दृष्ट्वैव हि परानाजावात्मा प्रव्यथतीव मे ॥ १० ॥

मैं घोर धनुष धारण करनेवाले इन कौरवोंकी सेनामें प्रवेश भी नहीं कर सकता यह सेना रथ, हाथी, घोडे, पदाति और ध्वजाओंसे पूरित है, इसलिये इस संग्रामभूमिमें शत्रुओंको देखते ही मेरा मन कांप रहा है ॥ १० ॥

यत्र द्रोणश्च भीष्मश्च कृपः कर्णो विविंशतिः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तोऽथ बाह्लिकः ॥ ११ ॥
दुर्योधनस्तथा वीरो राजा च रथिनां वरः ।
द्युतिमन्तो महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ १२ ॥

जहां साक्षात् द्रोणाचार्य, कुरुवृद्ध भीष्म, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाल्हिक और रथियामें श्रेष्ठ वीर राजा दुर्योधन आदि महातेजस्वी महाधनुर्धारी और युद्धविद्याके जाननेवाले उपस्थित हैं ॥ ११-१२ ॥

दृष्ट्वैव हि कुरूनेतान्व्यूढानीकान्प्रहारिणः ।
हृषितानि च रोमाणि कश्मलं चागतं मम ॥ १३ ॥

व्यूह बांधकर खडे हुए तथा प्रहार करनेवाले इन सब योद्धा कौरवोंको देखते ही मेरे रोंगटे खडे हो गये हैं और मुझे घबराहटसी आ गई है ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

अवियातो वियातस्य मौर्ख्याद्धूर्तस्य पश्यतः ।
परिदेवयते मन्दः सकाशे सव्यसाचिनः ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकार वह साहसी उत्तर कारण अपनी मूर्खताके कारण असाहसी और कपट वेश धारण करनेवाले धूर्त अर्जुनके सामने देखते देखते धीरे धीरे रोने लगा ॥ १४ ॥

त्रिगर्तान्मे पिता यातः शून्ये संप्रणिधाय माम् ।
सर्वां सेनामुपादाय न मे सन्तीह सैनिकाः ॥ १५ ॥

मुझे रिक्त नगरमें अकेला छोडकर मेरे पिता सारी सेना लेकर राजा सुशर्मासे युद्ध करने चले गये हैं, मेरे पास कोई सैनिक भी नहीं है ॥ १५ ॥

सोऽहमेको बहून्बालः कृतास्त्रानकृतश्रमः ।
प्रतियोद्धुं न शक्ष्यामि निवर्तस्व बृहन्नडे ॥ १६ ॥

अतः, अकेला तथा शस्त्रचलानेमें अकुशल बालक मैं इन अनेकों शस्त्रधारियोंसे युद्ध नहीं कर सकूंगा। इसलिये, हे बृहन्नडे ! नगरको लौट चलो ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच

भयेन दीनरूपोऽसि द्विषतां हर्षवर्धनः ।
न च तावत्कृतं किंचित्परैः कर्म रणाजिरे ॥ १७ ॥

अर्जुन बोले– हे राजपुत्र ! तुम भयसे ही इतने दीन रूपवाले हो गए हो । तुम्हारे इसतरह घबडानेसे शत्रु लोग प्रसन्न हो रहे हैं, और अभी तो युद्धभूमिमें शत्रुओंने कोई ऐसा भारी कर्म भी नहीं किया है कि जिससे तुम घबडा गये ॥ १७ ॥

स्वयमेव च मामात्थ वह मां कौरवान्प्रति ।
सोऽहं त्वां तत्र नेष्यामि यत्रैते बहुला ध्वजाः ॥ १८ ॥

तुमने स्वयं मुझसे कहा था कि मुझे कौरवोंकी सेनाकी ओर ले चलो । अतः मैं इस सेनाके बीचमें तुमको ले चलूंगा, जहाँ ये बहुतसी पताकायें हैं ॥ १८ ॥

मध्यमामिषगृध्राणां कुरूणामाततायिनाम् ।
नेष्यामि त्वां महाबाहो पृथिव्यामपि युध्यताम् ॥ १९ ॥

हे महाबाहो ! जिस प्रकार मांसके लोभी गिद्ध आकाशमें लडते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर लडनेवाले इन आततायी कौरवोंके बीचमें मैं तुम्हें ले चलूंगा ॥ १९ ॥

तथा स्त्रीषु प्रतिश्रुत्य पौरुषं पुरुषेषु च ।
कत्थमानोऽभिनिर्याय किमर्थं न युयुत्ससे ॥ २० ॥

घमण्ड करनेवाले तुम नगरमें स्त्रियोंके बीच शत्रु–विजयकी प्रतिज्ञा करके तथा पुरुषोंमें अपने पौरुषकी प्रशंसा करके आए हो, फिर अब युद्ध क्यों नहीं करना चाहते ? ॥ २० ॥

न चेद्विजित्य गास्तास्त्वं गृहान्वै प्रतियास्यसि ।
प्रहसिष्यन्ति वीर त्वां नरा नार्यश्च संगताः ॥ २१ ॥

हे वीर ! यदि तुम उन गायोंको बिना जीते ही नगरको लौट जाओगे, तो सब स्त्रिया और पुरुष मिलकर तुम पर हसेंगे ॥ २१ ॥

अहमप्यत्र सैरन्ध्र्या स्तुतः सारथ्यकर्मणि ।
न हि शक्ष्याम्यनिर्जित्य गाः प्रयातुं पुरं प्रति ॥ २२ ॥

सारथिके कार्यमें मेरी भी सैरन्ध्रीने बहुत प्रशंसा की है । इसलिए अब बिना गायोंको जीते नगरकी ओर मैं जा नहीं सकूंगा ॥ २२ ॥

स्तोत्रेण चैव सैरन्ध्र्यास्तव वाक्येन तेन च ।
कथं न युध्येयमहं कुरून्सर्वान्स्थिरो भव ॥ २३ ॥

सैरन्ध्रीके उन प्रशंसावचनों और तुम्हारे वचनके कारण मैं इन सब कौरवोंसे क्यों न युद्ध करूं ? अतः अब तुम स्थिर हो जाओ ॥ २३ ॥

उत्तर उवाच

कामं हरन्तु मत्स्यानां भूयांसं कुरवो धनम् ।
प्रहसन्तु च मां नार्यो नरा वापि बृहन्नडे ॥ २४ ॥

उत्तर बोला– हे बृहन्नडे ! कौरव अपनी इच्छानुसार भले ही मत्स्योंका सब धन ले जायें, चाहे मुझपर स्त्री और पुरुष हंसे ॥ २४ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा प्राद्रवद्भीतो रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली ।
त्यक्त्वा मानं स मन्दात्मा विसृज्य सशरं धनुः ॥ २५ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! यह कहकर कुण्डलोंको धारण करनेवाला मूर्ख राजपुत्र उत्तर डरकर, रथसे उतर कर, मान और बाणों समेत धनुषको वहीं छोडकर भाग निकला ॥ २५ ॥

बृहन्नलोवाच

नैष पूर्वैः स्मृतो धर्मः क्षत्रियस्य पलायनम् ।
श्रेयस्ते मरणं युद्धे न भीतस्य पलायनम् ॥ २६ ॥

बृहन्नडा बोली– हे राजपुत्र ! पूर्वजोंने युद्धसे भागना क्षत्रियोंका धर्म नहीं कहा है । युद्धमें मरना उत्तम है, परन्तु भयसे भागना अच्छा नहीं ॥ २६ ॥

वैशंपायन उवाच

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयः सोऽवप्लुत्य रथोत्तमात् ।
तमन्वधावद्धावन्तं राजपुत्रं धनंजयः ।
दीर्घां वेणीं विधुन्वानः साधु रक्ते च वाससी ॥ २७ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! यह कहकर तब कुन्तीपुत्र अर्जुन भी उस उत्तम रथसे उतरकर भागते हुए राजपुत्रके पीछे वेगसे दौडे । दौडनेसे अर्जुनकी लम्बी वेणी हिलने लगी और लालवस्त्र उडने लगे ॥ २७ ॥

विधूय वेणीं धावन्तमजानन्तोऽर्जुनं तदा ।
सैनिकाः प्राहसन्केचित्तथारूपमवेक्ष्य तम् ॥ २८ ॥

अपने जूडेको खोलकर भागते हुए अर्जुनको न पहिचानकर उसके उस रूपको देखकर कुछ सेनाके लोग हंसने लगे ॥ २८ ॥

तं शीघ्रमभिधावन्तं संप्रेक्ष्य कुरवोऽब्रुवन् ।
क एष वेषप्रच्छन्नो भस्मनेव हुताशनः ॥ २९ ॥

तेज दौडते हुए अर्जुनको देखकर सब कौरव लोग कहने लगे, कि यह छिपे हुए रूपमें कौन है ? इसका रूप ऐसा जान पडता है जैसे भस्ममें छिपी हुई अग्नि हो ॥ २९ ॥

किंचिदस्य यथा पुंसः किंचिदस्य यथा स्त्रियः ।
सारूप्यमर्जुनस्येव क्लीबरूपं बिभर्ति च ॥ ३० ॥

इसके कुछ शरीरके भाग स्त्री और कुछ भाग पुरुषके समान हैं। रूप अर्जुनके समान दीखता है, पर नपुंसकका रूप धारण किए हुए है ॥ ३० ॥

तदेवैतच्छिरोग्रीवं तौ बाहू परिघोपमौ ।
तद्वदेवास्य विक्रान्तं नायमन्यो धनंजयात् ॥ ३१ ॥

इसका वैसाही शिर, वैसाही गला, वैसेही परिघके समान बाहें और वैसाही इसका तेज है । अतः यह अर्जुनके अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

अमरेष्विव देवेन्द्रो मानुषेषु धनंजयः ।
एकः कोऽस्मानुपायायादन्यो लोके धनञ्जयात् ॥ ३२ ॥

जिसप्रकार देवोंमें इन्द्र है उसीप्रकार मनुष्योंमें अर्जुन हैं। एक अर्जुनको छोडकर और जगत्में ऐसा कौन है जो अकेला हम कौरवोंसे युद्ध करनेको आवे ॥ ३२ ॥

एकः पुत्रो विराटस्य शून्ये सन्निहितः पुरे ।
स एष किल निर्यातो बालभावान्न पौरुषात् ॥ ३३ ॥

विराटने अकेले अपने पुत्रको शून्य नगरमें छोड दिया था, वह भी अपनी मूर्खताके कारण ही केवल अकेले युद्ध करनेको आया था, न कि बल से ॥ ३३ ॥

सत्रेण नूनं छन्नं हि चरन्तं पार्थमर्जुनम् ।
उत्तरः सारथिं कृत्वा निर्यातो नगराद्बहिः ॥ ३४ ॥

हमें निश्चय है कि यह कुन्तीपुत्र अर्जुनही छिपा हुआ है। इसी अर्जुनको सारथी बनाकर उत्तर नगरसे बाहर निकलकर हमसे युद्ध करने आया है ॥ ३४ ॥

स नो मन्ये ध्वजान्दृष्ट्वा भीत एष पलायति ।
तं नूनमेष धावन्तं जिघृक्षति धनंजयः ॥ ३५ ॥

वह उत्तर हमारी ध्वजाओंको देखतेही भयके मारे भागा जाता है, और भागे जाते हुए उत्तरको अर्जुन पकडना चाहता है ॥ ३५ ॥

इति स्म कुरवः सर्वे विमृशन्तः पृथक्पृथक् ।
न च व्यवसितुं किंचिदुत्तरं शक्नुवन्ति ते ।
छन्नं तथा तं सत्रेण पाण्डवं प्रेक्ष्य भारत ॥ ३६ ॥

कौरव लोग इस प्रकार अलग अलग रूपसे विचार प्रकट करने लगे। भारत ! कपटवेशमें छिपे हुए उस पाण्डव अर्जुनको देखकर निश्चित उत्तर देनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ ॥ ३६ ॥

उत्तरं तु प्रधावन्तमनुद्रुत्य धनंजयः ।
गत्वा पदशतं तूर्णं केशपक्षे परामृशत् ॥ ३७ ॥

उधर अर्जुन भागते हुए उत्तरके पीछे दौडे और सौ पग दौडकर अर्जुनने उत्तरके बाल पकड लिये ॥ ३७ ॥

सोऽर्जुनेन परामृष्टः पर्यदेवयदार्तवत् ।
बहुलं कृपणं चैव विराटस्य सुतस्तदा ॥ ३८ ॥

अर्जुनके पकडने पर वह विराटका पुत्र उत्तर दीनके समान रोने लगा, और बहुत दीन बनकर कहने लगा ॥ ३८ ॥

शातकुम्भस्य शुद्धस्य शतं निष्कान्ददामि ते ।
मणीनष्टौ च वैडूर्यान्हेमबद्धान्महाप्रभान् ॥ ३९ ॥

नगरमें जाते ही मैं तुम्हें शुद्ध सोनेके बने सौ निष्क दूंगा और सोनेमें जडे हुए चमकनेवाले बहुत सुन्दर आठ वैडूर्य हीरे दूंगा ॥ ३९ ॥

हेमदण्डप्रतिच्छन्नं रथं युक्तं च सुव्रजैः ।
मत्तांश्च दश मातङ्गान्मुञ्च मां त्वं बृहन्नडे ॥ ४० ॥

सोनेके दण्डोंसे युक्त तथा उत्तम रीतिसे भागनेवाले घोडोंसे युक्त रथ तथा दस मस्त हाथी तुम्हें दूंगा, हे बृहन्नडे ! तुम मुझे छोड दो ॥ ४० ॥

वैशंपायन उवाच

एवमादीनि वाक्यानि विलपन्तमचेतसम् ।
प्रहस्य पुरुषव्याघ्रो रथस्यान्तिकमानयत् ॥ ४१ ॥

वैशम्पायन बोले– इस प्रकारके वचन कहते हुए तथा घबराये हुए उत्तरको हंसकर पुरुषसिंह अर्जुन रथके पास ले आये ॥ ४१ ॥

अथैनमब्रवीत्पार्थो भयार्तं नष्टचेतसम् ।
यदि नोत्सहसे योद्धुं शत्रुभिः शत्रुकर्शन ।
एहि मे त्वं हयान्यच्छ युध्यमानस्य शत्रुभिः ॥ ४२ ॥

तब भयसे व्याकुल और मूर्च्छित उत्तरसे अर्जुन बोले– हे शत्रुनाशन ! यदि तुम शत्रुओंसे युद्ध नहीं कर सकते हो, तो आओ, घोडोंको हांको और मैं शत्रुओंसे युद्ध करूंगा ॥ ४२ ॥

प्रयाह्येतद्रथानीकं मद्बाहुबलरक्षितः ।
अप्रधृष्यतमं घोरं गुप्तं वीरैर्महारथैः ॥ ४३ ॥

तुम मेरी भुजाओंके बलसे रक्षित होकर महारथी वीरोंके द्वारा सुरक्षित होनेके कारण न जीते जाने योग्य इस घोर रथोंकी सेनामें प्रवेश करो ॥ ४३ ॥

मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परंतप ।
अहं वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ॥ ४४ ॥

हे श्रेष्ठ राजपुत्र ! हे शत्रु नाशन ! तुम क्षत्रिय हो, इसलिये युद्धसे मत डरो । मैं कौरवोंसे युद्ध करके तुम्हारे सब पशुओंको जीत लूंगा ॥ ४४ ॥

प्रविश्यैतद्रथानीकमप्रधृष्यं दुरासदम् ।
यन्ता भूस्त्वं नरश्रेष्ठ योत्स्येऽहं कुरुभिः सह । ॥ ४५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम मेरे सारथी बनो और मैं इस दुर्जेय और घोर रथसेनामें प्रविष्ट होकर कौरवोंसे युद्ध करूंगा ॥ ४५ ॥

एवं ब्रुवाणो बीभत्सुर्वैराटिमपराजितः ।
समाश्वास्य मुहूर्तं तमुत्तरं भरतर्षभ ॥ ४६ ॥

हे जनमेजय ! इस प्रकार कहते हुए अपराजित अर्जुनने थोडे समय उस विराटपुत्र उत्तरको धैर्य दिया ॥ ४६ ॥

तत एनं विचेष्टन्तमकामं भयपीडितम् ।
रथमारोपयामास पार्थः प्रहरतां वरः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ९७० ॥

इसके बाद योद्धाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने भयसे पीडित होकर भागे जाते हुए विराटपुत्रको उसके न चाहते हुए भी रथमें बिठला दिया ॥ ४७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें छत्तीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३६ ॥ ९७० ॥

: ३७ :

वैशम्पायन उवाच

तं दृष्ट्वा क्लीबवेषेण रथस्थं नरपुंगवम् ।
शमीमभिमुखं यान्तं रथमारोप्य चोत्तरम् ॥ १ ॥
भीष्मद्रोणमुखास्तत्र कुरूणां रथसत्तमाः ।
वित्रस्तमनसः सर्वे धनंजयकृताद्भयात् ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— हे राजन् जनमेजय ! उस नरश्रेष्ठको नपुंसकके वेषमें उत्तरको रथमें बिठलाकर शमी वृक्षकी ओर जाते देखकर कौरवोंमें उत्तम महारथी भीष्म और द्रोण आदि अर्जुनके भयसे भयभीत मनवाले हो गए ॥ १-२ ॥

तानवेक्ष्य हतोत्साहानुत्पातानपि चाद्भुतान् ।
गुरुः शस्त्रभृतां श्रेष्ठो भारद्वाजोऽभ्यभाषत ॥ ३ ॥

उन सबको उत्साहरहित और अद्भुत उत्पातोंको देखकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ गुरु भरद्वाज पुत्र द्रोणाचार्य बोले ॥ ३ ॥

चलाश्च वाताः संवान्ति रूक्षाः परुषनिःस्वनाः ।
भस्मवर्णप्रकाशेन तमसा संवृतं नभः ॥ ४ ॥

यह घोर भयानक रूखी बहुत भयंकर शब्द करती हुई वायु चल रही है, आकाश भस्मके वर्णके प्रकाशसे तथा अन्धकारसे भर गया है ॥ ४ ॥

रूक्षवर्णाश्च जलदा दृश्यन्तेऽद्भुतदर्शनाः ।
निःसरन्ति च कोशेभ्यः शस्त्राणि विविधानि च ॥ ५ ॥

अद्भुत रूपवाले रूखे मेघ आकाशमें दिखाई देते हैं, विविध प्रकारसे शस्त्र कोशोंसे अपने आप बाहर निकले पड रहे हैं ॥ ५ ॥

शिवाश्च विनदन्त्येता दीप्तायां दिशि दारुणाः ।
हयाश्चाश्रूणि मुञ्चन्ति ध्वजाः कम्पन्त्यकम्पिताः ॥ ६ ॥

ये भयङ्कर सियारियां जलती हुई दिशामें चिल्ला रही हैं, घोडोंकी आंखोंसे आंसू बह रहे हैं, ध्वजाएं विना कंपाये ही कांप रही हैं ॥ ६ ॥

यादृशान्यत्र रूपाणि संदृश्यन्ते बहून्यपि ।
यत्ता भवन्तस्तिष्ठन्तु स्याद्युद्धं समुपस्थितम् ॥ ७ ॥

यहां जिस प्रकारके बहुत सारे रूप दिखाई देते हैं, उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि यह सामने उपस्थित हुआ युद्ध अवश्य होगा । अतः आप लोग सावधान होकर सेनाकी रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

रक्षध्वमपि चात्मानं व्यूहध्वं वाहिनीमपि ।
वैशसं च प्रतीक्षध्वं रक्षध्वं चापि गोधनम् ॥ ८ ॥

अपनी अपनी रक्षा कीजिये और सेनाका व्यूह बनाइये । मारकाटकी प्रतीक्षा कीजिये और गौओंकी रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥

एष वीरो महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
आगतः क्लीबवेषेण पार्थो नास्त्यत्र संशयः ॥ ९ ॥

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह सब धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ सब शस्त्रोंके जाननेवाले साक्षात् अर्जुन नंपुसकका वेष धारण करके युद्ध करने आये हैं ॥ ९ ॥

स एष पार्थो विक्रान्तः सव्यसाची परंतपः ।
नायुद्धेन निवर्तेत सर्वैरपि मरुद्गणैः ॥ १० ॥

ये सब शत्रुओंके नाश करनेवाले पराक्रमी कुन्तीपुत्र वीर अर्जुन सब मरुतोंसे भी विना युद्ध किये नहीं लौट सकते ॥ १० ॥

क्लेशितश्च वने शूरो वासवेन च शिक्षितः ।
अमर्षवशमापन्नो योत्स्यते नात्र संशयः ॥ ११ ॥

इन्होंने बहुत दिन पर्यन्त वनमें क्लेश भोगे हैं, और इन्द्रसे शिक्षाभी पाई है, ये क्रोधित होनेपर युद्ध अवश्य करेंगे, इसमें कोई शङ्का नहीं है ॥ ११ ॥

नेहास्य प्रतियोद्धारमहं पश्यामि कौरवाः ।
महादेवोऽपि पार्थेन श्रूयते युधि तोषितः ॥ १२ ॥

मुझे इस सेनामें इनसे युद्ध करनेवाला कोई भी नहीं दीखता। युद्धमें हमने सुना है कि अर्जुनने शिवको भी प्रसन्न कर दिया था ॥ १२ ॥

कर्ण उवाच

सदा भवान्फल्गुनस्य गुणैरस्मान्विकत्थसे ।
न चार्जुनः कला पूर्णा मम दुर्योधनस्य वा ॥ १३ ॥

कर्ण बोले– आप हमारे सामने सदा अर्जुनके गुणोंकी प्रशंसा किया करते हैं, पर अर्जुन मेरी और दुर्योधनकी सोलहवीं कलाके भी समान नहीं है ॥ १३ ॥

दुर्योधन उवाच

यद्येष पार्थो राधेय कृतं कार्यं भवेन्मम ।
ज्ञाताः पुनश्चरिष्यन्ति द्वादशान्यान्हि वत्सरान् ॥ १४ ॥

दुर्योधन बोले– हे कर्ण ! यदि यह अर्जुन ही है, तो हमारे सब काम सिद्ध हो गये, क्योंकि पहचाने जानेसे पाण्डवोंको फिर बारह वर्ष वनमें रहना होगा ॥ १४ ॥

अथैष कश्चिदेवान्यः क्लीबवेषेण मानवः ।
शरैरेनं सुनिशितैः पातयिष्यामि भूतले ॥ १५ ॥

और यदि कोई दूसरा ही पुरुष नपुंसकका वेष धारण करके आया है तो अभी तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर मैं इसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा ॥ १५ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्मिन्ब्रुवति तद्वाक्यं धार्तराष्ट्रे परंतपे ।
भीष्मो द्रोणः कृपो द्रौणिः पौरुषं तदपूजयन् ॥ १६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ९८६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे शत्रुनाशन जनमेजय ! धृतराष्ट्रपुत्रके ऐसे वचन सुनकर भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा उनके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ १६ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥ ९८६ ॥

: ३८ :

वैशम्पायन उवाच

तां शमीमुपसंगम्य पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।
सुकुमारं समाज्ञातं संग्रामे नातिकोविदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! शमी वृक्षके पास जाकर विराटपुत्रको युद्धमें अनिपुण और सुकुमार जानकर अर्जुन बोले ॥ १ ॥

समादिष्टो मया क्षिप्रं धनूंष्यवहरोत्तर ।
नेमानि हि त्वदीयानि सोढुं शक्ष्यन्ति मे बलम् ॥ २ ॥

हे उत्तर ! मेरे कहनेसे तुम इस वृक्षपर चढकर धनुष उतार लाओ । ये तुम्हारे धनुष मेरे बलको नहीं सह सकते ॥ २ ॥

भारं वापि गुरुं हर्तुं कुञ्जरं वा प्रमर्दितुम् ।
मम वा बाहुविक्षेपं शत्रूनिह विजेष्यतः ॥ ३ ॥

न भारी बोझ उठा सकते हैं, न हाथियोंको मार सकते हैं और न शत्रुओंको जीतते समय मेरे बाहुबलको ही सहनेमें समर्थ हैं ॥ ३ ॥

तस्माद्भूमिंजयारोह शमीमेतां पलाशिनीम् ।
अस्या हि पाण्डुपुत्राणां धनूंषि निहितान्युत ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरस्य भीमस्य बीभत्सोर्यमयोस्तथा ।
ध्वजाः शराश्च शूराणां दिव्यानि कवचानि च ॥ ५ ॥

इसलिये, हे भूमिंजय उत्तर ! तुम इस घने पत्तोंवाले शमी वृक्षपर चढो । इस वृक्षपर महा पराक्रमी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवके धनुष बाण, प्रकाशमान् कवच और ध्वजायें रक्खी हुई हैं ॥ ४-५ ॥

अत्र चैतन्महावीर्यं धनुः पार्थस्य गाण्डिवम् ।
एकं शतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् । ॥ ६ ॥

उन्हींमें अर्जुनका अत्यन्त शक्तिशाली गाण्डीव धनुष भी है। वह धनुष अकेलाही सैकडों और सहस्रों धनुषोंके तुल्य और राष्ट्रकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ६ ॥

व्यायामसहमत्यर्थं तृणराजसमं महत्।
सर्वायुधमहामात्रं शत्रुसंबाधकारकम् ॥ ७॥

तथा उसपर कितना भी जोर पडे, सब सहन करनेवाला है तथा ताड वृक्षके समान विशाल है। वह अकेलाही सब शस्त्रोंके तुल्य और शत्रुओंका नाश करनेवाला है ॥ ७॥

सुवर्णविकृतं दिव्यं श्लक्ष्णमायतमव्रणम्।
अलं भारं गुरुं वोढुं दारुणं चारुदर्शनम्।
तादृशान्येव सर्वाणि बलवन्ति दृढानि च ॥ ८॥

सोनेसे जडा हुआ दिव्य, चिकना, चौडा और निशानरहित है। वह भयानक कर्म करनेवाला तथा सुन्दर धनुष हर तरहके बोझको सहन करनेमें समर्थ है। दूसरे भी सभी शस्त्र उसीतरह बलयुक्त और दृढ हैं ॥ ८॥

उत्तर उवाच

अस्मिन्वृक्षे किलोद्बद्धं शरीरमिति नः श्रुतम्।
तदहं राजपुत्रः सन्स्पृशेयं पाणिना कथम् ॥ ९॥

उत्तर बोले– मैंने सुना है कि इस वृक्षपर एक पुरुषका शरीर बन्धा हुआ है, तो मैं राजपुत्र होकर उसे हाथसे किस प्रकार छूऊंगा?॥ ९॥

नैवंविधं मया युक्तमालब्धुं क्षत्रयोनिना।
महता राजपुत्रेण मन्त्रयज्ञविदा सता ॥ १०॥

क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुआ, मन्त्र और यज्ञोंको जाननेवाला, पण्डित तथा एक महान् राजपुत्र मैं इसप्रकार कैसे छू सकता हूँ? ॥ १०॥

स्पृष्टवन्तं शरीरं मां शववाहमिवाशुचिम्।
कथं वा व्यवहार्यं वै कुर्वीथास्त्वं बृहन्नडे। ॥ ११॥

हे बृहन्नडे! मैं इस शरीरको छूकर मुर्दा ढोनेवाले मनुष्यके समान अपवित्र हो जाऊंगा, तब तुम भी मुझसे कैसे व्यवहार करोगे? ॥ ११॥

बृहन्नडोवाच

व्यवहार्यश्च राजेन्द्र शुचिश्चैव भविष्यसि।
धनूंष्येतानि मा भैस्त्वं शरीरं नात्र विद्यते ॥ १२॥

बृहन्नडा बोली– हे राजपुत्र! तुम पवित्रही रहोगे, और व्यवहारके भी योग्य रहोगे, इस वृक्षपर केवल धनुषही रखे हुए हैं, डरो मत, इस पर मरे हुए पुरुषका शरीर नहीं है ॥ १२॥

दायादं मत्स्यराजस्य कुले जातं मनास्विनम्।
कथं त्वा निन्दितं कर्म कारयेयं नृपात्मज ॥ १३ ॥

हे राजपुत्र ! उत्तम मत्स्यराजके पुत्र और उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए मनस्वी तुमसे मैं नीच कर्म कैसे करा सकता हूं ? ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्तः स पार्थेन रथात्प्रस्कन्द्य कुण्डली।
आरुरोह शमीवृक्षं वैराटिरवशस्तदा ॥ १४ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर कुण्डलोंको धारण किया हुआ उत्तर विवश होकर रथसे उतरा और शमीवृक्षपर चढ गया ॥ १४ ॥

तमन्वशासच्छत्रुघ्नो रथे तिष्ठन्धनंजयः।
परिवेष्टनमेतेषां क्षिप्रं चैव व्यपानुद ॥ १५ ॥

तब शत्रुनाशन अर्जुनने रथपर बैठेही बैठे उससे कहा कि इनके चारों और लिपटे हुए बन्धन शीघ्र तोड दो ॥ १५ ॥

तथा संनहनान्येषां परिमुच्य समन्ततः।
अपश्यद्गांडिवं तत्र चतुर्भिरपरैः सह ॥ १६ ॥
तेषां विमुच्यमानानां धनुषामर्कवर्चसाम्।
विनिश्चेरुः प्रभा दिव्या ग्रहाणामुदयेष्विव ॥ १७ ॥

तब उत्तरने उन शस्त्रोंके चारों ओर लिपटे हुए बन्धनोंको हटाया और तब उसने वहां चार अन्य धनुषोंके सहित गाण्डीव धनुषको देखा। जब सूर्यके समान चमचमाते हुए उन धनुषोंके बन्धन टूटे तब उनसे ऐसी दिव्य प्रभा निकलने लगी, कि जिस प्रकार सूर्यादि ग्रहोंके उदय होने पर उनसे प्रभा निकलती है ॥ १६-१७॥

स तेषां रूपमालोक्य भोगिनामिव जृम्भताम्।
हृष्टरोमा भयोद्विग्नः क्षणेन समपद्यत ॥ १८॥

फुफुकारते हुए सर्पके समान उनके रूपको देखकर उसी क्षण विराटपुत्र भयसे कांपने लगा, और उसके सब रोवें खडे हो गये ॥ १८ ॥

संस्पृश्य तानि चापानि भानुमन्ति बृहन्ति च।
वैराटिरर्जुनं राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥

हे राजन् ! उन चमकते हुए बडे बडे धनुषोंको छूकर विराटपुत्र उत्तर अर्जुनसे यह बचन बोला ॥ १९ ॥

×

उत्तर उवाच

बिन्दवो जातरूपस्य शतं यस्मिन्निपातिताः ।
सहस्रकोटि सौवर्णाः कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २० ॥

उत्तर बोले– जिसपर सोनेके सहस्रों बिन्दु जडे हुए हैं, जिसके दोनों प्रान्त बहुत उत्तम सोनेके बने हुए हैं, यह किसका धनुष है ? ॥ २० ॥

वारणा यस्य सौवर्णाः पृष्ठे भासन्ति दंशिताः ।
सुपार्श्वं सुग्रहं चैव कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २१ ॥

जिसकी पीठकर प्रकाशमान हाथी बने हुए हैं, जिसके मध्य और प्रान्त भाग बहुत दृढ हैं, यह किसका धनुष है ? ॥ २१ ॥

तपनीयस्य शुद्धस्य षष्टिर्यस्येन्द्रगापकाः ।
पृष्ठे विभक्ताः शोभन्ते कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २२ ॥

जिसकी पीठमें शुद्ध सोनेकी साठ वीर बहूटियां बनी हुई शोभा दे रही हैं, यह उत्तम धनुष किसका है ? ॥ २२ ॥

सूर्या यत्र च सौवर्णास्त्रयो भासन्ति दंशिताः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो हि कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २३ ॥

जिसपर तेजसे जलते हुए सोनेके तीन सूर्य बने हुए हैं, यह उत्तम धनुष किसका है ? ॥२३॥

शालभा यत्र सौवर्णास्तपनीयाविचित्रिताः ।
सुवर्णमणिचित्रं च कस्यैतद्धनुरुत्तमम् ॥ २४ ॥

जिसपर शुद्ध सुवर्णके पतंगे चित्रित किए हुए हैं वह सुवर्ण तथा मणिसे जटित उत्तम धनुष किसका है ? ॥ २४ ॥

इमे च कस्य नाराचाः सहस्रा लोमवाहिनः ।
समन्तात्कलधौताग्रा उपासङ्गे हिरण्मये ॥ २५ ॥

ये रोवां काटनेवाले, तथा जिनके अग्रभागके चारों ओर सोना मढा हुआ है, ऐसे सोनेके तरकशमें रखे हुए हजारों बाण किसके हैं ? ॥ २५ ॥

विपाठाः पृथवः कस्य गार्ध्रपत्राः शिलाशिताः ।
हारिद्रवर्णाः सुनसाः पीताः सर्वायसाः शराः ॥ २६ ॥

मोठे दण्डवाले, गृद्धके पंखोंसे शोभित, पत्थर पर घिसकर तीक्ष्ण किए गए हलदीके समान पीले, तेज मुखवाले लोहेके बने सहस्रों बाण किसके हैं ? ॥ २६ ॥

कस्यायमासितावापः पञ्चशार्दूललक्षणः ।
वराहकर्णव्यामिश्रः शरान्धारयते दश ॥ २७ ॥

वराहके कानके समान दस बाण धारण करनेवाला और पांच शार्दूलोंसे चिह्नित यह धनुष किसका है ? ॥ २७ ॥

कस्येमे पृथवो दीर्घाः सर्वपारशवाः शराः ।
शतानि सप्त तिष्ठन्ति नाराचा रुधिराशनाः ॥ २८ ॥

ये रुधिर पीनेवाले मोटे और लम्बे, साक्षात् अर्धचन्द्रके बिम्बके समान दीखनेवाले सात सौ बाण किसके हैं ? ॥ २८ ॥

कस्येमे शुकपत्राभैः पूर्वैरर्धैः सुवाससः ।
उत्तरैरायसैः पीतैर्हेमपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ २९ ॥

ये ऊपरसे आधेभागमें तोतेके पंखके समान सुन्दर तीक्ष्ण तथा पीछेके आधेभागमें लोहेसे बने हुए, तेजपानीमें बुझे, सोनेके पंखयुक्त, शिलापर घिसे बाण किसके हैं ? ॥ २९ ॥

कस्यायं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः ।
वैयाघ्रकोशे निहितो हेमचित्रत्सरुर्महान् ॥ ३० ॥

यह मेढकके समान मुख और पीठवाला, सिंहके चमडेके कोशमें रखा हुआ, सुनहरी चमकदार मूठवाला, अत्यन्त तेज सुन्दर विशाल खड्ग किसका है ? ॥ ३० ॥

सुफलश्चित्रकोशश्च किङ्किणीसायको महान् ।
कस्य हेमत्सरुर्दिव्यः खड्गः परमनिर्व्रणः ॥ ३१ ॥

उत्तम फालवाला चित्र विचित्र म्यानवाला, छोटे छोटे घुंघुरुओंसे युक्त, सोनेकी मूठवाला, कहींसे भी न टूटा हुआ यह महान् दिव्य खड्ग किसका है ? ॥ ३१ ॥

कस्यायं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः ।
हेमत्सरुरनाधृष्यो नैषध्यो भारसाधनः ॥ ३२ ॥

यह गौके चमडेके कोषमें रखा हुआ निर्मल, निषध देशमें बना हुआ, सोनेकी मूठवाला, अत्यन्त दृढ शत्रुओंका नाश करनेवाला यह खड्ग किसका है ? ॥ ३२ ॥

कस्य पाञ्चनखे कोशे सायको हेमविग्रहः ।
प्रमाणरूपसंपन्नः पीत आकाशसंनिभः ॥ ३३ ॥

बकरेके चमडेमें रक्खा हुआ सुनहरा, उत्तम प्रमाण और रूपसे सम्पन्न आकाशके समान तेजस्वी खड्ग किसका है ? ॥ ३३ ॥

कस्य हेममये कोशे सुतप्ते पावकप्रभे ।
निस्त्रिंशोऽयं गुरुः पीतः सैक्यः परमनिर्व्रणः ॥ ३४ ॥

अच्छी तरहसे प्रदीप्त अग्निके समान प्रभावाले सोनेकी म्यानमें रखा हुआ, भारी तेजस्वी, कहींसे भी न टूटा हुआ यह निस्त्रिंश (३० अंगुलियोंसे मी अधिक लम्बी तलवार) किसका है ? ॥ ३४ ॥

निर्दिशस्व यथातत्त्वं मया पृष्टा बृहन्नडे ।
विस्मयो मे परो जातो दृष्ट्वा सर्वमिदं महत् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार पूछी जाती हुई तुम इन सबका यथार्थ वर्णन करो, क्योंकि इन सबको देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा है ॥ ३५ ॥

बृहन्नडोवाच

यन्मां पूर्वमिहापृच्छः शत्रुसेनानिबर्हणम् ।
गाण्डीवमेतत्पार्थस्य लोकेषु विदितं धनुः ॥ ३६ ॥

बृहन्नडा बोली– तुमने जिसको पहले मुझसे पूछा था, वह शत्रुसेनाका नाश करनेवाला तथा लोकोंमें प्रसिद्ध धनुष अर्जुनका गाण्डीव है ॥ ३६ ॥

सर्वायुधमहामात्रं शातकुम्भपरिष्कृतम् ।
एतत्तदर्जुनस्यासीद्गाण्डीवं परमायुधम् ॥ ३७ ॥

सभी अन्य शस्त्रास्त्रोंसे टक्कर लेनेवाला, सोनेसे चित्रित यह परमश्रेष्ठ शस्त्र अर्जुनका गाण्डीव धनुष है ॥ ३७ ॥

यत्तच्छतसहस्रेण संमितं राष्ट्रवर्धनम् ।
येन देवान्मनुष्यांश्च पार्थो विषहते मृधे ॥ ३८ ॥

यह अन्य सैंकडों और हजारों धनुषोंके समान है, यह राष्ट्रको बढानेवाला है । इसको धारण करके अर्जुन युद्धमें देवता और दैत्योंको जीतते हैं ॥ ३८ ॥

देवदानवगन्धर्वैः पूजितं शाश्वतीः समाः ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ब्रह्मा पूर्वमधारयत् ॥ ३९ ॥

सैंकडों वर्षोंसे देव दानव और गन्धर्वोंसे पूजित है । इसको एक सहस्र वर्षतक पहले ब्रह्माने धारण किया ॥ ३९ ॥

ततोऽनन्तरमेवाथ प्रजापतिरधारयत् ।
त्रीणि पञ्चशतं चैव शक्रोऽशीति च पञ्च च ॥ ४० ॥

फिर पांच सौ तीन वर्षतक प्रजापतिने धारण किया, इन्द्रने पिचासी वर्ष धारण किया ॥ ४० ॥

सोमः पञ्चशतं राजा तथैव वरुणः शतम् ।
पार्थः पञ्च च षष्टिं च वर्षाणि श्वेतवाहनः ॥ ४१ ॥

चन्द्रमाने पांच सौ वर्ष, तथा राजा वरुणने सौ वर्ष और सफेद घोडोंवाले अर्जुनने पैंसठ वर्षतक धारण किया है ॥ ४१ ॥

महावीर्यं महद्दिव्यमेतत्तद्धनुरुत्तमम् ।
पूजितं सुरमर्त्येषु बिभर्ति परमं वपुः ॥ ४२ ॥

यह धनुष परम श्रेष्ठ, दिव्य और दृढ है, इसका आकार बडा ही सुन्दर है और यह देवों और मनुष्योंमें पूजित है ॥ ४२ ॥

सुपार्श्वं भीमसेनस्य जातरूपग्रहं धनुः ।
येन पार्थोऽजयत्कृत्स्नां दिशं प्राचीं परंतपः ॥ ४३ ॥

उत्तम प्रान्त भागोंवाला तथा सोनेका बना हुआ दूसरा धनुष भीमसेनका है, जिस धनुषसे कुन्तीपुत्र शत्रुनाशन भीमने समस्त पूर्बदिशाको जीता था ॥ ४३ ॥

इन्द्रगोपकचित्रं च यदेतच्चारुविग्रहम् ।
राज्ञो युधिष्ठिरस्यैतद्वैराटे धनुरुत्तमम् ॥ ४४ ॥

हे उत्तर ! जिस सुन्दर आकारवाले धनुषपर वीरबहूटीं बनी है, वह उत्तम धनुष महाराज युधिष्ठिरका है ॥ ४४ ॥

सूर्या यस्मिंस्तु सौवर्णाः प्रभासन्ते प्रभासिनः ।
तेजसा प्रज्वलन्तो वै नकुलस्यैतदायुधम् ॥ ४५ ॥

जिसमें सोनेके बने हुए महा प्रकाशमान तथा अपने तेजसे जलते हुए सूर्य प्रकाशित हो रहे हैं, वह नकुलका धनुष है ॥ ४५ ॥

शलभा यत्र सौवर्णास्तपनीयविचित्रिताः ।
एतन्माद्रीसुतस्यापि सहदेवस्य कार्मुकम् ॥ ४६ ॥

जिसमें तपे हुए शुद्ध तेजस्वी सोनेके पतंगे बने हुए हैं, वह धनुष माद्रीपुत्र सहदेवका है ॥ ४६ ॥

ये त्विमे क्षुरसंकाशाः सहस्रा लोमवाहिनः ।
एतेऽर्जुनस्य वैराटे शराः सर्पविषोपमाः ॥ ४७ ॥

हे उत्तर ! रोवें धारण करनेवाले, सांपके विष समान विषैले छुरे जैसे तीक्ष्ण ये सहस्रों बाण अर्जुनके हैं ॥ ४७ ॥

एते ज्वलन्तः संग्रामे तेजसा शीघ्रगामिनः ।
भवन्ति वीरस्याक्षय्या व्यूहतः समरे रिपून् ॥ ४८ ॥

ये युद्धमें जाकर अपने तेजसे प्रकाशित होते हैं और वीरोंके युद्धमें शत्रुओंको नष्ट करते हुए भी ये बाण अक्षय हैं ॥ ४८ ॥

ये चेमे पृथवो दीर्घाश्चन्द्रबिंबार्धदर्शनाः।
एते भीमस्य निशिता रिपुक्षयकराः शराः ॥ ४९ ॥

ये जो लम्बे, चन्द्रमाके अर्धबिम्बके समान तीक्ष्ण और शत्रुनाशक बाण हैं, वे भीमसेनके हैं ॥ ४९ ॥

हारिद्रवर्णा ये त्वेते हेमपुङ्खाः शिलाशिताः।
नकुलस्य कलापोऽयं पंचशार्दूललक्षणः ॥ ५० ॥

जो हल्दीके समान वर्ण वाले और सोनेके पंखवाले, शिलापर घिसनेके कारण तीक्ष्ण बाण हैं, ये महा बुद्धिमान् माद्रीपुत्र नकुलके हैं। यह जो पांच शार्दूलोंसे चिह्नित तूणीर है वह भी नकुलहीका है ॥ ५० ॥

येनासौ व्यजयत्कृत्स्नां प्रतीचीं दिशमाहवे।
कलापो ह्येष तस्यासीन्माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥ ५१ ॥

इसीकी सहायतासे उन्होंने युद्धमें समस्त पश्चिम दिशाको जीता था, यह बाणोंका समूह उन्हीं बुद्धिमान् माद्रीपुत्र नकुलका है ॥ ५१ ॥

ये त्विमे भास्कराकाराः सर्वपारशवाः शराः।
एते चित्राः क्रियोपेताः सहदेवस्य धीमतः ॥ ५२ ॥

ये जो सूर्यके समान चमकते हुए सब शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा चित्रविचित्र कामोंसे युक्त बाण हैं, वे बुद्धिमान् सहदेवके हैं ॥ ५२ ॥

ये त्विमे निशिताः पीताः पृथवो दीर्घवाससः।
हेमपुंखास्त्रिपर्वाणो राज्ञ एते महाशराः ॥ ५३ ॥

ये जो तीक्ष्ण, तेज पानीमें बुझाये, बडे बडे सोनेके पंखवाले तीन धारवाले बाण हैं, वे महाराज युधिष्ठिरके हैं ॥ ५३ ॥

यस्त्वयं सायको दीर्घः शिलीपृष्ठः शिलीमुखः।
अर्जुनस्यैष संग्रामे गुरुभारसहो दृढः ॥ ५४ ॥

यह जो मेढकके समान उठी हुई पीठवाला शिलापर घिसा हुआ युद्धमें बडेसे बडे बोझको भी सहनेवाला तथा दृढ विशाल खड्ग है, वह अर्जुनका है ॥ ५४ ॥

वैयाघ्रकोशस्तु महान्भीमसेनस्य सायकः।
गुरुभारसहो दिव्यः शात्रवाणां भयंकरः ॥ ५५ ॥

यह जो व्याघ्रचर्मके म्यानमें रखा हुआ है वह महान् दिव्य, शत्रुओंके लिए भयंकर और प्रचण्ड भार सहन करनेवाला खड्ग भीमसेनका है ॥ ५५ ॥

सुफलश्चित्रकोशश्च हेमत्सरुरनुत्तमः ।
निस्त्रिंशः कौरवस्यैष धर्मराजस्य धीमतः ॥ ५६ ॥

उत्तम फालवाला, चित्र विचित्र म्यानमें रखा हुआ, सोनेकी मूठवाला और अत्यन्त श्रेष्ठ निस्त्रिंश कुरुवंशमें उत्पन्न बुद्धिमान् धर्मराजका है ॥ ५६ ॥

यस्तु पांचनखे कोशे निहितश्चित्रसेवने ।
नकुलस्यैष निस्त्रिंशो गुरुभारसहो दृढः ॥ ५७ ॥

जो बकरेके चमडेके म्यानमें रक्खा हुआ है, जो सदा विचित्र युद्धोंमें चलता है, वह सब शत्रुओंका नाश करनेवाला दृढ खड्ग नकुलका है ॥ ५७ ॥

यस्त्वयं विमलः खड्गो गव्ये कोशे समर्पितः ।
सहदेवस्य विद्धयेनं सर्वभारसहं दृढम् ॥ ५८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ १०४४ ॥

हे उत्तर ! यह जो विमल, दृढ और सब शत्रुओंका भार सहनेवाला खड्ग बैलके चमडेके म्यानमें रक्खा हुआ है, उसे सहदेवका जानो ॥ ५८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें अडतीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३८ ॥ १०४४ ॥

३९

उत्तर उवाच

सुवर्णविकृतानीमान्यायुधानि महात्मनाम् ।
रुचिराणि प्रकाशन्ते पार्थानामाशुकारिणाम् ॥ १ ॥

उत्तर बोले– जिन शत्रुनाशक महात्मा पाण्डवोंके ये सुवर्णखचित तेजसे युक्त सुन्दर शस्त्र यहां प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १ ॥

क नु स्विदर्जुनः पार्थः कौरव्यो वा युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः ॥ २ ॥

वह पृथापुत्र अर्जुन, कुरुवंशी युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, और पाण्डुपुत्र भीमसेन कहा हैं ? ॥ २ ॥

सर्व एव महात्मानः सर्वामित्रविनाशनाः ।
राज्यमक्षैः पराकीर्य न श्रूयन्ते कदाचन ॥ ३ ॥

वे सभी महात्मा हैं और शत्रुओंका विनाश करनेवाले वे सब राज्यको जुवेमें हारकर न जाने किधर चले गये ? अब वे सुननेमें भी नहीं आते ॥ ३ ॥

द्रौपदी क च पांचाली स्त्रीरत्नमिति विश्रुता।
जितानक्षैस्तदा कृष्णा तानेवान्वगमद्वनम् ॥ ४ ॥

जगद्विख्यात स्त्रियोंमें रत्नके समान द्रुपदराज पुत्री द्रौपदी भी न जाने किधर चली गई? हमने सुना है, जो युधिष्ठिर आदि पांडव जुवेमें हार गये थे, उनकेही साथ द्रौपदी भी वनमें चली गयी थी ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच

अहमस्म्यर्जुनः पार्थः सभास्तारो युधिष्ठिरः।
बल्लवो भीमसेनस्तु पितुस्ते रसपाचकः ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले– मैं ही कुन्तीपुत्र अर्जुन हूं, राजा विराटके कंक नामक सभासद् युधिष्ठिर हैं। तुम्हारे पिताके बल्लव नामक रसोइया भीमसेन हैं ॥ ५ ॥

अश्वबन्धोऽथ नकुलः सहदेवस्तु गोकुले।
सैरंध्रीं द्रौपदीं विद्धि यत्कृते कीचका हताः ॥ ६ ॥

नकुल अश्वरक्षक हैं, और सहदेव गौओंकी रक्षा करते हैं। जिसके कारण कीचक मारे गए उसी सैरन्ध्रीको तुम द्रौपदी समझो ॥ ६ ॥

उत्तर उवाच

दश पार्थस्य नामानि यानि पूर्वं श्रुतानि मे।
प्रब्रूयास्तानि यदि मे श्रद्दध्यां सर्वमेव ते ॥ ७ ॥

उत्तर बोले– मैंने पहले जो अर्जुनके दस नाम सुने हैं, यदि तुम नाम बता दो तो मैं तुम्हारी सब बातों पर विश्वास कर लूं ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच

हंत तेऽहं समाचक्षे दश नामानि यानि मे।
अर्जुनः फल्गुनो जिष्णुः किरीटी श्वेतवाहनः।
बीभत्सुर्विजयः कृष्णः सव्यसाची धनंजयः ॥ ८ ॥

अर्जुन बोले– मेरे जो दस नाम हैं वे सुनो, मैं कहता हूं–अर्जुन, फल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनञ्जय ॥ ८ ॥

उत्तर उवाच

केनासि विजयो नाम केनासि श्वेतवाहनः।
किरीटी नाम केनासि सव्यसाची कथं भवान् ॥ ९ ॥

उत्तर बोला– तुम्हारा नाम विजय क्यों पडा? किसकारण तुम श्वेतवाहन कहलाते हो? किस कारण तुम्हारा नाम किरीटी है और तुम्हारा नाम सव्यसाची क्यों पडा? ॥ ९ ॥

अर्जुनः फल्गुनो जिष्णुः कृष्णो बीभत्सुरेव च ।
धनंजयश्च केनासि प्रब्रूहि मम तत्त्वतः ।
श्रुता मे तस्य वीरस्य केवला नामहेतवः ॥ १० ॥

तुम्हारे नाम अर्जुन, फल्गुन, जिष्णु, कृष्ण, बीभत्सु, और धनञ्जय क्यों हुए ? इसका यथार्थ कारण बतलाओ । आजतक मैंने वीर अर्जुनके वे नाम पडनेके कारण सुने हैं ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच

सर्वाञ्जनपदाञ्जित्वा वित्तमाच्छिद्य केवलम् ।
मध्ये धनस्य तिष्ठामि तेनाहुर्मां धनंजयम् ॥ ११ ॥

अर्जुन बोले– मैं सब नगरके शत्रुओंको जीतकर उनका केवल धन छीन कर मैं सदा धनके मध्यमें रहता हूं, इसीकारण मुझे धनञ्जय कहते हैं ॥ ११ ॥

अभिप्रयामि संग्रामे यदहं युद्धदुर्मदान् ।
नाजित्वा विनिवर्तामि तेन मां विजयं विदुः ॥ १२ ॥

युद्धमें मैं बडे बडे भयंकर योद्धाओं पर आक्रमण करता हुआ चला जाता हूं, और उनको बिना जीते नहीं लौटता, इसीकारण लोग मुझे विजयके नामसे जानते हैं ॥ १२ ॥

श्वेताः काञ्चनसन्नाहा रथे युज्यन्ति मे हयाः ।
संग्रामे युद्धयमानस्य तेनाहं श्वेतवाहनः ॥ १३ ॥

संग्राममें युद्ध करनेवाले मेरे रथमें सोनेके कवचवाले सफेद घोडे जोडे जाते हैं, इसलिए मैं श्वेतवाहन हूं ॥ १३ ॥

उत्तराभ्यां च पूर्वाभ्यां फल्गुनीभ्यामहं दिवा ।
जातो हिमवतः पृष्ठे तेन मां फल्गुनं विदुः ॥ १४ ॥

मैं उत्तरा फल्गुनी और पूर्व फल्गुनी नक्षत्रकी संधिमें हिमालयके शिखरपर उत्पन्न हुआ था इसीकारण लोग मुझे फल्गुनके नामसे जानते हैं ॥ १४ ॥

पुरा शक्रेण मे दत्तं युध्यतो दानवर्षभैः ।
किरीटं मूर्ध्नि सूर्याभं तेन माहुः किरीटिनम् ॥ १५ ॥

प्राचीनकालमें जब मैं घोर दानवोंसे युद्ध करने गया था, तब इन्द्रने अपने हाथसे मेरे सिरपर सूर्यके समान चमकनेवाला किरीट बांधा था, इसीकारण मुझे किरीटी कहते हैं ॥ १५ ॥

न कुर्यां कर्म बीभत्सं युध्यमानः कथंचन।
तेन देवमनुष्येषु बीभत्सुरिति मां विदुः ॥ १६ ॥

मैं युद्धमें लडता हुआ कभी भी बीभत्स अर्थात् निन्दाके योग्य काम नहीं करता, इसलिये देवता और मनुष्योंमें मैं बीभत्सु × के नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ १६ ॥

उभौ मे दक्षिणौ पाणी गांडीवस्य विकर्षणे।
तेन देवमनुष्येषु सव्यसाचीति मां विदुः ॥ १७ ॥

धनुष खींचनेके काममें मेरे दोनों हाथ दाहिने हाथ ही हैं अर्थात् जैसे दाहिने हाथसे धनुष खींचता हूं, वैसेही बायेंसे भी खींच सकता हूं, इसलिए सब देवता और मनुष्य मुझे "सव्यसाची" कहते हैं ॥ १७ ॥

पृथिव्यां चतुरन्तायां वर्णो मे दुर्लभः समः।
करोमि कर्म शुक्लं च तेन मामर्जुनं विदुः ॥ १८ ॥

चारों समुद्रोंके वलयसे अंकित पृथ्वीपर मेरे समान वर्णवाला कोई पुरुष नहीं है, और मैं निर्मल कर्म करता हूं, इसलिये मुझे अर्जुनके नामसे लोग जानते हैं ॥ १८ ॥

अहं दुरापो दुर्धर्षो दमनः पाकशासनिः।
तेन देवमनुष्येषु जिष्णुनामास्मि विश्रुतः ॥ १९ ॥

मैं अत्यन्त बलशाली, दुर्धर्ष, शत्रुओंको जीतनेवाला और इन्द्रका पुत्र हूं, इसीलिये मैं देवों और मनुष्योंमें "जिष्णु" के नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ १९ ॥

कृष्ण इत्येव दशमं नाम चक्रे पिता मम।
कृष्णावदातस्य सतः प्रियत्वाद्बालकस्य वै ॥ २० ॥

मेरे पिताने मेरा कृष्णवर्ण देखकर, तथा बालभावमें सबके प्रिय होनेके कारण "कृष्ण" यह दसवाँ नाम रक्खा था ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः पार्थं स वैराटिरभ्यवादयदन्तिकात्।
अहं भूमिंजयो नाम नाम्नाहमपि चोत्तरः ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले— अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर विराटपुत्रने अर्जुनके निकट जाकर प्रणाम किया और कहा कि मेरा नाम भूमिंजय है। और लोग मुझे उत्तरके नामसे भी पुकारते हैं ॥ २१ ॥

× नाम उलटा है पर महाभारत पर प्रसिद्ध संस्कृत टीकाकार नीलकण्ठने "भदि कल्याणे सुखेच" इस धातुसे सन् प्रत्यय लगाकर यह रूप बताया है।

दिष्ट्या त्वां पार्थ पश्यामि स्वागतं ते धनंजय।
लोहिताक्ष महाबाहो नागराजकरोपम।
यदज्ञानादवोचं त्वां क्षन्तुमर्हसि तन्मम ॥ २२ ॥

हे हाथीकी सूंडके समान लम्बी भुजाओंवाले धनञ्जय! मैं सौभाग्यसे ही आज आपके दर्शन कर रहा हूँ और मैं आपका स्वागत करता हूं ॥ २२ ॥

यतस्त्वया कृतं पूर्वं विचित्रं कर्म दुष्करम्।
अतो भयं व्यतीतं मे प्रीतिश्च परमा त्वयि ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ १०६७ ॥

मैं जो कुछ अज्ञानसे आपसे कह बैठा होऊं, उसे क्षमा करो। क्योंकि आपने जो पहले बडे बडे घोर और विचित्र कर्म किये हैं, उनका स्मरण करनेसे मेरा सब भय दूर हो गया है और आपमें बहुत प्रीति बढ गई है ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें उन्तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ३९ ॥ १०६७ ॥

: ४० :

उत्तर उवाच

आस्थाय विपुलं वीर रथं सारथिना मया।
कतमं यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥ १ ॥

उत्तर बोला– हे वीर! आप मुझ सारथीके सहित इस उत्तम रथमें बैठकर कौनसी सेनासे युद्ध करना चाहते हैं? कहिये, मैं उसी सेनाकी ओर चलूंगा ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

प्रीतोऽस्मि पुरुषव्याघ्र न भयं विद्यते तव।
सर्वान्नुदामि ते शत्रून्रणे रणविशारद ॥ २ ॥

अर्जुन बोले– हे पुरुषसिंह! हे युद्धविद्याको जाननेवाले! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम कुछ भी भय मत करो। मैं तुम्हारे सब शत्रुओंको युद्धमें तितरबितर कर दूंगा ॥ २ ॥

स्वस्थो भव महाबुद्धे पश्य मां शत्रुभिः सह।
युध्यमानं विमर्देऽस्मिन्कुर्वाणं भैरवं महत् ॥ ३ ॥

हे महाबुद्धिमान् उत्तर! तुम स्वस्थ होओ, और शत्रुओंसे युद्ध करते हुए इस युद्धमें मैं जो भयङ्कर कार्य करूंगा, उन्हें देखो ॥ ३ ॥

एतान्सर्वानुपासंगान्क्षिप्रं बध्नीहि मे रथे।
एनं चाहर निस्त्रिंशं जातरूपपरिष्कृतम्
अहं वै कुरुभिर्योत्स्याम्यवजेष्यामि ते पशून् ॥ ४ ॥

तुम शीघ्र ही मेरे रथमें इन तूणीरोंको बांध दो और सोनेकी मूठवाला एक खड्ग ले आओ। मैं कौरवोंसे युद्ध करके तुम्हारे पशुओंको जीत लूँगा ॥ ४ ॥

संकल्पपक्षविक्षेपं बाहुप्राकारतोरणम्।
त्रिदण्डतूणसंबाधमनेकध्वजसंकुलम् ॥ ५ ॥
ज्याक्षेपणं क्रोधकृतं नेमीनिनददुंदुभि।
नगरं ते मया गुप्तं रथोपस्थं भविष्यति ॥ ६ ॥

तुम निर्भीक होकर मेरे सारथिका काम करो, तुम्हारे इस रथपर बैठनेके जगहकी रक्षा मैं नगरीके समान करूंगा। चक्र, ध्वजा आदि इस रथरूपी नगरीके रास्तेके दोनों ओर के प्रदेश हैं। मेरी भुजायें ही इस नगरके परकोटेके बन्धनवार हैं। रथके तीन डण्डे और तरकश ही इस रथरूपी नगरके रास्ते हैं। इस रथपर लगी हुई अनेक पताकायें ही नगरमें फहरानेवाली पताकायें हैं। धनुषकी डोरी ही इस रथरूपी नगरमें लगी हुई तोप है। क्रोधसे यह नगर सजाया गया है, रथके पहियोंकी घरघराहट ही इस नगरमें बजनेवाले ढोलोंकी आवाज है ॥ ५–६ ॥

अधिष्ठितो मया संख्ये रथो गांडीवधन्वना।
अजेयः शत्रुसैन्यानां वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ ७ ॥

हे विराटपुत्र ! तुम अपने भयका परित्याग कर दो, गांडीव धनुष लेकर मेरे द्वारा युद्धमें रक्षित यह रथ शत्रुकी सेनाके लिए अजेय है ॥ ७ ॥

उत्तर उवाच

बिभेमि नाहमेतेषां जानामि त्वां स्थिरं युधि।
केशवेनापि संग्रामे साक्षादिंद्रेण वा समम् ॥ ८ ॥

उत्तर बोला– मैं इन कौरवोंसे नहीं डरता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप युद्धमें डगमगानेवाले नहीं हैं। आप संग्राममें साक्षात् केशव अथवा इन्द्रकी बराबरी भी कर सकते हैं ॥ ८ ॥

इदं तु चिन्तयन्नेव परिमुह्यामि केवलम्।
निश्चयं चापि दुर्मेधा न गच्छामि कथंचन ॥ ९ ॥

पर आपकी यह वर्तमान स्थितिको देखकर मैं भ्रान्त हो रहा हूँ और मुझ दुर्बुद्धिको एक ऐसा सन्देह है कि उसका निश्चय नहीं होता ॥ ९ ॥

एवं वीरांगरूपस्य लक्षणैरुचितस्य च ।
केन कर्मविपाकेन क्लीबत्वमिदमागतम् ॥ १० ॥

वीरोंके अनेक लक्षणोंसे युक्त और सुन्दर होकर भी किस कर्मफलके कारण आपको यह नपुंसकका रूप धारण करना पडा ? ॥ १० ॥

मन्ये त्वां क्लीबवेषेण चरन्तं शूलपाणिनम् ।
गन्धर्वराजप्रतिमं देवं वापि शतक्रतुम् ॥ ११ ॥

इस नपुंसक रूपको धारण करनेवाले आपको मैं साक्षात् शिव, गन्धर्वराज अथवा अद्वितीय देव इन्द्र ही समझता हूँ ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच

भ्रातुर्नियोगाज्ज्येष्ठस्य संवत्सरमिदं व्रतम् ।
चरामि ब्रह्मचर्यं वै सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १२ ॥

अर्जुन बोले– मैं सच कहता हूँ कि अपने बडे भाईकी आज्ञाहीसे एकवर्ष तक इस ब्रह्मचर्य व्रतको करता रहा हूँ ॥ १२ ॥

नास्मि क्लीबो महाबाहो परवान्धर्मसंयुतः ।
समाप्तव्रतमुत्तीर्णं विद्धि मां त्वं नृपात्मज ॥ १३ ॥

परन्तु, हे महाबाहो राजपुत्र ! वास्तवमें मैं नपुंसक नहीं हूँ। पराधीन और धर्मपरायण हूँ पर अब यह व्रत समाप्त हो गया है और मैं उस व्रतमें उत्तीर्ण हो गया हूँ, ऐसा तुम समझो ॥१३॥

उत्तर उवाच

परमोऽनुग्रहो मेऽद्य यत्प्रतर्को न मे वृथा ।
न हीदृशाः क्लीबरूपा भवन्तीह नरोत्तमाः ॥ १४ ॥

उत्तर बोला– मेरा तर्क गलत नहीं था, यह मुझपर एक बडा भारी उपकार हुआ । क्योंकि ऐसे नरश्रेष्ठ नपुंसक नहीं होते ॥ १४ ॥

सहायवानस्मि रणे युध्येयममरैरपि ।
साध्वसं तत्प्रनष्टं मे किं करोमि ब्रवीहि मे ॥ १५ ॥

अब मेरा सब भय दूर हो गया और मैं आपकी सहायतासे सब देवोंके साथ भी युद्ध कर सकता हूं, कहो, अब मैं कौनसा काम करूं ? ॥ १५ ॥

अहं ते संग्रहीष्यामि हयाञ्शत्रुरथारुजः ।
शिक्षितो ह्यस्मि सारथ्ये तीर्थतः पुरुषर्षभ ॥ १६ ॥

हे पुरुषसिंह ! मैं आपके शत्रुओंके रथ तोडनेवाले घोडोंकी लगाम पकडूंगा, मैंने सारथिकी विद्या गुरुसे सीखी है ॥ १६ ॥

दारुको वासुदेवस्य यथा शक्रस्य मातलिः।
तथा मां विद्धि सारथ्ये शिक्षितं नरपुंगव ॥ १७ ॥

हे पुरुषोत्तम ! जैसे इन्द्रके मातलि और कृष्णके दारुक सारथि हैं, उसी प्रकार मुझे भी सारथिके काममें कुशल समझिए ॥ १७ ॥

यस्य याते न पश्यन्ति भूमौ प्राप्तं पदं पदम्।
दक्षिणं यो धुरं युक्तः सुग्रीवसदृशो हयः ॥ १८ ॥

जिसके चलते समय भूमिपर पडते हुए चरण नहीं दिखाई पडते हैं, जो दाहिनी ओरकी धुरामें जुडा हुआ है, वह घोडा साक्षात् सुग्रीवके समान बलवान् है ॥ १८ ॥

योऽयं धुरं धुर्यवरो वामं वहति शोभनः।
तं मन्ये मेघपुष्पस्य जवेन सदृशं हयम् ॥ १९ ॥

जो सुन्दर घोडा बांई ओरकी धुरामें जुडा हुआ है, वह वेगमें मेघपुष्पके समान है, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ १९ ॥

योऽयं कांचनसंनाहः पार्ष्णिं वहति शोभनः।
वामं सैन्यस्य मन्ये तं जवेन बलवत्तरम् ॥ २० ॥

जो सुन्दर घोडा सोनेका कवच पहने हुए है और बाँई ओर जुडा हुआ है, वह सैन्य घोडेकी अपेक्षा ज्यादा वेगवान् और बलवान् है ॥ २० ॥

योऽयं वहति ते पार्ष्णिं दक्षिणामश्चितोद्यतः।
बलाहकादपि मतः स जवे वीर्यवत्तरः ॥ २१ ॥

भागनेके लिये आतुर जो घोडा आपकी दाहिनी ओर जुडा हुआ है, वह वेग और बलमें कृष्णके घोडे बलाहकसे भी अधिक है, ऐसा मेरा मत है ॥ २१ ॥

त्वामेवायं रथो वोढुं संग्रामेऽर्हति धन्विनम्।
त्वं चेमं रथमास्थाय योद्‌धुमर्हो मतो मम ॥ २२ ॥

मेरा विचार है कि यह रथ संग्राममें आप जैसे धनुर्धारीको ही ले जाने योग्य है और आप भी इस रथ पर बैठकर शत्रुओंसे युद्ध कर सकते हैं ॥ २२ ॥

वैशंपायन उवाच

ततो निर्मुच्य बाहुभ्यां वलयानि स वीर्यवान्।
चित्रे दुंदुभिसंनादे प्रत्यमुंचत्तले शुभे ॥ २३ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर उस महाबलवान् अर्जुनने अपनी बाहुओंपरसे बाजूबन्द उतार-डाले और दुन्दुभिके समान शब्द करनेवाले चमडेके सुन्दर दस्ताने पहन लिए ॥ २३ ॥

कृष्णान्भंगीमतः केशाञ्श्वेतेनोद्ग्रथ्य वाससा ।
अधिज्यं तरसा कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २४ ॥

फिर अपने घुंघराले काले बालोंको सफेद कपडेसे बांधकर अर्जुनने शीघ्रतासे गाण्डीव धनुषपर प्रत्यञ्चा चढाकर धनुषकी टंकार दी ॥ २४ ॥

तस्य विक्षिप्यमाणस्य धनुषोऽभून्महास्वनः ।
यथा शैलस्य महतः शैलेनैवाभिजघ्नुषः ॥ २५ ॥

इस प्रकार टंकार करनेवाले अर्जुनके धनुषकी ऐसी भयंकर आवाज हुई कि जैसे एक पर्वतके दूसरे पर्वतसे टकरानेपर होती है ॥ २५ ॥

सनिर्घाताभवद्भूमिर्दिक्षु वायुर्ववौ भृशम् ।
भ्रान्तद्विजं खं तदासीत्प्रकंपितमहाद्रुमम् ॥ २६ ॥

उस समय पृथ्वी कांपने लगी, दिशाओंमें घोर वायु चलने लगी, आकाशमें उडनेवाले पक्षी भी भ्रान्त हो गए और बडे बडे वृक्ष कांपने लगे ॥ २६ ॥

तं शब्दं कुरवोऽजानन्विस्फोटमशनेरिव ।
यदर्जुनो धनुःश्रेष्ठं बाहुभ्यामाक्षिपद्रथे ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ १०९४ ॥

अर्जुनने रथमें बैठकर अपनी बाहुओंसे जो धनुषटंकार की, उसकी आवाज कौरवोंको वज्रके स्फोटके समान मालूम पडी ॥ २७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४० ॥ १०९४ ॥

४१

वैशम्पायन उवाच

उत्तरं सारथिं कृत्वा शमीं कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
आयुधं सर्वमादाय ततः प्रायाद्धनंजयः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! तत्पश्चात् पाण्डवोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उत्तरको सारथी बनाकर शमीवृक्षकी प्रदक्षिणा की और सब शस्त्रोंको लेकर चले ॥ १ ॥

ध्वजं सिंहं रथात्तस्मादपनीय महारथः ।
प्रणिधाय शमीमूले प्रायादुत्तरसारथिः ॥ २ ॥

महारथी अर्जुनने उत्तरकी सिंहयुक्त ध्वजाको उस रथसे उतारकर शमीवृक्षकी जडके पास रख दिया; और उत्तरको सारथि बनाकर चल दिये ॥ २ ॥

देवीं मायां रथे युक्त्वा विहितां विश्वकर्मणा।
काञ्चनं सिंहलांगूलं ध्वजं वानरलक्षणम् ॥ ३ ॥

अर्जुनने विश्वकर्माके द्वारा निर्मित दैवी मायाको रथमें स्थापित किया और हनुमान्से युक्त सोनेकी ध्वजाको रथमें लगाया। उस ध्वजामें चिन्हित वानरकी पूंछ शत्रुओंका विनाश करनेवाली थी ॥ ३ ॥

मनसा चिन्तयामास प्रसादं पावकस्य च।
स च तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ध्वजे भूतान्यचोदयत् ॥ ४ ॥

फिर अर्जुनने अग्निके वरदानका मनसे ध्यान किया। अर्जुनके ध्यान करते ही अग्निने अनेक प्राणियोंको उनकी ध्वजापर बैठने लिये भेजा ॥ ४ ॥

सपताकं विचित्राङ्गं सोपासङ्गं महारथः।
रथमास्थाय बीभत्सुः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् वह महारथी कल्याणकारी, सफेद घोडोंवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन पताकासे युक्त, अद्भुत अंगोंवाले, उत्तम बैठकवाले रथपर चढे ॥ ५ ॥

बद्धासिः सतनुत्राणः प्रगृहीतशरासनः।
ततः प्रायादुदीचीं स कपिप्रवरकेतनः ॥ ६ ॥

फिर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्की पताकावाले अर्जुन तलवार बांधकर, कवच पहनकर और धनुष लेकर उत्तर दिशाकी तरफ चल दिए ॥ ६ ॥

स्वनवन्तं महाशङ्खं बलवानरिमर्दनः।
प्राधमद्बलमास्थाय द्विषतां लोमहर्षणम् ॥ ७ ॥

कुछ दूर जाकर बलवान् शत्रुनाशक अर्जुनने शत्रुओंके रोंगटोंको खडा कर देनेवाले, बडी आवाज करनेवाले शङ्खको जोरसे बजाया ॥ ७ ॥

ततस्ते जवना धुर्या जानुभ्यामगमन्महीम्।
उत्तरश्चापि संत्रस्तो रथोपस्थ उपाविशत् ॥ ८ ॥

उस शब्दको सुनते ही अर्जुनके बलवान् घोडे भी पृथ्वीपर घुटनोंके बल बैठ गये और उत्तर भी भयभीत होकर रथके अग्रभागमें बैठ गया ॥ ८ ॥

संस्थाप्य चाश्वान्कौन्तेयः समुद्यम्य च रश्मिभिः।
उत्तरं च परिष्वज्य समाश्वासयदर्जुनः ॥ ९ ॥

अर्जुनने स्वयं लगाम खींचकर घोडोंको रोका और उत्तरको भी छातीसे लगा कर सान्त्वना दी ॥ ९ ॥

मा भैस्त्वं राजपुत्राग्र्य क्षत्रियोऽसि परंतप।
कथं पुरुषशार्दूल शत्रुमध्ये विषीदसि　　　॥ १० ॥

हे राजपुत्र ! तुम डरो मत । हे शत्रुनाशक ! तुम क्षत्रिय हो । हे पुरुषसिंह ! तुम शत्रुओंके बीचमें क्यों दुःखी होते हो ? ॥ १० ॥

श्रुतास्ते शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां च नदतां व्यूढानीकेषु तिष्ठताम्　　　॥ ११ ॥

तुमने अनेक युद्धोंमें बहुत बार शङ्खोंके शब्द, भेरीके शब्द और व्यूहोंमें खडे हुए हाथियोंकी चिंघाड सुनी ही है ॥ ११ ॥

स त्वं कथमिहानेन शङ्खशब्देन भीषितः ।
विषण्णरूपो वित्रस्तः पुरुषः प्राकृतो यथा　　　॥ १२ ॥

तो फिर तुम यहां केवल इस शंखके शब्दसे क्यों डर गये ? तुम्हारे मुखका रङ्ग सामान्य पुरुषके समान निस्तेज हो गया है ॥ १२ ॥

उत्तर उवाच

श्रुता मे शङ्खशब्दाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ।
कुञ्जराणां च निनदा व्यूढानीकेषु तिष्ठताम्　　　॥ १३ ॥

उत्तर बोला– मैंने अनेकबार शंखके शब्द, भेरीके शब्द और व्यूह बनाकर युद्धमें उपस्थित सेनाओंमें हाथियोंके शब्द भी सुने हैं ॥ १३ ॥

नैवंविधः शङ्खशब्दः पुरा जातु मया श्रुतः ।
ध्वजस्य चापि रूपं मे दृष्टपूर्वं न हीदृशम् ।
धनुषश्चैव निर्घोषः श्रुतपूर्वो न मे क्वचित्　　　॥ १४ ॥

परन्तु ऐसा शंखका शब्द मैंने पहले कभी भी नहीं सुना। ध्वजाका ऐसा रूप भी मैंने पहले कभी नहीं देखा था और ऐसा धनुषका शब्द भी मैंने पहले कभी नहीं सुना था ॥ १४ ॥

अस्य शङ्खस्य शब्देन धनुषो निस्वनेन च ।
रथस्य च निनादेन मनो मुह्यति मे भृशम्　　　॥ १५ ॥

इस शंखके शब्दसे और धनुषकी टंकारसे तथा रथकी घरघराहटसे मेरा मन बुरी तरह मोहित हो रहा है ॥ १५ ॥

×

व्याकुलाश्च दिशः सर्वा हृदयं व्यथतीव मे ।
ध्वजेन पिहिताः सर्वा दिशो न प्रतिभान्ति मे ।
गाण्डीवस्य च शब्देन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥ १६ ॥

सब दिशायें व्याकुल हो गई हैं, मेरा हृदय कांप रहा है। ध्वजाओंसे सब दिशायें भर गई हैं अतः मुझे उनका ज्ञान नहीं हो पा रहा । गाण्डीवके शब्दसे मेरे दोनों कान बहरे हो गये हैं ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच

एकन्ते रथमास्थाय पद्भ्यां त्वमवपीडय ।
दृढं च रश्मीन्संयच्छ शङ्खं ध्मास्याम्यहं पुनः ॥ १७ ॥

अर्जुन बोले– हे उत्तर! तुम एक तरफ रथको खडा करके पैरोंसे रथको पकड लो और दृढतासे घोडोंकी लगाम थाम लो, मैं पुनः शंख बजाता हूँ ॥ १७ ॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य शंखस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
गाण्डीवस्य च घोषेण पृथिवी समकम्पत ॥ १८ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुनकी उस शंखध्वनी, रथके पहियोंकी घरघराहट और गाण्डीवकी टंकारसे पृथ्वी कांप गई ॥ १८ ॥

द्रोण उवाच

यथा रथस्य निर्घोषो यथा शङ्ख उदीर्यते ।
कम्पते च यथा भूमिर्नैषोऽन्यः सव्यसाचिनः ॥ १९ ॥

द्रोणाचार्य बोले– जिसप्रकार रथकी घरघराहट हो रही है, जिस प्रकार शंख बजाया जा रहा है और जिस प्रकार यह पृथ्वी डगमगा रही है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि यह अर्जुनके सिवाय और कोई नहीं हो सकता ॥ १९ ॥

शस्त्राणि न प्रकाशन्ते न प्रहृष्यन्ति वाजिनः ।
अग्नयश्च न भासन्ते समिद्धास्तन्न शोभनम् ॥ २० ॥

हमारे शस्त्र प्रकाशित नहीं हो रहे, घोडे प्रसन्न होकर नहीं हिनहिनाते, आहुति देनेपर भी अग्नि नहीं जल रही, ये उत्तम लक्षण नहीं हैं ॥ २० ॥

प्रत्यादित्यं च नः सर्वे मृगा घोरप्रवादिनः ।
ध्वजेषु च निलीयन्ते वायसास्तन्न शोभनम् ।
शकुनाश्चापसव्या नो वेदयन्ति महद्भयम् ॥ २१ ॥

सूर्यकी ओर मुंह करके हमारे सभी पशु भयंकर शब्द कर रहे हैं। और हमारी ध्वजाओंपर कौवे बैठ रहे हैं, ये सब शकुन अच्छे नहीं हैं। मांस खानेवाले पक्षी दाहिनी ओरको उडते हुए हमें बडे भारी भयकी सूचना दे रहे हैं ॥ २१ ॥

गोमायुरेष सेनाया रुवन्मध्येऽनु धावति ।
अनाहतश्च निष्क्रान्तो महद्वेदयते भयम् ।
भवतां रोमकूपाणि प्रहृष्टान्युपलक्षये ॥ २२ ॥

यह रोता हुआ सियार हमारी सेनाके बीचमेंसे दौडा जाता है और वह किसीसे भी न मारा जाकर निकल गया है, यह हमारे लिए बडे भारी भयकी सूचना दे रहा है और तुम सबके रोमोंको खडा हुआ मैं देख रहा हूँ ॥ २२ ॥

पराभूता च वः सेना न कश्चिद्योद्‌धुमिच्छति ।
विवर्णमुखभूयिष्ठाः सर्वे योधा विचेतसः ।
गाः संप्रस्थाप्य तिष्ठामो व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ११९७ ॥

तुम्हारी सेना निरुत्साहित हो गई है और तुम्हारी सेनामेंसे कोई भी योद्धा लडना नहीं चाहता। सब योद्धाओंके मुख पीले पड गए हैं, और सभी भ्रान्तचित्तसे हो रहे हैं। इसलिए हम गायोंको आगे भेजकर व्यूह बनाकर तैय्यार हो जावें ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें इकतालिसवां अध्याय समाप्त ॥ ४१ ॥ ११९७ ॥

: ४२ :

वैशम्पायन उवाच

अथ दुर्योधनो राजा समरे भीष्ममब्रवीत् ।
द्रोणं च रथशार्दूलं कृपं च सुमहारथम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उसके बाद राजा दुर्योधनने रणभूमिमें भीष्म, रथीश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और महारथी कृपाचार्यसे कहा ॥ १ ॥

उक्तोऽयमर्थ आचार्यो मया कर्णेन चासकृत् ।
पुनरेव च वक्ष्यामि न हि तृप्यामि तं ब्रुवन् ॥ २ ॥

मैंने और कर्णने आचार्यसे बार बार कहा था और फिर भी कहता हूँ, क्योंकि इसके कहनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥

पराजितैर्हि वस्तव्यं तैश्च द्वादश वत्सरान् ।
वने जनपदेऽज्ञातैरेष एव पणो हि नः ॥ ३ ॥

जुवेमें पराजित हो जाने पर पाण्डव बारह वर्ष तक वनमें रहें और फिर एक वर्ष किसी भी एक देशमें अज्ञातवास करें, यही हम लोगोंमें बाजी लगी थी ॥ ३ ॥

तेषां न तावन्निर्वृत्तं वर्तते तु त्रयोदशम् ।
अज्ञातवासं बीभत्सुरथास्माभिः समागतः ॥ ४ ॥

अभी उन पाण्डवोंका तेरहवां वर्ष पूरा नहीं हुआ है । वह तो अभी चल ही रहा है, तो भी अर्जुन हमसे लडने आ पहुंचा ॥ ४ ॥

अनिवृत्ते तु निर्वासे यदि बीभत्सुरागतः ।
पुनर्द्वादश वर्षाणि वने वत्स्यन्ति पाण्डवाः ॥ ५ ॥

निर्वासकालके पूर्ण होनेसे पहले ही यदि अर्जुन आ गया है, तो पाण्डवोंको बारह वर्ष पुनः वनमें रहना होगा ॥ ५ ॥

लोभाद्वा ते न जानीयुरस्मान्वा मोह आविशत् ।
हीनातिरिक्तमेतेषां भीष्मो वेदितुमर्हति ॥ ६ ॥

परन्तु पाण्डव लोभके कारण समयकी अवधि न जान सकें हों, अथवा गिननेमें हमसे ही भूल हो गई हो तो कम या अधिक समयका ठीक निश्चय भीष्म ही कर सकते हैं ॥ ६ ॥

अर्थानां तु पुनर्द्वैधे नित्यं भवति संशयः ।
अन्यथा चिन्तितो ह्यर्थः पुनर्भवति चान्यथा ॥ ७ ॥

विषयोंके दो पक्ष होनेके कारण उनके निश्चय करनेमें प्रायः सन्देह हो ही जाता है । कोई विषय दूसरे प्रकारसे विचारा जाता है और वह दूसरे ही प्रकारसे हो जाता है ॥ ७ ॥

उत्तरं मार्गमाणानां मत्स्यसेनां युयुत्सताम् ।
यदि बीभत्सुरायातस्तेषां कः स्यात्पराङ्मुखः ॥ ८ ॥

हम लोग इस युद्धमें मत्स्यदेशकी सेनाके साथ युद्ध करना चाहते थे, और उत्तरका मार्ग देख रहे थे, परन्तु अर्जुन यदि आ गया हो तो भी उसे अपनी पीठ कौन दिखायेगा ? ॥८॥

त्रिगर्तानां वयं हेतोर्मत्स्यान्योद्धुमिहागताः ।
मत्स्यानां विप्रकारांस्ते बहूनस्मानकीर्तयन् ॥ ९ ॥

हम लोग राजा सुशर्माकी सहायता करनेके लिये राजा विराटसे लडनेके लिये आये थे, और आपके आगे उन त्रिगर्तोंने विराटके अनेक दोष भी हमसे कहे थे ॥ ९ ॥

तेषां भयाभिपन्नानां तदस्माभिः प्रतिश्रुतम् ।
प्रथमं तैर्ग्रहीतव्यं मत्स्यानां गोधनं महत् ॥ १० ॥

उन भयभीत त्रिगर्तोंसे हमने प्रतिज्ञा की और कहा कि वे प्रथम जाकर मत्स्योंके महान् गोधन पर अधिकार कर लें ॥ १० ॥

सप्तमीमपराह्णे वै तथा नस्तैः समाहितम् ।
अष्टम्यां पुनरस्माभिरादित्यस्योदयं प्रति ॥ ११ ॥

सप्तमीके अपराह्णमें उन्होंने उन गायों पर अधिकार भी कर लिया । हमें भी अष्टमीके दिन सूर्योदयके समय चल देना था ॥ ११ ॥

ते वा गावो न पश्यन्ति यदि वा स्युः पराजिताः ।
अस्मान्वाप्यतिसंधाय कुर्युर्मत्स्येन संगतम् ॥ १२ ॥

ऐसी अवस्थामें या तो त्रिगर्त गायें हांक लाते, या विराटोंसे पराजित हो जाते अथवा हमें धोखा देकर मत्स्यराजाके साथ संधि कर लेते ॥ १२ ॥

अथवा तानुपायातो मत्स्यो जानपदैः सह ।
सर्वया सेनया सार्धमस्मान्योद्धुमुपागतः ॥ १३ ॥

हमें जान पडता है कि विराट त्रिगर्त्त देशके क्षत्रियोंका पीछा करता हुआ अपने सभी नगर वासियों और सेनाके साथ हमसे युद्ध करने आया है ॥ १३ ॥

तेषामेव महावीर्यः कश्चिदेव पुरःसरः ।
अस्माञ्जेतुमिहायातो मत्स्यो वापि स्वयं भवेत् ॥ १४ ॥

उन्हींमेंसे अर्थात् राजा विराटके पुरुषोंमेंसे यह कोई महाबलवान् वीर है जो आगे बढकर हम लोगोंमे युद्ध करने यहां चला आता है अथवा यह स्वयं मत्स्यराज विराट भी हो सकता है ॥ १४ ॥

यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः ।
सर्वैर्योद्धव्यमस्माभिरिति नः समयः कृतः ॥ १५ ॥

पर अब चाहे यह विराट हो, चाहे अर्जुन हो, हम लोगोंको मिलकर युद्ध करना ही है, यही हमारा विचार है ॥ १५ ॥

अथ कस्मात्स्थिता ह्येते रथेषु रथसत्तमाः ।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव विकर्णो द्रौणिरेव च ॥ १६ ॥
संभ्रान्तमनसः सर्वे काले ह्यस्मिन्महारथाः ।
नान्यत्र युद्धाच्छ्रेयोऽस्ति तथात्मा प्रणिधीयताम् ॥ १७ ॥

न जाने ये सर्वश्रेष्ठ रथी भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण और अश्वत्थामा आदि महारथी इससमय घबराये चित्तवाले होकर रथोंमें क्यों बैठे हैं ? हे वीरो ! इस समय युद्धके अतिरिक्त और किसी बातमें हमारा कल्याण नहीं है, इसलिए सब अपने मन स्थिर कर लें ॥ १६-१७ ॥

किमत्र कार्यं पार्थस्य कथं वा स प्रशस्यते ।
अन्यत्र कामाद्द्वेषाद्वा रोषाद्वास्मासु केवलात् ॥ २५ ॥

इसमें अर्जुनका क्या कर्तृत्व है और इसमें अर्जुनकी प्रशंसा करनेकी कौनसी बात है ? ऐसा जान पडता है, कि आचार्यके चित्तमें हम लोगोंके प्रति कुछ द्वेष, काम, या क्रोध भरा हुआ है ॥ २५ ॥

आचार्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापायदर्शिनः ।
नैते महाभये प्राप्ते संप्रष्टव्याः कथंचन ॥ २६ ॥

आचार्य दयावान्, पण्डित और धर्मदर्शी होते हैं; इसलिये इनसे महाभयके प्राप्त होनेपर कुछ सम्मति नहीं पूछनी चाहिये ॥ २६ ॥

प्रासादेषु विचित्रेषु गोष्ठीष्वावसथेषु च ।
कथा विचित्राः कुर्वाणाः पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ २७ ॥

उत्तम महलों, सभा और उद्यानोंमें बैठकर उत्तम कथा कहनेके समय पण्डितोंको बुलाना चाहिये ॥ २७ ॥

बहून्याश्चर्यरूपाणि कुर्वन्तो जनसंसदि ।
इष्वस्त्रे चारुसन्धाने पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ २८ ॥

जब अनेक आश्चर्य सभामें दिखलाने हों, या यज्ञसे कोई सिद्धि प्राप्त करनी हो तब पण्डितोंसे संमति पूछनी चाहिये ॥ २८ ॥

परेषां विवरज्ञाने मनुष्याचरितेषु च ।
अन्नसंस्कारदोषेषु पण्डितास्तत्र शोभनाः ॥ २९ ॥

जहां शत्रुका छिद्र (बुराई) देखना हो, किसी मनुष्यका आचरण पूछना हो, अन्नके संस्कार तथा दोष पूछने हों तभी पण्डितोंकी संमति लेनी चाहिये ॥ २९ ॥

पण्डितान्पृष्ठतः कृत्वा परेषां गुणवादिनः ।
विधीयतां तथा नीतिर्यथा वध्येत वै परः ॥ ३० ॥

इस समय शत्रुओंके गुणकी प्रशंसा करनेवाले पण्डितोंको अपनी पीठके पीछे करके ऐसी नीति निश्चित कीजिए कि जिससे शत्रुओंका नाश हो ॥ ३० ॥

गावश्चैव प्रतिष्ठन्तां सेनां व्यूहन्तु माचिरम् ।
आरक्षाश्च विधीयन्तां यत्र योत्स्यामहे परान् ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ११४८ ॥

गायोंको जाने दीजिए और उनकी रक्षाके लिए शीघ्र ही सेनाका ऐसा व्यूह बनाना चाहिये कि जहां खडे होकर हम लोग शत्रुओंसे युद्ध कर सकें ॥ ३१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥ ११४८ ॥

: ४३ :

कर्ण उवाच

सर्वानायुष्मतो भीतान्संत्रस्तानिव लक्षये ।
अयुद्धमनसश्चैव सर्वांश्चैवानवस्थितान् ॥ १ ॥

कर्ण बोला– मैं सभी चिरंजीव योद्धाओंको डरे हुए, घबराये हुए, सभीके मन चंचल हुए और युद्ध करनेमें निरुत्साहित देख रहा हूं ॥ १ ॥

यद्येष राजा मत्स्यानां यदि बीभत्सुरागतः ।
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ॥ २ ॥

यदि यह राजा विराट या स्वयं अर्जुन ही युद्ध करनेके लिए आया होगा, तो भी मैं उसको इसप्रकार रोकूंगा जैसे तट समुद्रको रोकता है ॥ २ ॥

मम चापप्रमुक्तानां शराणां नतपर्वणाम् ।
नावृत्तिर्गच्छतामस्ति सर्पाणामिव सर्पताम् ॥ ३ ॥

धनुषसे छोडे गए सर्पोंके समान वेगसे जानेवाले झुके हुए अग्रभागवाले ये मेरे महाबाण बिना शत्रुओंका नाश किये कभी नहीं लौटेंगे ॥ ३ ॥

रुक्मपुङ्खाः सुतीक्ष्णाग्रा मुक्ता हस्तवता मया ।
छादयन्तु शराः पार्थं शलभा इव पादपम् ॥ ४ ॥

आज मुझ वीरके हाथसे छूटे हुए सोनेके पंख और तेज धारवाले बाण अर्जुनको इस प्रकार छा लेंगे, जैसे टिड्डियां वृक्षको छा लेती हैं ॥ ४ ॥

शराणां पुङ्खसक्तानां मौर्व्याभिहतया दृढम् ।
श्रूयतां तलयोः शब्दो भेर्योराहतयोरिव ॥ ५ ॥

जिनके पंख सटे हुए हैं, ऐसे मेरे बाणों पर धनुषकी डोरीके प्रहार होनेपर मेरी हथेलियोंकी ध्वनि ऐसी सुनाई देगी कि मानो कहीं नगाडे बज रहे हों ॥ ५ ॥

समाहितो हि बीभत्सुर्वर्षाण्यष्टौ च पञ्च च ।
जातस्नेहश्च युद्धस्य मयि संप्रहरिष्यति ॥ ६ ॥

अर्जुन आठ और पांच अर्थात् तेरह वर्षोंसे वनमें रह रहा है, इसलिए युद्धके लिए स्नेहयुक्त और उत्सुक हुआ हुआ वह मेरे ऊपर प्रहार करेगा ॥ ६ ॥

पात्रीभूतश्च कौन्तेयो ब्राह्मणो गुणवानिव ।
शरौघान्प्रतिगृह्णातु मया मुक्तान्सहस्रशः ॥ ७ ॥

आज अर्जुन गुणवान् ब्राह्मणके समान दानपात्र बनकर मेरे द्वारा छोडे गए सहस्रों बाणोंको दक्षिणाके रूपमें ग्रहण करे ॥ ७ ॥

एष चैव महेष्वासस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
अहं चापि कुरुश्रेष्ठा अर्जुनान्नावरः क्वचित् ॥ ८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठो ! यह वीर अर्जुन यदि तीनों लोकोंके धनुर्धारियोंमें प्रसिद्ध है, तो मैं भी अर्जुनसे किसी भी प्रकार कम नहीं हूं ॥ ८ ॥

इतश्चेतश्च निर्मुक्तैः काञ्चनैर्गार्ध्रवाजितैः ।
दृश्यतामद्य वै व्योम खद्योतैरिव संवृतम् ॥ ९ ॥

अब सोनेसे मढे हुए, गिद्धके पंखोंसे युक्त मेरे धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे आकाश इसप्रकार व्याप्त हो जाये, जैसे बरसातमें वह जुगुनुओंसे व्याप्त होता है ॥ ९ ॥

अद्याहमृणमक्षय्यं पुरा वाचा प्रतिश्रुतम् ।
धार्तराष्ट्रस्य दास्यामि निहत्य समरेऽर्जुनम् ॥ १० ॥

आज मैं अर्जुनको युद्धमें मारकर अपने दिए गए वचनोंके अनुसार धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधनके सरलतासे न चुकाने योग्य ऋणसे छूटूंगा ॥ १० ॥

अन्तरा छिद्यमानानां पुङ्खानां व्यतिशीर्यताम् ।
शलभानामिवाकाशे प्रचारः संप्रदृश्यताम् ॥ ११ ॥

हृदयोंको भी छेदनेवाले तथा पंखवाले मेरे बाण आकाशमें इस प्रकार घूमते हुए दिखाई दें कि, जैसे आकाशमें पतङ्गे घूम रहे हों ॥ ११ ॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शं महेन्द्रसमतेजसम् ।
अर्दयिष्याम्यहं पार्थमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥ १२ ॥

आज मैं इन्द्रके वज्रके समान धनुषको धारण करनेवाले और इन्द्रके समान तेजस्वी अर्जुनको युद्धसे इस प्रकार भगाऊंगा जैसे पुरुष मशालसे हाथीको भगाता है ॥ १२ ॥

तमग्निमिव दुर्धर्षमसिशक्तिशरेन्धनम् ।
पाण्डवाग्निमहं दीप्तं प्रदहन्तमिवाहितम् ॥ १३ ॥
अश्ववेगपुरोवातो रथौघस्तनयित्नुमान् ।
शरधारो महामेघः शमयिष्यामि पाण्डवम् ॥ १४ ॥

उस अग्निके समान अजेय, तलवार, शक्ति और बाणरूपी ईन्धनोंसे प्रज्वलित, शत्रुओंको जलानेवाले तथा प्रदीप्त हुए पाण्डवरूपी अग्निको अश्ववेगरूपी पूर्वदिशाकी वायु, रथघोषरूपी गर्जनाके साथ बाणोंकी धारा बरसानेवाला महामेघरूपी मैं शान्त कर दूंगा ॥ १३-१४ ॥

मत्कार्मुकविनिर्मुक्ताः पार्थमाशीविषोपमाः ।
शराः समभिसर्पन्तु वल्मीकमिव पन्नगाः ॥ १५ ॥

मेरे धनुषसे छूटे हुए विषैले सर्पके तुल्य बाण अर्जुनकी ओर इस प्रकार जायें जैसे सांप बिलकी ओर जाते हैं ॥ १५ ॥

जामदग्न्यान्मया ह्यस्त्रं यत्प्राप्तमृषिसत्तमात् ।
तदुपाश्रित्य वीर्यं च युध्येयमपि वासवम् ॥ १६ ॥

मैंने जो ऋषिओंमें श्रेष्ठ परशुरामसे शस्त्र सीखा है, उस शस्त्रविद्या तथा अपने बलका सहारा लेकर तो मैं साक्षात् इन्द्रके साथ भी युद्ध कर सकता हूं ॥ १६ ॥

ध्वजाग्रे वानरस्तिष्ठन्भल्लेन निहतो मया ।
अद्यैव पततां भूमौ विनदन्भैरवान्रवान् ॥ १७ ॥

अर्जुनकी ध्वजाके आगे बैठा हुआ बन्दर मेरे भालेसे आहत होकर घोर शब्द करता हुआ आजही पृथ्वी पर गिरे ॥ १७ ॥

शत्रोर्मयाभिपन्नानां भूतानां ध्वजवासिनाम् ।
दिशः प्रतिष्ठमानानामस्तु शब्दो दिवं गतः ॥ १८ ॥

शत्रुकी ध्वजापर बैठे हुए भूतोंका ऐसा संहार करूंगा कि वे दसों दिशाओंमें भागते नजर आयेंगे और भागते हुए उनकी चिल्लाहट द्युलोकको भी छूने लगेगी ॥ १८ ॥

अद्य दुर्योधनस्याहं शल्यं हृदि चिरस्थितम् ।
समूलमुद्धरिष्यामि बीभत्सुं पातयन्रथात् ॥ १९ ॥

युद्धभूमिमें अर्जुनको रथसे नीचे गिराकर आज मैं दुर्योधनके हृदयमें चिरकालसे स्थित कांटेको मूलसहित निकाल दूंगा ॥ १९ ॥

हताश्वं विरथं पार्थं पौरुषे पर्यवस्थितम् ।
निःश्वसन्तं यथा नागमद्य पश्यन्तु कौरवाः ॥ २० ॥

अपने सामर्थ्यको दिखानेमें तत्पर अर्जुनके घोडोंको मारकर रथसे हीन कर दूंगा, तब कौरव अर्जुनको मारे गए सर्पके समान सांस लेता हुआ देखें ॥ २० ॥

कामं गच्छन्तु कुरवो धनमादाय केवलम् ।
रथेषु वापि तिष्ठन्तो युद्धं पश्यन्तु मामकम् ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ११६९ ॥

सब कौरवोंकी जहां इच्छा हो वहां धन लेकर चले जायें, अथवा यहीं रथोंमें बैठकर मेरे युद्धको देखें ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तैतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४३ ॥ ११६९ ॥

: ४४ :

कृप उवाच

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः ।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्थ नानुबन्धमवेक्षसे ॥ १ ॥

कृपाचार्य बोले– राधापुत्र कर्ण! युद्धमें तेरी बुद्धि हमेशा क्रूर होती है। युद्धमें तुझे न कार्योंके स्वभावका ज्ञानही होता है और न कार्योंके परिणामका ही ज्ञान ॥ १ ॥

नया हि बहवः सन्ति शास्त्राण्याश्रित्य चिन्तिताः ।
तेषां युद्धं तु पापिष्ठं वेदयन्ति पुराविदः ॥ २ ॥

शास्त्रोंका सहारा लेकर विचार करने पर अनेक तरहकी नीतियां जानी जा सकती हैं, पर प्राचीन ज्ञानी उन छल कपट आदि नीतियोंके द्वारा किये जानेवाले युद्धको अत्यधिक पापमय बताते हैं ॥ २ ॥

देशकालेन संयुक्तं युद्धं विजयदं भवेत् ।
हीनकालं तदेवेह फलवन्न भवत्युत ।
देशे काले च विक्रान्तं कल्याणाय विधीयते ॥ ३ ॥

जो युद्ध देश और कालके अनुसार होता है, उसीसे विजय प्राप्त होती है, पर यदि वही युद्ध देश और कालके प्रतिकूल हो, तो वह उत्तम परिणामको देनेवाला नहीं होता। कालके अनुसार प्रकट किया गया शौर्य ही कल्याणकारी होता है ॥ ३ ॥

आनुकूल्येन कार्याणामन्तरं संविधीयताम् ।
भारं हि रथकारस्य न व्यवस्यन्ति पण्डिताः ॥ ४ ॥

देश और कालकी अनुकूलता पर ही कार्यकी सफलता अवलम्बित रहती है। कोई रथकार यदि कह दे कि मैंने एक दृढ रथ तैय्यार किया है तो उस रथकारकी बात पर विश्वास करके ज्ञानी युद्ध करनेका निश्चय नहीं कर लेते ॥ ४ ॥

परिचिन्त्य तु पार्थेन संनिपातो न नः क्षमः ।
एकः कुरूनभ्यरक्षदेकश्चाग्निमतर्पयत् ॥ ५ ॥

अर्जुनके बलको देखकर हमें निश्चय होता है कि हम लोगोंमें अर्जुनसे युद्ध करने योग्य कोई नहीं है। यह अकेलाही कौरवोंसे युद्ध करनेको चला आया, अकेलेनेही खाण्डवबनमें अग्निको तृप्त किया था ॥ ५ ॥

एकश्च पञ्च वर्षाणि ब्रह्मचर्यमधारयत् ।
एकः सुभद्रामारोप्य द्वैरथे कृष्णमाह्वयत् ।
अस्मिन्नेव वने कृष्णो हृतां कृष्णामवाजयत् ॥ ६ ॥

अकेलेनेही पांच वर्षतक ब्रह्मचर्य धारण किया। इसने अकेलेही सुभद्राको अपने रथपर बैठाकर कृष्णको द्वैरथ युद्ध करनेके लिये ललकारा था। कृष्णवर्णके अर्जुनने अकेलेही इसी बनमें जयद्रथसे हरी गई द्रौपदीको छुडाया था ॥ ६ ॥

एकश्च पञ्च वर्षाणि शक्रादस्त्राण्यशिक्षत ।
एकः सांयमिनीं जित्वा कुरूणामकरोद्यशः । ॥ ७ ॥

अकेलेने ही पांच वर्षतक इन्द्रसे विद्या सीखी। उसी इस अकेले अर्जुनने ही शत्रुओंको जीतकर कौरवोंका यश बढाया था ॥ ७ ॥

एको गन्धर्वराजानं चित्रसेनमरिन्दमः ।
विजिग्ये तरसा संख्ये सेनां चास्य सुदुर्जयाम् ॥ ८ ॥

शत्रुनाशक अर्जुनने अकेलेही चित्रसेन गन्धर्वराजको अपनी शक्तिसे युद्धमें जीता था और उसकी कठिनतासे जीतने योग्य सेनाको भी जीता था ॥ ८ ॥

तथा निवातकवचाः कालखञ्जाश्च दानवाः ।
दैवतैरप्यवध्यास्ते एकेन युधि पातिताः ॥ ९ ॥

अकेलेही अर्जुनने देवताओंसे भी अवध्य निवातकवच और कालखञ्ज राक्षसोंका युद्धमें नाश किया था ॥ ९ ॥

एकेन हि त्वया कर्ण किं नामेह कृतं पुरा ।
एकैकेन यथा तेषां भूमिपाला वशीकृताः ॥ १० ॥

पाण्डवोंमेंसे एक एकने सब राजाओंको अपने अधिकारमें कर लिया था पर, हे कर्ण! तू बता कि तूने अकेलेने पहले ऐसा कौनसा काम किया ? ॥ १० ॥

इन्द्रोऽपि हि न पार्थेन संयुगे योद्धुमर्हति ।
यस्तेनाशंसते योद्धुं कर्तव्यं तस्य भेषजम् ॥ ११ ॥

इन्द्र भी अर्जुनसे युद्धभूमिमें युद्ध नहीं कर सकता । जो पागल अर्जुनसे युद्ध करनेको कहे, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

आशीविषस्य क्रुद्धस्य पाणिमुद्यम्य दक्षिणम् ।
अविमृश्य प्रदेशिन्या दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ १२ ॥

तू बिना सोचे विचारे ही क्रोधमें भरे विषैले सर्पको दाहिने हाथसे पकडकर तर्जनी अङ्गुलीसे उसके दांत तोडना चाहता है ॥ १२ ॥

अथ वा कुञ्जरं मत्तमेक एव चरन्वने ।
अनङ्कुशं समारुह्य नगरं गन्तुमिच्छसि ॥ १३ ॥

अथवा तू वनमें अकेले घूमते हुए अंकुशरहित मतवाले हाथीपर चढकर नगरको जाना चाहता है ॥ १३ ॥

समिद्धं पावकं वापि घृतमेदोवसाहुतम् ।
घृताक्तश्चीरवासास्त्वं मध्येनोत्तर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥

अथवा घीसे भीगे हुए कपडे पहनकर तू घी और चर्बी डालकर अच्छीतरह प्रज्वलित की गई अग्निके बीचमेंसे चलकर जाना चाहता है ॥ १४ ॥

आत्मानं यः समुद्बध्य कण्ठे बद्ध्वा महाशिलाम् ।
समुद्रं प्रतरेद्दोर्भ्यां तत्र किं नाम पौरुषम् ॥ १५ ॥

कौन मूर्ख अपने गलेमें बडीसी शिला बांधकर समुद्रमें कूदकर हाथोंसे तैरकर उससे पार होनेकी इच्छा करेगा? और वैसा यदि कोई करे भी, तो उसमें उसका पराक्रम भी क्या है? वह तो उसकी मूर्खता है ॥ १५ ॥

अकृतास्त्रः कृतास्त्रं वै बलवन्तं सुदुर्बलः ।
तादृशं कर्ण यः पार्थं योद्धुमिच्छेत्स दुर्मतिः ॥ १६ ॥

हे कर्ण! जो अर्जुनसे युद्ध करनेकी इच्छा करता है, तो तू वैसाही मूर्ख है, जैसे कोई शस्त्रविद्याको न जाननेवाला शस्त्रविद्याको जाननेवाले और एक दुर्बल बलवान्से युद्ध करनेकी इच्छा करता है ॥ १६ ॥

अस्माभिरेष निकृतो वर्षाणीह त्रयोदश ।
सिंहः पाशविनिर्मुक्तो न नः शेषं करिष्यति ॥ १७ ॥

हम लोगोंने अर्जुनको तेरह वर्ष तक महादुःख दिया है, अब यह पिञ्जरेसे छूटे हुए सिंहके समान हमारा नाश कर देगा ॥ १७ ॥

एकान्ते पार्थमासीनं कूपेऽग्निमिव संवृतम् ।
अज्ञानादभ्यवस्कन्ध प्राप्ताः स्मो भयमुत्तमम् ॥ १८ ॥

कुंवेमें छिपी हुई अग्निके समान गुप्त रहनेवाले अर्जुनसे अनजाने यह मुठभेड होनेके कारण हम बडे भारी संकटमें पड गए हैं ॥ १८ ॥

सह युध्यामहे पार्थमागतं युद्धदुर्मदम् ।
सैन्यास्तिष्ठन्तु सन्नद्धा व्यूढानीकाः प्रहारिणः ॥ १९ ॥

अब यहां आए हुए युद्धमें मतवाले अर्जुनके साथ युद्ध करें। हमारी सेनाके सभी सैनिक शत्रुपर प्रहार करनेवाले होकर तथा व्यूह बनाकर तैय्यार हो जाएं ॥ १९ ॥

द्रोणो दुर्योधनो भीष्मो भवान्द्रौणिस्तथा वयम् ।
सर्वे युध्यामहे पार्थं कर्ण मा साहसं कृथाः ॥ २० ॥

अर्जुनसे द्रोणाचार्य, दुर्योधन, भीष्म, अश्वत्थामा तुम और हम मिलकर युद्ध करें। हे कर्ण ! तुम अकेले ही अर्जुनसे लडनेका साहस मत करो ॥ २० ॥

वयं व्यवसितं पार्थं वज्रपाणिमिवोद्यतम् ।
षड्रथाः प्रतियुध्येम तिष्ठेम यदि संहताः ॥ २१ ॥

हम छैहों महारथी यदि इकट्ठे हो जाएं तो ही हम वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रके समान युद्धके लिए सन्नद्ध अर्जुनसे युद्ध कर सकते हैं ॥ २१ ॥

व्यूढानीकानि सैन्यानि यत्ताः परमधन्विनः ।
युध्यामहेऽर्जुनं संख्ये दानवा वासवं यथा ॥ २२ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ११९१ ॥

हम सेनाका व्यूह बनाकर और धनुष धारण करके अर्जुनसे इस प्रकार युद्ध करेंगे जैसे इन्द्रसे राक्षस लडे थे ॥ २२ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चौवालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥ ११९१ ॥

४५

अश्वत्थामोवाच

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः ।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे ॥ १ ॥

अश्वत्थामा बोले– हे कर्ण ! हमने अभी न गौओंको जीता, न राज्यकी सीमापर पहुंचे और न हस्तिनापुर ही पहुंचे और तुम पहिलेसे ही अपनी प्रशंसा करने लगे ॥ १ ॥

संग्रामान्सुबहूञ्जित्वा लब्ध्वा च विपुलं धनम् ।
विजित्य च परां भूमिं नाहुः किंचन पौरुषम् ॥ २ ॥

अनेक युद्धोंको जीतकर और अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करके तथा शत्रुकी अतिविस्तृत भूमिको जीतकर भी महात्मा अपनी प्रशंसा नहीं करते ॥ २ ॥

पचत्यग्निरवाक्यस्तु तूष्णीं भाति दिवाकरः ।
तूष्णीं धारयते लोकान्वसुधा सचराचरान् ॥ ३ ॥

अग्नि मौन होकर ही सबको पकाता है, सूर्य मौन होकर प्रकाश करता है, और पृथ्वी मौन होकर सब चर और अचर प्राणियों और जगत्‌को धारण करती है ॥ ३ ॥

चातुर्वर्ण्यस्य कर्माणि विहितानि मनीषिभिः ।
धनं यैरधिगन्तव्यं यच्च कुर्वन्न दुष्यति ॥ ४ ॥

विद्वानोंने चारों वर्णोंके पृथक् पृथक् कर्म निश्चित कर दिये हैं, उन्हींके करनेसे मनुष्यको धन मिल सकता है, और उनके करनेसे मनुष्यको दोष भी नहीं होता ॥ ४ ॥

अधीत्य ब्राह्मणो वेदान्याजयेत यजेत च ।
क्षत्रियो धनुराश्रित्य यजेतैव न याजयेत् ।
वैश्योऽधिगम्य द्रव्याणि ब्रह्मकर्माणि कारयेत् । ॥ ५ ॥

ब्राह्मण चारों वेदोंको पढकर यज्ञ करे और करावे । क्षत्रिय धनुषका आश्रय लेकर यज्ञ करे, परन्तु करावे नहीं । वैश्य द्रव्य उपार्जन करके वेदोक्त कर्म करे ॥ ५ ॥

वर्तमाना यथाशास्त्रं प्राप्य चापि महीमिमाम् ।
सत्कुर्वन्ति महाभागा गुरून्सुविगुणानपि ॥ ६ ॥

महात्मा शास्त्रके अनुसार कर्म करके और समस्त पृथ्वीके स्वामी होकर भी अपने गुणहीन गुरुओंकी सेवा करते हैं ॥ ६ ॥

प्राप्य द्यूतेन को राज्यं क्षत्रियस्तोष्टुमर्हति ।
तथा नृशंसरूपेण यथान्यः प्राकृतो जनः ॥ ७ ॥

भला ऐसा कौन क्षत्रिय होगा जो एक साधारण मनुष्यकी तरह अपने अत्याचारी रूपसे तथा जुएसे राज्यको पाकर सन्तुष्ट हो जाएगा ? ॥ ७ ॥

तथावाप्तेषु वित्तेषु को विकत्थेद्विचक्षणः ।
निकृत्या वञ्चनायोगैश्चरन्वैतंसिको यथा ॥ ८ ॥

जगत्‌में व्याधके सिवा और कौनसा बुद्धिमान् पुरुष ऐसा होगा कि जो छल और कपटसे धन जीतकर अपनी प्रशंसा करे ॥ ८ ॥

कतमद्द्वैरथं युद्धं यत्राजैषीर्धनञ्जयम् ।
नकुलं सहदेवं च धनं येषां त्वया हृतम् ॥ ९ ॥

रे कर्ण ! तूने कौनसा द्वैरथ युद्ध किया है, जिसमें तूने अर्जुनको जीता हो ? तूने कौनसे रथयुद्धमें नकुल और सहदेवको जीता था ? जिनका धन तूने हर लिया है ॥ ९ ॥

युधिष्ठिरो जितः कस्मिन्भीमश्च बलिनां वरः ।
इन्द्रप्रस्थं त्वया कस्मिन्संग्रामे निर्जितं पुरा ॥ १० ॥

तुझसे कौनसे युद्धमें युधिष्ठिर हार गये ? तूने कौनसे घोर युद्धमें महाबलवान् भीमसेनको जीता था ? तूने पहले कौनसे युद्धमें इन्द्रप्रस्थको जीता था ? ॥ १० ॥

तथैव कतमं युद्धं यस्मिन्कृष्णा जिता त्वया ।
एकवस्त्रा सभां नीता दुष्टकर्मन्रजस्वला ॥ ११ ॥

और वह कौनसा युद्ध हुआ था जिसमें तूने द्रौपदीको जीता था ? रे पापी ! कौनसे न्यायसे तूने रजस्वला द्रौपदीको एक वस्त्र पहनाकर सभामें बुलाया था ॥ ११ ॥

मूलमेषां महत्कृत्तं सारार्थी चन्दनं यथा ।
कर्म कारयिथाः शूर तत्र किं विदुरोऽब्रवीत् ॥ १२ ॥

हे शूर ! तुमलोगोंने पाण्डवोंका मूल इस प्रकार नष्ट किया है, जैसे कोई लोभी चन्दनके वृक्षको काटता है । तुमको स्मरण होगा कि जुवेके समय विदुरने क्या कहा था ? विदुरने कहा था कि इस जुवेके कारण तुम कौरवोंका समूल नाश होगा ॥ १२ ॥

यथाशक्ति मनुष्याणां शममालक्षयामहे ।
अन्येषां चैव सत्त्वानामपि कीटपिपीलिके ॥ १३ ॥

हम मनुष्योंकी शान्ति किसी एक निश्चित मर्यादा तकही देखते हैं, उसी तरह अन्य कीडे चींटी आदि प्राणियोंकी शान्ति भी मर्यादित ही होती है ॥ १३ ॥

द्रौपद्यास्तं परिक्लेशं न क्षन्तुं पाण्डवोऽर्हति ।
दुःखाय धार्तराष्ट्राणां प्रादुर्भूतो धनञ्जयः ॥ १४ ॥

पाण्डव अर्जुन द्रौपदीके उस दुःखको क्षमा नहीं करेगा । अर्जुनने धृतराष्ट्रपुत्रोंको दुःख देनेके लिये ही अवतार लिया है ॥ १४ ॥

त्वं पुनः पण्डितो भूत्वा वाचं वक्तुमिहेच्छसि ।
वैरान्तकरणो जिष्णुर्न नः शेषं करिष्यति ॥ १५ ॥

और तू पण्डित बनकर यहां बडबड कर रहा है अपने शत्रुओंको मार कर ही अपने वैरको शान्त करनेवाला अर्जुन हमारा नाश करकेही इस शत्रुताका कहीं अन्त न करे ॥ १५ ॥

नैष देवान्न गन्धर्वान्नासुरान्न च राक्षसान् ।
भयादिह न युध्येत कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ १६ ॥

यह कुन्तीपुत्र धनंजय अर्जुन न देवोंके, न गंधर्वोंके, न असुरोंके और न राक्षसोंके भयसे युद्ध करे ऐसा नहीं हो सकता अर्थात् वह इन सबसे भी युद्ध कर सकता है ॥ १६ ॥

यं यमेषोऽभिसंक्रुद्धः संग्रामेऽभिपतिष्यति ।
वृक्षं गरुडवेगेन विनिहत्य तमेष्यति ॥ १७ ॥

युद्धमें क्रोध करके जिसकी ओर भी अर्जुन जायेगा, उसका इस प्रकार नाश करके आगे बढ जायेगा कि जैसे गरुड अपने वेगसे वृक्षका नाश करके चला जाता है ॥ १७ ॥

त्वत्तो विशिष्टं वीर्येण धनुष्यमरराट्समम् ।
वासुदेवसमं युद्धे तं पार्थं को न पूजयेत् ॥ १८ ॥

अर्जुन तुझसे अधिक बलवान्, इन्द्रके समान धनुर्धारी तथा युद्धमें कृष्णके समान योद्धा है । उसकी पूजा कौन नहीं करेगा ? ॥ १८ ॥

दैवं दैवेन युध्येत मानुषेण च मानुषम् ।
अस्त्रेणास्त्रं समाहन्यात्कोऽर्जुनेन समः पुमान् ॥ १९ ॥

जो अर्जुन देवताओंके साथ देवोंकी विधिसे, मनुष्यके साथ मनुष्यकी विधिसे लडता है, जो अस्त्रोंको अस्त्रसे काटता है, उसके समान कौन मनुष्य होगा ? ॥ १९ ॥

पुत्रादनन्तरः शिष्य इति धर्मविदो विदुः ।
एतेनापि निमित्तेन प्रियो द्रोणस्य पाण्डवः ॥ २० ॥

पुत्रके बाद शिष्य ही अधिक प्रिय होता है, ऐसा धर्मवेत्ता लोग कहते हैं इस कारणसे भी अर्जुन द्रोणाचार्यको प्रिय है ॥ २० ॥

यथा त्वमकरोर्द्यूतमिन्द्रप्रस्थं यथाहरः ।
यथानैषीः सभां कृष्णां तथा युध्यस्व पाण्डवम् ॥ २१ ॥

तुमने जैसे जुवा खेला था, जैसे इन्द्रप्रस्थको जीता था, जिस बलके भरोसे द्रौपदीको सभामें बुलाया था, उसी बलसे अब अर्जुनके साथ युद्ध करो ॥ २१ ॥

अयं ते मातुलः प्राज्ञः क्षत्रधर्मस्य कोविदः ।
दुर्द्यूतदेवी गान्धारः शकुनिर्युध्यतामिह ॥ २२ ॥

हे दुर्योधन ! यह तुम्हारा बुद्धिमान् मामा क्षत्रियके धर्मको जाननेवाला छल कपटसे युद्ध करनेवाला गांधारदेशीय शकुनि यहां युद्ध करे ॥ २२ ॥

×

नाक्षान्क्षिपति गाण्डीवं न कृतं द्वापरं न च ।
ज्वलतो निशितान्बाणांस्तीक्ष्णान्क्षिपति गाण्डिवम् ॥ २३ ॥

अर्जुनका गाण्डीवधनुष कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके समान फांसे नहीं फेंकता। वह गाण्डीवधनुष तो जलते हुए तीक्ष्ण और पैने बाणोंको छोडता है ॥ २३ ॥

न हि गाण्डीवनिर्मुक्ता गार्ध्रपत्राः सुतेजनाः ।
अन्तरेष्ववतिष्ठन्ति गिरीणामपि दारणाः ॥ २४ ॥

गाण्डीवसे छूटे हुए गिद्धके पंखोंसे युक्त तेज बाण पहाडोंको काटकर भी पार चले जाते हैं। बीचमें कहीं भी नहीं रुकते ॥ २४ ॥

अन्तकः शमनो मृत्युस्तथाग्निर्वडवामुखः ।
कुर्युरेते क्वचिच्छेषं न तु क्रुद्धो धनंजयः ॥ २५ ॥

मृत्यु, यम, पवन, और अग्नि ये सब क्रोध करके भी शत्रुओंका कुछ शेष छोड सकते हैं, परन्तु क्रुद्ध अर्जुन तो किसी भी तरह शेष छोड नहीं सकता ॥ २५ ॥

युध्यतां काममाचार्यो नाहं योत्स्ये धनंजयम् ।
मत्स्यो ह्यस्माभिरायोध्यो यद्यागच्छेद्गवां पदम् ॥ २६ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ १२१७ ॥

आचार्यकी इच्छा हो, तो वह युद्ध करें, मैं अर्जुनसे नहीं लडूंगा। क्योंकि हम तो विराटसे युद्ध करनेके लिए आये हैं। यदि वह गौओंको छीनने आयेगा तो हम उससे लडेंगे ॥२६॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥ १२१७ ॥

: ४६ :

भीष्म उवाच

साधु पश्यति वै द्रोणः कृपः साध्वनुपश्यति ।
कर्णस्तु क्षत्रधर्मेण यथावद्योद्धुमिच्छति ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे राजन् दुर्योधन ! द्रोण उचितही कहते हैं, और कृपाचार्यने भी उचित ही कहा है, परन्तु कर्ण केवल क्षत्रधर्मसे युद्ध करनेकी ही इच्छा करता है ॥ १ ॥

आचार्यो नाभिषक्तव्यः पुरुषेण विजानता ।
देशकालौ तु संप्रेक्ष्य योद्धव्यमिति मे मतिः ॥ २ ॥

ज्ञानी पुरुषको चाहिए कि गुरुको कुछ न कहे और मेरे विचारसे तो युद्ध भी देश और कालको देखकर ही करे ॥ २ ॥

यस्य सूर्यसमाः पञ्च सपत्नाः स्युः प्रहारिणः ।
कथमभ्युदये तेषां न प्रमुह्येत पण्डितः ॥ ३ ॥

जिस दुर्योधनके सूर्यके समान तेजस्वी तथा प्रहार करनेमें कुशल पांच शत्रु हैं, उनके अभ्युदयके विषयमें पण्डितको भी भ्रम क्यों न होगा ? ॥ ३ ॥

स्वार्थे सर्वे विमुह्यन्ति येऽपि धर्मविदो जनाः ।
तस्माद्राजन्ब्रवीम्येष वाक्यं ते यदि रोचते ॥ ४ ॥

धर्मज्ञ पण्डित भी अपने स्वार्थमें अन्य सबको भूल जाते हैं, इसलिये, हे राजन् ! यदि आपको पसन्द हो तो मैं कुछ वचन कहूं ॥ ४ ॥

कर्णो यदभ्यवोचन्नस्तेजःसंजननाय तत् ।
आचार्यपुत्रः क्षमतां महत्कार्यमुपस्थितम् ॥ ५ ॥

कर्णने जो कुछ हमसे कहा था, वह हम सबका तेज बढानेके लिये ही कहा है। इस कारण आचार्यके पुत्र अश्वत्थामा कर्णको क्षमा करें, क्योंकि इस समय हमारे सामने युद्धरूपी एक महान् कार्य उपस्थित हो गया है ॥ ५ ॥

नायं कालो विरोधस्य कौन्तेये समुपस्थिते ।
क्षन्तव्यं भवता सर्वमाचार्येण कृपेण च ॥ ६ ॥

इस समय अर्जुन युद्ध करनेके लिए उपस्थित हो गया है, अतः यह समय विरोधका नहीं है। तुम, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य सब क्षमा करो ॥ ६ ॥

भवतां हि कृतास्त्रत्वं यथादित्ये प्रभा तथा ।
यथा चन्द्रमसो लक्ष्म सर्वथा नापकृष्यते ।
एवं भवत्सु ब्राह्मण्यं ब्रह्मास्त्रं च प्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

जिसतरह सूर्यमें प्रभा है, उसी तरह आप सबमें शस्त्रविद्यामें कुशलता है। जिस तरह चन्द्रमासे शोभाको दूर नहीं किया जा सकता, उसी तरह आप लोगोंसे शस्त्रविद्याको दूर नहीं किया जा सकता। आपमें ज्ञान और ब्रह्मास्त्र भी प्रतिष्ठित है ॥ ७ ॥

चत्वार एकतो वेदाः क्षात्रमेकत्र दृश्यते ।
नैतत्समस्तमुभयं कस्मिंश्चिदनुशुश्रुमः ॥ ८ ॥

चारों वेदोंका ज्ञान एक तरफ और क्षात्रतेज दूसरी तरफ दिखाई देता है। ये दोनों किसी एक ही पुरुषमें प्रतिष्ठित हों, यह हमने कभी नहीं सुना ॥ ८ ॥

अन्यत्र भारताचार्यात्सपुत्रादिति मे मतिः
ब्रह्मास्त्रं चैव वेदाश्च नैतदन्यत्र दृश्यते ॥ ९ ॥

मेरी समझमें द्रोणाचार्य और अश्वत्थामाके अतिरिक्त ब्रह्मास्त्र अर्थात् अस्त्रविद्या और ज्ञान ये दोनों विद्यायें एकत्र किसी भी पुरुषमें नहीं मिलतीं ॥ ९ ॥

आचार्यपुत्रः क्षमतां नायं कालः स्वभेदने ।
सर्वे संहत्य युध्यामः पाकशासनिमागतम् ॥ १० ॥

इसलिये आचार्यपुत्र अश्वत्थामा हमारे ऊपर कृपा करें, यह समय पारस्परिक विरोधका नहीं है। इस समय तो सब मिलकर आए हुए इन्द्रपुत्र अर्जुनके साथ युद्ध करें ॥ १० ॥

बलस्य व्यसनानीह यान्युक्तानि मनीषिभिः ।
मुख्यो भेदो हि तेषां वै पापिष्ठो विदुषां मतः ॥ ११ ॥

महात्मा पण्डितोंने सेनाके जो दोष कहे हैं, उनमें भेदही मुख्य है । यह फूटही सबसे भयंकर है, ऐसा विद्वानोंका मत है ॥ ११ ॥

अश्वत्थामोवाच

आचार्य एव क्षमतां शान्तिरत्र विधीयताम् ।
अभिषज्यमाने हि गुरौ तद्वृत्तं रोषकारितम् ॥ १२ ॥

अश्वत्थामा बोले– आचार्यही क्षमा करें और आप सब इस समय शान्ति रखिये । उन्होंने जो कुछ कहा था, क्रोधसे कहा था, हमारे अन्दर फूट डालनेकी इच्छासे नहीं ॥ १२ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो दुर्योधनो द्रोणं क्षमयामास भारत ।
सह कर्णेन भीष्मेण कृपेण च महात्मना ॥ १३ ॥

वैशम्पायन बोले– हे जनमेजय ! तदनन्तर दुर्योधनने कर्ण, भीष्म, महात्मा कृपाचार्यके समेत द्रोणाचार्यसे क्षमा मांगी ॥ १३ ॥

द्रोण उवाच

यदेव प्रथमं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ।
तेनैवाहं प्रसन्नो वै परमत्र विधीयताम् ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्य बोले– शान्तनुपुत्र भीष्मने जो पहले वचन कहा था, मैं उसीसे प्रसन्न हो गया था, अब जो भी कर्त्तव्य है वह कीजिये ॥ १४ ॥

यथा दुर्योधनेऽयत्ते नागः स्पृशति सैनिकान् ।
साहसाद्यदि वा मोहात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥

आप ऐसी नीतिका निर्धारण कीजिए, कि जिससे साहस या मोहसे भी सैनिकोंके मध्यमें स्थित इस दुर्योधनको अर्जुनसे युद्धरूप पाप छू न सके, अर्थात् दुर्योधनको स्वयं जाकर अर्जुनसे युद्ध करना न पडे ॥ १५ ॥

वनवासे ह्यनिर्वृत्ते दर्शयेन्न धनञ्जयः ।
धनं वालभमानोऽत्र नाद्य नः क्षन्तुमर्हति ॥ १६ ॥

अर्जुन वनवासका समय पूरा होनेके पहले कदापि प्रत्यक्ष नहीं हो सकता । इससे जान पडता है कि वर्ष पूरा हो गया है । अब अर्जुन बिना गौओंको लिये हमें क्षमा नहीं करेगा ॥ १६ ॥

यथा नायं समायुज्याद्धार्त्तराष्ट्रान्कथंचन ।
यथा च न पराजय्यात्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥ १७ ॥

ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे अर्जुन धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे मुठभेड न करे तथा उन्हें पराजित न करे ॥ १७ ॥

उक्तं दुर्योधनेनापि पुरस्ताद्वाक्यमीदृशम् ।
तदनुस्मृत्य गाङ्गेय यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ १२३५ ॥

हे गंगापुत्र भीष्म ! राजा दुर्योधनने पहले जो ऐसे वचन कहे थे, उसको विचारकर जो उचित हो, आप यथायोग्य कहिये ॥ १८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें छियांलीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥ १२३५ ॥

: ४७ :

भीष्म उवाच

कलांशास्तात युज्यन्ते मुहूर्त्ताश्च दिनानि च ।
अर्धमासाश्च मासाश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥ १ ॥

भीष्म बोले– हे तात ! समयकी गिनतीमें कला, मुहूर्त्त, दिन, पक्ष, महीने, नक्षत्र और ग्रह गिने जाते हैं ॥ १ ॥

ऋतवश्चापि युज्यन्ते तथा संवत्सरा अपि ।
एवं कालविभागेन कालचक्रं प्रवर्तते ॥ २ ॥

उसी प्रकार ऋतु और वर्ष भी गिने जाते हैं, इस प्रकार कालके विभागसे जगत्में कालचक्र घूमता है ॥ २ ॥

तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात् ।
पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः ॥ ३ ॥

नक्षत्रोंके उलट पलट होनेके कारण उनमें समय बढ जानेसे प्रति पांचवें वर्षमें दो महीने बढ जाते हैं ॥ ३ ॥

तेषामभ्यधिका मासाः पञ्च द्वादश च क्षपाः ।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्तते मतिः ॥ ४ ॥

ऐसी गणना करनेसे पाण्डवोंके तेरह वर्षमें पांच महीने और बारह दिन अधिक हो गये हैं यह मेरा विचार है ॥ ४ ॥

सर्वं यथावच्चरितं यद्यदेभिः परिश्रुतम् ।
एवमेतद्ध्रुवं ज्ञात्वा ततो बीभत्सुरागतः ॥ ५ ॥

पाण्डवोंने जो कुछ प्रतिज्ञा की थी, उसका उन्होंने उचित रीतिसे निर्वाह किया है । यह सब निश्चय पूर्वक विचार करके ही अर्जुन युद्ध करने आया है ॥ ५ ॥

सर्वे चैव महात्मानः सर्वे धर्मार्थकोविदाः ।
येषां युधिष्ठिरो राजा कस्माद्धर्मेऽपराध्नुयुः ॥ ६ ॥

सभी पाण्डव महात्मा हैं, सभी धर्म और अर्थके ज्ञानमें कुशल हैं । जिन पाण्डवोंके स्वामी स्वयं युधिष्ठिर हैं, वे भला धर्मके विषयमें अपराध किस तरह करेंगे ? ॥ ६ ॥

अलुब्धाश्चैव कौन्तेयाः कृतवन्तश्च दुष्करम् ।
न चापि केवलं राज्यमिच्छेयुस्तेऽनुपायतः ॥ ७ ॥

पाण्डव लोभरहित हैं, इसी कारण उन्होंने इस घोर व्रतका पालन किया । वे लोग कदापि कुत्सित उपायोंसे राज्यप्राप्तिकी इच्छा नहीं करेंगे ॥ ७ ॥

तदैव ते हि विक्रान्तुमीषुः कौरवनन्दनाः ।
धर्मपाशनिबद्धास्तु न चेलुः क्षत्रियव्रतात् ॥ ८ ॥

कुरुकुलश्रेष्ठ पाण्डव उसी समय अपना पराक्रम प्रकट करनेमें समर्थ थे, पर धर्मपाशमें बंध जानेके कारण वे क्षत्रिय व्रतसे विचलित नहीं हुए ॥ ८ ॥

यच्चानृत इति ख्यायेद्यच्च गच्छेत्पराभवम् ।
वृणुयुर्मरणं पार्था नानृतत्वं कथंचन ॥ ९ ॥

जो यह कहे कि अर्जुन झूठा है, अथवा यह कहे कि वह हार जाएगा, यह दोनोंही बातें असंभव हैं । क्योंकि पाण्डव मर जाना ज्यादा पसन्द करेंगे, पर झूठ बोलना तो किसी तरह भी नहीं ॥ ९ ॥

प्राप्ते तु काले प्राप्तव्यं नोत्सृजेयुर्नरर्षभाः ।
अपि वज्रभृता गुप्तं तथावीर्या हि पाण्डवाः ॥ १० ॥

पुरुषसिंह पाण्डव समयपर अपने प्राप्तव्य स्वत्वको कभी भी नहीं छोडेंगे । चाहे वह इन्द्रसे भी सुरक्षित क्यों न हो ? पाण्डव ऐसे ही बलवान् हैं ॥ १० ॥

प्रतियुध्याम समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
तस्माद्यदत्र कल्याणं लोके सद्भिरनुष्ठितम् ।
तत्संविधीयतां क्षिप्रं मा नो ह्यर्थोऽतिगात्परान् ॥ ११ ॥

इसलिये हम सब लोग मिलकर सभी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनसे युद्ध करें और भले पुरुषोंने जो कल्याणकारी बातें कही हैं, वे सब आपलोगोंको शीघ्र ही कार्यरूपमें परिणत करनी चाहिये जिससे हमारा धन शत्रुओंके पास न चला जावे ॥ ११ ॥

न हि पश्यामि संग्रामे कदाचिदपि कौरव ।
एकान्तसिद्धिं राजेन्द्र संप्राप्तश्च धनञ्जयः ॥ १२ ॥

हे कौरव ! हे राजेन्द्र ! अब अर्जुन युद्ध करनेको आया है, इसलिए इस युद्धमें हमें किसी तरह पूरी सिद्धि मिल सके, ऐसा कोई उपाय मैं नहीं देखता ॥ १२ ॥

संप्रवृत्ते तु संग्रामे भावाभावौ जयाजयौ ।
अवश्यमेकं स्पृशतो दृष्टमेतदसंशयम् ॥ १३ ॥

युद्धके एक बार शुरु हो जानेपर लाभ–हानि, जय और पराजय इनमेंसे निस्सन्देह एक वस्तु अवश्य ही प्राप्त होती है ऐसा देखा गया है ॥ १३ ॥

तस्माद्युद्धावचरिकं कर्म वा धर्मसंहितम् ।
क्रियतामाशु राजेन्द्र संप्राप्तो हि धनञ्जयः ॥ १४ ॥

इसलिये, हे राजेन्द्र ! युद्धोचित कार्य या धर्म सहित युद्धका कार्य शीघ्र करना चाहिये, क्योंकि अर्जुन आ पहुँचा है ॥ १४ ॥

दुर्योधन उवाच

नाहं राज्यं प्रदास्यामि पाण्डवानां पितामह ।
युद्धावचारिकं यत्तु तच्छीघ्रं संविधीयताम् ॥ १५ ॥

दुर्योधन बोले– हे पितामह ! मैं पाण्डवोंको राज्य नहीं दूंगा, इसलिये जो कुछ भी युद्धका उपचार हो सके, उसका शीघ्र विधान कीजिये ॥ १५ ॥

भीष्म उवाच

अत्र या मामकी बुद्धिः श्रूयतां यदि रोचते ।
क्षिप्रं बलचतुर्भागं गृह्य गच्छ पुरं प्रति ।
ततोऽपरश्चतुर्भागो गाः समादाय गच्छतु ॥ १६ ॥

भीष्म बोले– हे कुरुनन्दन ! इस विषयमें मेरी जो संमति है, उसे तुमसे कहता हूँ, यदि तुमको प्रिय लगे तो सुनो । इसी समय सेनाके चार भाग कर देने चाहिये । एक चौथाई भागको लेकर इसी समय तुम हस्तिनापुरको चले जाओ । दूसरा चौथाई भाग गौओंको लेकर हस्तिनापुरको जाये ॥ १६ ॥

वयं त्वर्धेन सैन्येन प्रतियोत्स्याम पाण्डवम् ।
मत्स्यं वा पुनरायातमथ वापि शतक्रतुम् ॥ १७ ॥

आधी सेना लेकर हम अर्जुनसे लडेंगे । उसकी सहायताके लिए चाहे मत्स्यराज विराट आवे या साक्षात् इन्द्र ही आवे, कोई बात नहीं ॥ १७ ॥

आचार्यो मध्यतस्तिष्ठत्वश्वत्थामा तु सव्यतः ।
कृपः शारद्वतो धीमान्पार्श्वं रक्षतु दक्षिणम् ॥ १८ ॥

आचार्य सेनाके बीचमें रहें, अश्वत्थामा बाईं ओर तथा शरद्वान्के पुत्र बुद्धिमान् कृपाचार्य दाहिनी, ओरसे सेनाकी रक्षा करें ॥ १८ ॥

अग्रतः सूतपुत्रस्तु कर्णस्तिष्ठतु दंशितः ।
अहं सर्वस्य सैन्यस्य पश्चास्थास्यामि पालयन् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ १२५४ ॥

सूतपुत्र कर्ण सब युद्ध सामग्रीके सहित सन्नद्ध होकर सेनाके अग्रभागमें खडे हों और मैं सेनाके पिछले भागमें रहकर सबकी रक्षा करूंगा ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥ १२५४ ॥

४८

वैशम्पायन उवाच

तथा व्यूढेष्वनीकेषु कौरवेयैर्महारथैः ।
उपायादर्जुनस्तूर्णं रथघोषेण नादयन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजा जनमेजय ! जिस समय महारथी कौरवोंकी सेनाका इस प्रकार व्यूह बन चुका, तब अपने रथके शब्दसे दिशाओंको गुंजाते हुए अर्जुन सेनाकी ओर आये ॥ १ ॥

ददृशुस्ते ध्वजाग्रं वै शुश्रुवुश्च रथस्वनम् ।
दोधूयमानस्य भृशं गाण्डीवस्य च निस्वनम् ॥ २ ॥

कौरवोंने अर्जुनकी ध्वजाका ऊपरका भाग देखा और उसके रथका शब्द तथा बहुत बुरी तरह टंकारते हुए उसके गाण्डीव धनुषका घोर शब्द भी सुना ॥ २ ॥

ततस्तत्सर्वमालोक्य द्रोणो वचनमब्रवीत् ।
महारथमनुप्राप्तं दृष्ट्वा गाण्डीवधन्विनम् ॥ ३ ॥

वह सब चिन्ह देखकर तथा गाण्डीव धनुषधारी महारथी अर्जुनको आते देखकर द्रोण यह वचन बोले ॥ ३ ॥

एतद्ध्वजाग्रं पार्थस्य दूरतः संप्रकाशते ।
एष घोषः सजलदो रोरवीति च वानरः ॥ ४ ॥

यह अर्जुनकी ध्वजाका अग्रभाग दूरहीसे दीखने लगा है । उसके रथकी मेघके समान गंभीर ध्वनि भी सुनाई दे रही है और उसकी ध्वजापर बैठा हुआ वानर भी शब्द कर रहा है ॥४॥

एष तिष्ठन्रथश्रेष्ठो रथे रथवरप्रणुत् ।
उत्कर्षति धनुःश्रेष्ठं गाण्डीवमशनिस्वनम् ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ रथको भी चलानेमें कुशल महारथी अर्जुन उत्तम रथमें बैठे हुए वज्रके समान शब्दवाले धनुषको खींच रहा है ॥ ५ ॥

इमौ हि बाणौ सहितौ पादयोर्मे व्यवस्थितौ ।
अपरौ चाप्यतिक्रान्तौ कर्णौ संस्पृश्य मे शरौ ॥ ६ ॥

यह देखो अर्जुनके दो बाण इकट्ठे मेरे पैरोंपर आ गिरे हैं और दूसरे दो बाण मेरे कानोंको छूकर चले गये ॥ ६ ॥

निरुष्य हि वने वासं कृत्वा कर्मातिमानुषम् ।
अभिवादयते पार्थः श्रोत्रे च परिपृच्छति ॥ ७ ॥

इनका प्रयोजन यह है कि अर्जुन वनवाससे निवृत्त होकर और अमानुष कर्म करके मुझे प्रणाम करता है, और मुझसे युद्ध करनेकी आज्ञा मांगता है ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच

इषुपाते च सेनाया हयान्संयच्छ सारथे ।
यावत्समीक्षे सैन्येऽस्मिन्क्वासौ कुरुकुलाधमः ॥ ८ ॥

अर्जुन बोले– हे सारथी ! सेना बाणोंकी मारके सामने आ पहुंची है, घोडोंको रोको, जिससे कि मैं देख लूं कि इस सेनामें वह कुरुकुलकलङ्क दुर्योधन कहां है ? ॥ ८ ॥

सर्वानन्याननादृत्य दृष्ट्वा तमतिमानिनम् ।
तस्य मूर्ध्नि पतिष्यामि तत एते पराजिताः ॥ ९ ॥

इन सब कौरवोंकी परवाह न करके मैं महाअभिमानी दुर्योधनको देखकर उसके ही सिर होऊंगा । क्योंकि उसके हारनेसे ये सब स्वयं हार जायेंगे ॥ ९ ॥

×

एष व्यवस्थितो द्रोणो द्रौणिश्च तदनन्तरम् ।
भीष्मः कृपश्च कर्णश्च महेष्वासा व्यवस्थिताः ॥ १० ॥

यह देखो ! गुरु द्रोणाचार्य खडे हैं, इधर उनके पुत्र अश्वत्थामा हैं। एक ओर भीष्म खडे हैं। दाहिनी ओर कृपाचार्य हैं और आगे कर्ण खडे हैं ॥ १० ॥

राजानं नात्र पश्यामि गाः समादाय गच्छति ।
दक्षिणं मार्गमास्थाय शङ्के जीवपरायणः ॥ ११ ॥

पर मैं राजा दुर्योधनको नहीं देख रहा है। मुझे सन्देह हो रहा है कि अपने जीवनसे अत्यधिक प्रेम करनेवाला वह दुर्योधन दक्षिणका मार्ग पकडकर भागा जा रहा होगा ॥ ११ ॥

उत्सृज्यैतद्रथानीकं गच्छ यत्र सुयोधनः ।
तत्रैव योत्स्ये वैराटे नास्ति युद्धं निरामिषम् ।
तं जित्वा विनिवर्तिष्ये गाः समादाय वै पुनः ॥ १२ ॥

हे विराटपुत्र ! तुम इस सब सेनाको छोडकर हमारे रथको शीघ्र दुर्योधनके आगे ले चलो, मैं वहीं चलकर युद्ध करूंगा, क्योंकि निष्प्रयोजन महारथियोंसे युद्ध करनेसे क्या लाभ है ? दुर्योधनको जीतकर गौओंको छीनकर ही मैं अपने नगरको लौट जाऊंगा ॥ १२ ॥

वैशंपायन उवाच

एवमुक्तः स वैराटिर्हयान्संयम्य यत्नतः ।
नियम्य च ततो रश्मीन्यत्र ते कुरुपुंगवाः ।
अचोदयत्ततो वाहान्यतो दुर्योधनस्ततः ॥ १३ ॥

वैशम्पायन बोले— अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर विराटपुत्र उत्तरने अत्यन्त यत्न करके घोडोंपर नियंत्रण किया और कौरवोंकी सेनासे बचाकर वेगसे घोडोंको उधरकी ओर हांका जिधरसे दुर्योधनकी सेना जा रही थी और थोडी दूर जाकर उत्तरने घोडोंको और भी वेगसे चलाया ॥ १३ ॥

उत्सृज्य रथवंशं तु प्रयाते श्वेतवाहने ।
अभिप्रायं विदित्वास्य द्रोणो वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

अर्जुनको सेना छोडकर जाते हुए देखकर कौरव उनके अभिप्रायको जान गये। तब द्रोणाचार्य बोले ॥ १४ ॥

नैषोऽन्तरेण राजानं बीभत्सुः स्थातुमिच्छति ।
तस्य पार्ष्णिं ग्रहीष्यामो जवेनाभिप्रयास्यतः ॥ १५ ॥

यह अर्जुन राजाके विना खडा होना नहीं चाहता, अतः वह वेगसे राजाकी ओर गया है। हम सब उसका पीछा करें ॥ १५ ॥

न ह्येनमभिसंक्रुद्धमेको युध्येन संयुगे ।
अन्यो देवात्सहस्राक्षात्कृष्णाद्वा देवकीसुतात् ॥ १६ ॥

क्योंकि युद्धमें क्रोधी अर्जुनका मुकाबला इन्द्र और देवकीपुत्र कृष्णके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

किं नो गावः करिष्यन्ति धनं वा विपुलं तथा ।
दुर्योधनः पार्थजले पुरा नौरिव मज्जति ॥ १७ ॥

जब दुर्योधन अर्जुनरूपी जलमें नावके समान डूब जाएगा, अर्थात् अर्जुन दुर्योधनको मार डालेगा, तब ये गायें और प्रचुर धन भी हमारा कौनसा प्रयोजन सिद्ध करेंगे ? ॥ १७ ॥

तथैव गत्वा बीभत्सुर्नाम विश्राव्य चात्मनः ।
शलभैरिव तां सेनां शरैः शीघ्रमवाकिरत् ॥ १८ ॥

(ये लोग इधर संमति कर ही रहे थे और उतनेमें अर्जुन दुर्योधनके आगे जा पहुंचे ।) वहां जाकर अर्जुनने अपना नाम सुनाकर दुर्योधनकी सेनाको टिड्डीदलकी भांति बाणोंसे छा डाला ॥ १८ ॥

कीर्यमाणाः शरौघैस्तु योधास्ते पार्थचोदितैः ।
नापश्यन्नावृतां भूमिमन्तरिक्षं च पत्रिभिः ॥ १९ ॥

उस समय अर्जुनके द्वारा छोडे गए बाणोंके समूहोंसे वे सब सैनिक पूरी तरह ढक गए । सब जगह बाणोंसे ढक जानेके कारण सैनिक भूमि और अन्तारिक्षको भी नहीं देख सके ॥ १९ ॥

तेषां नात्मनिनो युद्धे नापयानेऽभवन्मतिः ।
शीघ्रत्वमेव पार्थस्य पूजयन्ति स्म चेतसा ॥ २० ॥

वे सभी योद्धा स्वाभिमानी थे, इसलिये किसी भी योद्धाने युद्धसे भाग जानेकी इच्छा नहीं की । इसके विपरीत वे सब हृदयसे अर्जुनकी शीघ्रताकी प्रशंसा ही करने लगे ॥ २० ॥

ततः शङ्खं प्रदध्मौ स द्विषतां लोमहर्षणम् ।
विस्फार्य च धनुःश्रेष्ठं ध्वजे भूतान्यचोदयत् ॥ २१ ॥

तब अर्जुनने धनुषपर टंकार देकर शत्रुओंके रोमोंको खडा कर देनेवाला शङ्ख बजाया और रथपर बैठे हुए भूतोंको गर्जनेकी आज्ञा दी ॥ २१ ॥

तस्य शङ्खस्य शब्देन रथनेमिस्वनेन च ।
अमानुषाणां तेषां च भूतानां ध्वजवासिनाम् ॥ २२ ॥
ऊर्ध्वं पुच्छान्विधुन्वाना रम्भमाणाः समन्ततः ।
गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ १२७७ ॥

उस शंखके शब्द तथा रथके पहियोंकी घरघराहट; तथा ध्वज पर बैठे हुए उन अमानुष प्राणियोंके शब्दोंको सुनकर चारों ओरकी गायें रंभाती हुईं और अपनी पूंछोंको खडाकर उन्हें फटकारती हुईं दक्षिणकी दिशासे नगरकी ओर भाग गईं ॥ २२-२३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें अडतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥ १२७७ ॥

: ४९ :

वैशम्पायन उवाच

स शत्रुसेनां तरसा प्रणुद्य गास्ता विजित्याथ धनुर्धराग्र्यः ।
दुर्योधनायाभिमुखं प्रयातो भूयोऽर्जुनः प्रियमाजौ चिकीर्षन् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन जब शीघ्रही शत्रुसेनाको नष्टकर गौओंको जीत चुके, तब फिर युद्धमें अपना प्रियकार्य करनेकी इच्छासे दुर्योधनके आगे पहुंचे ॥ १ ॥

गोषु प्रयातासु जवेन मत्स्यान्किरीटिनं कृतकार्यं च मत्वा ।
दुर्योधनायाभिमुखं प्रयान्तं कुरुप्रवीराः सहसाभिपेतुः ॥ २ ॥

जब कौरवोंने देखा कि गायें बडे वेगसे मत्स्यनगरकी तरफ भाग गई हैं और अर्जुन भी अपने कार्यमें सफल हो गया है और दुर्योधनसे युद्ध करने चला जाता है, तब वे सब लोग वेगसे उसकी ओर दौडे ॥ २ ॥

तेषामनीकानि बहूनि गाढं व्यूढानि दृष्ट्वा बहुलध्वजानि ।
मत्स्यस्य पुत्रं द्विषतां निहन्ता वैराटिमामन्त्र्य ततोऽभ्युवाच ॥ ३ ॥

अनेकों ध्वजाओंसे युक्त कौरवोंकी अनेक सेनाको तथा उनकी दृढ व्यूहरचनाको देखकर शत्रुनाशक अर्जुनने मत्स्यराज विराटपुत्र उत्तरसे कहा ॥ ३ ॥

एतेन तूर्णं प्रतिपादयेमाञ्श्वेतान्हयान्काञ्चनरश्मियोक्त्रान् ।
जवेन सर्वेण कुरु प्रयत्नमासादयैतद्रथसिंहवृन्दम् ॥ ४ ॥

हे सारथे ! तुम हमारे सोनेकी लगामवाले इन श्वेत घोडोंको शीघ्र हांको और पूर्ण वेगसे प्रयत्न करो जिससे कि मैं कौरवोंकी सेनाको पा सकूं ॥ ४ ॥

गजो गजेनेव मया दुरात्मा यो योद्धुमाकाङ्क्षति सूतपुत्रः ।
तमेव मां प्रापय राजपुत्र दुर्योधनापाश्रयजातदर्पम् ॥ ५ ॥

हे राजपुत्र ! यह दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण दुर्योधनके आश्रयसे अभिमानमें भर गया है, और मुझसे इस प्रकार युद्ध करना चाहता है, जैसे हाथी हाथीसे । इसलिये तुम मेरे रथको इसीके आगे ले चलो ॥ ५ ॥

स तैर्हयैर्वातजवैर्बृहद्भिः पुत्रो विराटस्य सुवर्णकक्ष्यैः ।
विध्वंसयंस्तद्रथिनामनीकं ततोऽवहत्पाण्डवमाजिमध्ये ॥ ६ ॥

विराटके पुत्र उत्तरने सोनेके आभूषणोंसे सुसज्जित, वायुके समान वेगवान् बडे बडे घोडोंसे महारथियोंकी उस सेनाको तितर बितर कर दिया और वह पाण्डुपुत्र अर्जुनको सेनाके बीचमें ले गया ॥ ६ ॥

तं चित्रसेनो विशिखैर्विपाठैः संग्रामजिच्छत्रुसहो जयश्च ।
प्रत्युद्ययुर्भारतमापतन्तं महारथाः कर्णमभीप्समानाः ॥ ७ ॥

उसी समय अर्जुनको क्रोधसे आते हुए देख कर्णकी रक्षाके निमित्त महारथ चित्रसेन; संग्राम जित्, शत्रुसह और जय आदि महारथी वीरोंने अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाये ॥ ७ ॥

ततः स तेषां पुरुषप्रवीरः शरासनार्चिः शरवेगतापः ।
व्रातान्रथानामदहत्समन्युर्वनं यथाग्निः कुरुपुङ्गवानाम् ॥ ८ ॥

उस पुरुषश्रेष्ठ अर्जुनरूपी अग्निकी धनुषही ज्वालायें थीं और उसके द्वारा छोडे गए बाणोंका वेगही उस अग्निकी उष्णता थी । ऐसे उस अर्जुन रूप अग्निने क्रुद्ध होकर कुरुश्रेष्ठोंके रथोंके समूहको उसी प्रकार दग्ध कर दिया, जिस तरह अग्नि वनको जलाती है ॥ ८ ॥

तस्मिंस्तु युद्धे तुमुले प्रवृत्ते पार्थं विकर्णोऽतिरथं रथेन ।
विपाठवर्षेण कुरुप्रवीरो भीमेन भीमानुजमाससाद ॥ ९ ॥

उसी समय घोर युद्धके शुरु होनेपर महारथी अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये रथ पर बैठकर विकर्ण आया । महारथी भीमसेनके छोटे भाई अर्जुन पर तीक्ष्ण बाणोंकी झडी लगाता हुआ वह युद्ध करने लगा ॥ ९ ॥

ततो विकर्णस्य धनुर्विकृष्य जाम्बूनदाग्र्योपचितं दृढज्यम्।
अपातयद्ध्वजमस्य प्रमथ्य छिन्नध्वजः सोऽप्यपयाज्जवेन ॥ १० ॥
उसी समय अर्जुनने अपने बाणोंसे विकर्णके सोनेसे चित्रित दृढ रोदेवाले धनुषको काटकर उसकी ध्वजाको गिरा दिया। ध्वजा और धनुषके बीचसे कट जानेसे विकर्ण बहुत घबडाया और युद्ध छोडकर भाग गया ॥ १० ॥

तं शात्रवाणां गणबाधितारं कर्माणि कुर्वाणममानुषाणि।
शत्रुन्तपः कोपममृष्यमाणः समर्पयत्कूर्मनखेन पार्थम् ॥ ११ ॥
तब शत्रुन्तप नामका राजा इसको सहन न कर सका और उसने शत्रुओंके समूहको नष्ट करनेवाले और अमानुष कर्मोंको करनेवाले अर्जुनकी तरफ कूर्मनख नामके बाण छोडे ॥ ११ ॥

स तेन राज्ञातिरथेन विद्धो विगाहमानो ध्वजिनीं कुरूणाम्।
शत्रुन्तपं पञ्चभिराशु विद्ध्वा ततोऽस्य सूतं दशभिर्जघान ॥ १२ ॥
कौरवोंकी सेनामें प्रवेश करते हुए अर्जुनने अतिरथी राजा शत्रुन्तपके बाणोंसे विद्ध होकर तत्काल शत्रुन्तपको पांच बाणोंसे उसके बाद उसके सारथिको दश बाणोंसे बींधकर मार डाला ॥ १२ ॥

ततः स विद्धो भरतर्षभेण बाणेन गात्रावरणातिगेन।
गतासुराजौ निपपात भूमौ नगो नगाग्रादिव वातरुग्णः ॥ १३ ॥
भरतश्रेष्ठ अर्जुनके द्वारा छोडे गए कवचको भी भेदकर निकल जानेवाले बाणोंसे विद्ध होकर निष्प्राण होकर वह इस प्रकार पृथ्वीपर गिर गया, जैसे पर्वतसे वायु द्वारा वृक्ष टूटकर गिरता है ॥ १३ ॥

रथर्षभास्ते तु रथर्षभेण वीरा रणे वीरतरेण भग्नाः।
चकम्पिरे वातवशेन काले प्रकम्पितानीव महावनानि ॥ १४ ॥
जब महावीर कुरुकुलसिंह अर्जुनने राजा शत्रुन्तपको मारा, तब कौरवसेनाके वीर योद्धा इस प्रकार कांपने लगे जैसे अधिक वायु चलनेसे वनके वृक्ष कांपने लगते हैं ॥ १४ ॥

हतास्तु पार्थेन नरप्रवीरा भूमौ युवानः सुषुपुः सुवेषाः।
वसुप्रदा वासवतुल्यवीर्याः पराजिता वासवजेन सङ्ख्ये
सुवर्णकार्ष्णायसवर्मनद्धा नागा यथा हैमवताः प्रवृद्धाः। ॥ १५ ॥
इसी तरह अत्यन्त धनवान्, इन्द्रके समान बलशाली, उत्तम वेष धारण किए हुए अनेकों नरश्रेष्ठ युवक युद्धमें इन्द्रके पुत्र अर्जुनके द्वारा पराजित होकर एवं मारे जाकर भूमि पर पडे हुए थे। उस समय मरे हुए सोने और लोहेके कवच पहने हुए वे वीर ऐसे दीखते थे जैसे हिमाचलमें उत्पन्न हुए बडे बडे हाथी हों ॥ १५ ॥

तथा स शत्रुन्समरे विनिघ्नन्गाण्डीवधन्वा पुरुषप्रवीरः ।
चचार सङ्ख्ये प्रदिशो दिशश्च दहन्निवाग्निर्वनमातपान्ते ॥ १६ ॥

गाण्डीवधनुषधारी पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन युद्धमें योद्धाओंको मारते हुए उस युद्धमें सब दिशा प्रदिशाओंको जलाते हुए इस प्रकार घूमने लगे जैसे जेठ मासकी अग्नि वनोंको दग्ध करते हुए संचार करती है ॥ १६ ॥

प्रकीर्णपर्णानि यथा वसन्ते विशातयित्वात्यनिलो नुदन्खे ।
तथा सपत्नान्विकिरन्किरीटी चचार सङ्ख्येऽतिरथो रथेन ॥ १७ ॥

उस समय युद्धमें घूमते हुए महारथी अर्जुनकी ऐसी शोभा बढी जैसे वसन्त ऋतुमें पत्ते और बादल उडाते हुई वायुकी होती है। वह अतिरथी किरीटधारी अर्जुन रथमें बैठकर शत्रुओंको तितरबितर करते हुए युद्धक्षेत्रमें विचरने लगे ॥ १७ ॥

शोणाश्ववाहस्य हयान्निहत्य वैकर्तनभ्रातुरदीनसत्त्वः ।
एकेन संग्रामजितः शरेण शिरो जहाराथ किरीटमाली ॥ १८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त बलशाली किरीटधारी अर्जुनने विकर्तन कर्णके छोटे भाईके रथमें जुडे हुए लाल घोडे मार डाले तथा एक ही बाणसे संग्रामजित् राजाका सिर उडा दिया ॥ १८ ॥

तस्मिन्हते भ्रातरि सूतपुत्रो वैकर्तनो वीर्यमथाददानः ।
प्रगृह्य दन्ताविव नागराजो महर्षभं व्याघ्र इवाभ्यधावत् ॥ १९ ॥

उस भाईके मारे जानेसे विकर्तन पुत्र कर्णको बडा क्रोध हो गया और जिस प्रकार कोई क्रोधी हाथी अपने दोनों दांतोंको सीधा करके आक्रमण करनेके लिए दौडता है, अथवा जिस प्रकार कोई व्याघ्र किसी श्रेष्ठ बैलकी तरफ दौडता है, उसी तरह कर्ण भी अर्जुनकी तरफ दौडा ॥१९॥

स पाण्डवं द्वादशभिः पृषत्कैर्वैकर्तनः शीघ्रमुपाजघान ।
विव्याध गात्रेषु हयांश्च सर्वान्विराटपुत्रं च शरैर्निजघ्ने ॥ २० ॥

कर्णने शीघ्र ही अर्जुनके शरीरमें बारह बाण मारे तथा अपने बाणोंसे विराट पुत्रके शरीरको तथा अर्जुनके घोडोंको घायल कर दिया ॥ २० ॥

स हस्तिनेवाभिहतो गजेन्द्रः प्रगृह्य भल्लान्निशितान्निषङ्गात् ।
आकर्णपूर्णं च धनुर्विकृष्य विव्याध बाणैरथ सूतपुत्रम् ॥ २१ ॥

जिस प्रकार एक हाथी दूसरे हाथीके द्वारा मारे जानेपर बहुत ही क्रोधित हो जाता है, उसी तरह क्रुद्ध होकर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणोंको तूणीरसे निकाल और कान पर्यन्त खींचकर सूतपुत्र कर्णकी ओर चलाना आरम्भ किया ॥ २१ ॥

अथास्य बाहूरुशिरोललाटं ग्रीवां रथाङ्गानि परावमर्दी ।
स्थितस्य बाणैर्युधि निर्बिभेद गाण्डीवमुक्तैरशनिप्रकाशैः ॥ २२ ॥

युद्धमें उस समय शत्रुनाशी अर्जुनके गाण्डीव धनुपसे छूटे हुए तीक्ष्ण और वज्रके समान चमकते हुए बाणोंसे कर्णके हाथ, जंघा, शिर, माथा, गला, मुख, और सब अंग कट गये ॥ २२ ॥

स पार्थमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नो गजो गजेनेव जितस्तरस्वी ।
विहाय सङ्ग्रामशिरः प्रयातो वैकर्तनः पाण्डवबाणतप्तः ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ १३०० ॥

इस प्रकार अर्जुनके द्वारा छोडे गए बाणोंसे पीडित हुआ कर्ण हाथीसे पराजित हुए दूसरे हाथीके समान अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल हो गया और रणभूमिसे भाग गया ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें उनञ्चासवां अध्याय समाप्त ॥ ४९॥ १३०० ॥

५०

वैशम्पायन उवाच

अपयाते तु राधेये दुर्योधनपुरोगमाः ।
अनीकेन यथास्वेन शनैराछेन्त पाण्डवम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! जब राधापुत्र कर्ण युद्धको छोडकर भाग गया, तब दुर्योधनादि वीर अपनी अपनी सेनामें खडे होकर धीरे धीरे अर्जुनके ऊपर बाण चलाने लगे ॥ १ ॥

बहुधा तस्य सैन्यस्य व्यूढस्यापततः शरैः ।
अभियानीयमाज्ञाय वैराटिरिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

बाणोंसे सम्पन्न उत्तम व्यूहको बनाकर आते हुए उस सैन्यको देखकर और अर्जुनके मनोगत विचारोंको जानकर विराटपुत्रने कहा ॥ २ ॥

आस्थाय रुचिरं जिष्णो रथं सारथिना मया ।
कतमद्यास्यसेऽनीकमुक्तो यास्याम्यहं त्वया ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! मुझ सारथीको साथमें लेकर आप कौनसी सेनासे युद्ध करना चाहते हैं? कहिए, आपके कहनेपर मैं उधर ही रथको ले चलूँ ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

लोहिताक्षमरिष्टं यं वैयाघ्रमनुपश्यसि ।
नीलां पताकामाश्रित्य रथे तिष्ठन्तमुत्तर ॥ ४ ॥

अर्जुन बोले– हे उत्तर ! यह उत्तम व्याघ्रके चर्मको धारण किए, लाल आंखोंवाला जो अपराजेय वीर नीली पताकाका आश्रय लेकर रथमें खडा हुआ है ४ ॥

कृपस्यैतद्रथानीकं प्रापयस्वैतदेव माम् ।
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं दृढधन्विनः ॥ ५ ॥

वही कृपाचार्यकी रथसेना है । तुम मुझे वहीं ले चलो । आज मैं दृढ धनुर्धारी कृपाचार्यको अपनी धनुर्विद्या दिखाऊंगा ॥ ५ ॥

कमण्डलुर्ध्वजे यस्य शातकुम्भमयः शुभः ।
आचार्य एष हि द्रोणः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ६ ॥

जिनकी ध्वजापर सोनेका बना सुन्दर कमण्डलु बना हुआ है, येही सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हमारे गुरु द्रोणाचार्य हैं ॥ ६ ॥

सुप्रसन्नमना वीर कुरुष्वैनं प्रदक्षिणम् ।
अत्रैव चाविरोधेन एष धर्मः सनातनः ॥ ७ ॥

हे वीर ! प्रसन्न मनसे तथा मनमें किसी भी तरहका वैरभाव न रखकर इन द्रोणाचार्यकी प्रदक्षिणा करो, यही सनातन धर्म है ॥ ७ ॥

यदि मे प्रथमं द्रोणः शरीरे प्रहरिष्यति ।
ततोऽस्य प्रहरिष्यामि नास्य कोपो भविष्यति ॥ ८ ॥

जब पहले द्रोणाचार्य मेरे शरीरपर बाण मारेंगे, तब मैं भी उनके शरीरपर प्रहार करूंगा। ऐसा करनेसे गुरुको क्रोध नहीं होगा ॥ ८ ॥

अस्याविदूरे तु धनुर्ध्वजाग्रे यस्य दृश्यते ।
आचार्यस्यैष पुत्रो वै अश्वत्थामा महारथः ॥ ९ ॥

इनके समीपही जिनकी ध्वजापर धनुष बना हुआ है, यही आचार्यके पुत्र महारथी अश्वत्थामा हैं ॥ ९ ॥

×

सदा ममैष मान्यश्च सर्वशस्त्रभृतामपि ।
एतस्य त्वं रथं प्राप्य निवर्तेथाः पुनः पुनः ॥ १० ॥

ये हमारे ही नहीं वरन् सब शस्त्रधारियोंके भी सदा पूज्य हैं । तुम इनके रथके पास जाकर बारबार लौटो ॥ १० ॥

य एष तु रथानीके सुवर्णकवचावृतः ।
सेनाग्र्येण तृतीयेन व्यवहार्येण तिष्ठति ॥ ११ ॥
यस्य नागो ध्वजाग्रे वै हेमकेतनसंश्रितः ।
धृतराष्ट्रात्मजः श्रीमानेष राजा सुयोधनः ॥ १२ ॥

यह जो सजी हुई तीसरी रथसेनाके अग्रभागमें खडा हुआ है, जो उत्तम सुवर्ण कवच पहने हुए है, जिसकी ध्वजापर सोनेका हाथी बना हुआ है, यही राजा धृतराष्ट्रका पुत्र श्रीमान् महाराज दुर्योधन है ॥ ११-१२ ॥

एतस्याभिमुखं वीर रथं पररथारुजः ।
प्रयापयस्वैष तेजोभिः प्रमाथी युद्धदुर्मदः ॥ १३ ॥

हे वीर ! तुम हमारे रथको, जो शत्रुओंके रथको तोडनेवाला है, शीघ्र इसके रथके आगे ले चलो, क्योंकि यह अपने तेजके कारण महापराक्रमी और महायोद्धा है ॥ १३ ॥

एष द्रोणस्य शिष्याणां शीघ्रास्त्रः प्रथमो मतः ।
एतस्य दर्शयिष्यामि शीघ्रास्त्रं विपुलं शरैः ॥ १४ ॥

द्रोणाचार्यके सब शिष्योंमें इसके समान शीघ्र शस्त्र चलाने वाला कोई नहीं है । मैं भी आज युद्धमें इसको बाणोंको शीघ्रतासे चलानेमें अपनी कुशलता दिखाऊंगा ॥ १४ ॥

नागकक्ष्या तु रुचिरा ध्वजाग्रे यस्य तिष्ठति ।
एष वैकर्तनः कर्णो विदितः पूर्वमेव ते ॥ १५ ॥

जिसकी ध्वजापर हाथीकी शृंखलाका सुन्दर चिन्ह बना हुआ है, यही विकर्त्तनपुत्र कर्ण है इसको तुम पहलेसे ही जानते हो ॥ १५ ॥

एतस्य रथमास्थाय राधेयस्य दुरात्मनः ।
यत्तो भवेथाः संग्रामे स्पर्धत्येष मया सदा ॥ १६ ॥

इस दुरात्मा राधापुत्रसे, जब रथोंपर बैठकर युद्ध हो, तब तुम अत्यन्त सावधान रहना, क्योंकि यह सदा मुझसे स्पर्धा करता है ॥ १६ ॥

यस्तु नीलानुसारेण पञ्चतारेण केतुना ।
हस्तावापी बृहद्धन्वा रथे तिष्ठति वीर्यवान् ॥ १७ ॥

जिनकी नीली ध्वजा पर पांच तारे बने हुए हैं, जो महाबली कवच पहनकर और एक महान् धनुषको धारण किए रथमें बैठे हैं ॥ १७ ॥

यस्य तारार्कचित्रोऽसौ रथे ध्वजवरः स्थितः ।
यस्यैतत्पाण्डुरं छत्रं विमलं मूर्ध्नि तिष्ठति ॥ १८ ॥

जिनके रथपर सूर्य और नक्षत्रोंके समान सुन्दर श्रेष्ठ ध्वजा लगी हुई है, जिनके शिर पर यह निर्मल सफेद छत्र लगा हुआ है ॥ १८ ॥

महतो रथवंशस्य नानाध्वजपताकिनः ।
बलाहकाग्रे सूर्यो वा य एष प्रमुखे स्थितः ॥ १९ ॥

जो महारथी अनेक रथ ध्वजा और पताकासे युक्त सेनाके अग्रभागमें मेघोंके बीचमें सूर्यके समान खडे हैं ॥ १९ ॥

हैमं चन्द्रार्कसंकाशं कवचं यस्य दृश्यते ।
जातरूपशिरस्त्राणस्त्रासयन्निव मे मनः ॥ २० ॥

जिनका सोनेका कवच चन्द्रमा और सूर्यके समान जगमगा रहा है, जिनके सोनेका शिरस्त्राण देखकर मेरा हृदय कांपसा जाता है ॥ २० ॥

एष शान्तनवो भीष्मः सर्वेषां नः पितामहः ।
राजश्रियावबद्धस्तु दुर्योधनवशानुगः ॥ २१ ॥

यही राजकी लक्ष्मीसे बंधे हुए होनेके कारण सम्पन्न दुर्योधनके वशवर्त्ती हम सबके पितामह शान्तनुपुत्र भीष्म हैं ॥ २१ ॥

पश्चादेष प्रयातव्यो न मे विघ्नकरो भवेत् ।
एतेन युध्यमानस्य यत्तः संयच्छ मे हयान् ॥ २२ ॥

तुम इनके पास पीछे चलना, क्योंकि ये हमारे युद्धमें विघ्न नहीं करेंगे। परन्तु इनसे युद्ध करते समय तुम सावधान होकर घोडे हांकना ॥ २२ ॥

ततोऽभ्यवहदव्यग्रो वैराटिः सव्यसाचिनम् ।
यत्रातिष्ठत्कृपो राजन्योत्स्यमानो धनञ्जयम् ॥ २३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥ १३२३ ॥

तदनन्तर, हे राजन् ! विराटपुत्र उत्तरने भयको छोड जिधर कृपाचार्य अर्जुनके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार थे उधरकी और अर्जुनके रथको चलाया ॥ २३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त ॥ ५० ॥ १३२३ ॥

: ६१

वैशम्पायन उवाच

तान्यनीकान्यदृश्यन्त कुरूणामुग्रधन्विनाम्
संसर्पन्तो यथा मेघा घर्मान्ते मन्दमारुताः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जयमेजय ! उस समय महाधनुर्धारी कौरवोंकी सेना ऐसी दिखाई दे रही थी कि मानों वर्षाकालमें मन्दवायुसे प्रेरित होकर मेघ बढे चले आ रहे हों ॥ १ ॥

अभ्याशे वाजिनस्तस्थुः समारूढाः प्रहारिभिः ।
भीमरूपाश्च मातङ्गास्तोमराङ्कुशचोदिताः ॥ २ ॥

सेनाके दोनों ओर घोडोंपर चढे हुए प्रहारमें कुशल वीर थे। तथा तोमर और अंकुशसे प्रेरित होनेवाले मतवाले हाथी खडे हुए थे ॥ २ ॥

ततः शक्रः सुरगणैः समारुह्य सुदर्शनम् ।
सहोपायात्तदा राजन्विश्वाश्विमरुतां गणैः ॥ ३ ॥

हे राजन् जनमेजय ! तब इन्द्र समस्त देवगण, अश्विनीकुमार तथा सब मरुतोंके गणोंके साथ अपने उत्तम दर्शनीय विमान पर चढकर वहां आए ॥ ३ ॥

तद्देवयक्षगन्धर्वमहोरगसमाकुलम् ।
शुशुभेऽभ्रविनिर्मुक्तं ग्रहैरिव नभस्तलम् ॥ ४ ॥

हे राजन् जनमेजय ! देवता, यक्ष, गन्धर्व और नागोंसे घिरे हुए उन सबसे आकाशकी ऐसी शोभा बढी, जैसे नक्षत्रोंके उदय होनेसे मेघरहित आकाशकी शोभा बढती है ॥ ४ ॥

अस्त्राणां च बलं तेषां मानुषेषु प्रयुज्यताम् ।
तच्च घोरं महद्युद्धं भीष्मार्जुनसमागमे ॥ ५ ॥

उस समय भीष्माचार्य और अर्जुनका घोर युद्ध होने लगा । वे लोग मानवयुद्धोंमें प्रयोग किए जानेवाले अस्त्रोंका प्रयोग करने लगे ॥ ५ ॥

शतं शतसहस्राणां यत्र स्थूणा हिरण्मयाः ।
मणिरत्नमयाश्चान्याः प्रासादमुपधारयन् ॥ ६ ॥

इन्द्रके विमानमें एक करोड सोनेके खम्भे लगे हुए थे, और बीचमें एक मणिका खम्भा लगा था । उन्हींपर उस विमानका महल खडा हुआ था ॥ ६ ॥

तत्र कामगमं दिव्यं सर्वरत्नविभूषितम् ।
विमानं देवराजस्य शुशुभे खेचरं तदा ॥ ७ ॥

वह इच्छानुसार चलनेवाला दिव्य मणियोंसे भूषित इन्द्रका विमान आकाशमें शोभा देने लगा ॥ ७ ॥

तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशत्तिष्ठन्ति सहवासवाः ।
गन्धर्वा राक्षसाः सर्पाः पितरश्च महर्षिभिः ॥ ८ ॥
तथा राजा वसुमना बलाक्षः सुप्रतर्दनः ।
अष्टकश्च शिबिश्चैव ययातिर्नहुषो गयः ॥ ९ ॥

तैंतीस देवता, इन्द्र, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, पितर, महर्षि, राजा वसुमना, बलाक्ष, सुप्रतर्दन अष्टक, शिबि, ययाति, नहुष, गय ॥ ८–९ ॥

मनुः क्षुपो रघुर्भानुः कृशाश्वः सगरः शलः ।
विमाने देवराजस्य समदृश्यन्त सुप्रभाः ॥ १० ॥

मनु, क्षुप, रघु, भानु, कृशाश्व, सगर और राजा शल ये सभी तेजस्वी राजा उस बिमानमें दिखाई दिए ॥ १० ॥

अग्नेरीशस्य सोमस्य वरुणस्य प्रजापतेः ।
तथा धातुर्विधातुश्च कुबेरस्य यमस्य च ॥ ११ ॥
अलम्बुसोग्रसेनस्य गन्धर्वस्य च तुम्बुरोः
यथाभागं यथोद्देशं विमानानि चकाशिरे ॥ १२ ॥

इसी प्रकार अग्नि, शिव, चन्द्रमा, वरुण, प्रजापति, धाता, विधाता, कुबेर, यम, अलम्बुस, उग्रसेन और गन्धर्व तुम्बुरु आदिके विमान भी यथायोग्य क्रमके अनुसार यथायोग्य स्थान-पर आकर सुशोभित होने लगे ॥ ११–१२ ॥

सर्वदेवनिकायाश्च सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्जुनस्य कुरूणां च द्रष्टुं युद्धमुपागताः ॥ १३ ॥

ये सब विमान अपने अपने क्रमके अनुसार यथास्थान आकाशमें चमकने लगे, समस्त देवता, सिद्ध और महर्षिजन कौरव और अर्जुनके इस युद्धको देखने आये ॥ १३ ॥

दिव्यानां तत्र माल्यानां गन्धः पुण्योऽथ सर्वशः ।
प्रससार वसन्ताग्रे वनानामिव पुष्पताम् ॥ १४ ॥

हे जनमेजय ! उस समय देवताओंकी दिव्य मालाओंकी पवित्र सुगन्ध सब दिशाओंमें ऐसी पूरित हो गई जैसे वसन्तऋतुके प्रारंभमें खिले हुए फूलोंसे युक्त वनोंकी होती है ॥ १४ ॥

रक्तारक्तानि देवानां समदृश्यन्त तिष्ठताम् ।
आतपत्राणि वासांसि स्रजश्च व्यजनानि च ॥ १५ ॥

उस समय देवताओंके वस्त्र, छत्रमाला और पंखोंके कारण सर्वत्र लाली छा गई ॥ १५ ॥

उपशाम्यद्रजो भौमं सर्वं व्याप्तं मरीचिभिः ।
दिव्यान्गन्धानुपादाय वायुर्योधानसेवत ॥ १६ ॥
प्रभासितमिवाकाशं चित्ररूपमलङ्कृतम् ।
संपतद्भिः स्थितैश्चैव नानारत्नावभासितैः ।
विमानैर्विविधैश्चित्रैरुपानीतैः सुरोत्तमैः ॥ १७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकपंचाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ १३४० ॥

देवों द्वारा उस स्थानपर विविध विमान लाए गए थे । अनेक रत्नोंसे प्रकाशित देवविमान कुछ आ जा रहे थे तो कुछ स्थिर थे । उन विमानोंसे सारा आकाश प्रकाशित हो गया था और वह चित्रविचित्र रूपोंसे अलंकृत हो गया था और सब जगह किरणोंसे गई और दिव्य गन्धको लेकर वायु वीरोंकी सेवा करने लगी ॥ १६-१७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥ १३४० ॥

: ५२ :

वैशम्पायन उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र महावीर्यपराक्रमः ।
आजगाम महासत्त्वः कृपः शस्त्रभृतां वरः ।
अर्जुनं प्रति संयोद्धुं युद्धार्थी स महारथः ॥ १ ॥

इसी बीच महावीर्य, पराक्रमसे युक्त, महाबलशाली, महारथी शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ युद्ध करनेकी अभिलाषावाले कृपाचार्य युद्ध करनेके लिए अर्जुनकी तरफ आए ॥ १ ॥

तौ रथौ सूर्यसंकाशौ योत्स्यमानौ महाबलौ ।
शारदाविव जीमूतौ व्यरोचेतां व्यवस्थितौ ॥ २ ॥

सूर्यके समान वे दोनों तेजस्वी महाबलशाली वीर परस्पर युद्ध करते समय इस तरह प्रतीत हो रहे थे कि मानों शरदृतु में दो मेघ आपसमें लड रहे हों ॥ २ ॥

पार्थोऽपि विश्रुतं लोके गाण्डीवं परमायुधम् ।
विकृष्य चिक्षेप बहून्नाराचान्मर्मभेदिनः ॥ ३ ॥

अर्जुनने भी जगत् विख्यात अत्यन्त श्रेष्ठ शस्त्र गाण्डीव धनुषको खींचकर अनेक मर्मभेदी बाण चलाये ॥ ३ ॥

तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैर्नाराचान्रक्तभोजनान् ।
कृपश्चिच्छेद पार्थस्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४ ॥

कृपाचार्यने उन रक्तभोजी अर्जुनके सैंकडों और हजारों बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार्गहीमें काट दिया ॥ ४ ॥

ततः पार्थश्च संक्रुद्धश्चित्रान्मार्गान्प्रदर्शयन् ।
दिशः संछादयन्बाणैः प्रदिशश्च महारथः ॥ ५ ॥

तब महारथी अर्जुनने बहुत क्रुद्ध होकर अनेक विचित्र तरीकोंको दिखलाते हुए अपने बाणोंसे सब दिशाओं और उपदिशाओंको ढक दिया ॥ ५ ॥

एकच्छायमिवाकाशं प्रकुर्वन्सर्वतः प्रभुः ।
प्रच्छादयदमेयात्मा पार्थः शरशतैः कृपम् ॥ ६ ॥

सामर्थ्यशाली अर्जुनने अपने बाणोंसे आकाशको इस तरह ढक दिया कि वह स्पष्ट आकाश न दीखकर आकाशकी छाया सा प्रतीत होने लगा । उस अमित आत्मशक्तिवाले अर्जुनने जब अपनी इस विचित्र बाणविद्याको प्रकाशित किया कि कृपाचार्य उन बाणोंसे ढक गये ॥ ६ ॥

स शरैरर्पितः क्रुद्धः शितैरग्निशिखोपमैः ।
तूर्णं शरसहस्रेण पार्थमप्रतिमौजसम् ।
अर्पयित्वा महात्मानं ननाद समरे कृपः ॥ ७ ॥

तब बाणोंसे व्याकुल होनेपर कृपाचार्यको महाक्रोध हो आया और अग्निकी ज्वालाके समान सहस्रों बाणोंसे अर्जुनके बाणोंको काटकर महातेजस्वी अर्जुनकी ओर एक सहस्र बाण चलाये और युद्धमें गर्जने लगे ॥ ७ ॥

ततः कनकपुङ्खाग्रैर्वीरः सन्नतपर्वभिः ।
त्वरन्गाण्डीवनिर्मुक्तैरर्जुनस्तस्य वाजिनः ।
चतुर्भिश्चतुरस्तीक्ष्णैरविध्यत्परमेषुभिः ॥ ८ ॥

अर्जुनने तब सोनेके अग्रभागवाले तथा तीक्ष्ण नोकों वाले बाणोंको शीघ्रता करते हुए अपने गाण्डीवपर जोडा, तथा उनमें अत्यंत तीक्ष्ण चार श्रेष्ठ बाणोंसे उन कृपाचार्यके चार घोडोंके बींध डाला ॥ ८ ॥

ते हया निशितैर्विद्धा ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ।
उत्पेतुः सहसा सर्वे कृपः स्थानादथाच्यवत् ॥ ९ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण होनेके कारण मानों जलते हुए सर्पोंके समान बाणोंसे विद्ध होकर वे सब घोडे अचानक उछले, इस कारण कृप भी अपने रथसे नीचे गिर पडे ॥ ९ ॥

च्युतं तु गौतमं स्थानात्समीक्ष्य कुरुनन्दनः ।
नाविध्यत्परवीरघ्नो रक्षमाणोऽस्य गौरवम् ॥ १० ॥

कृपाचार्यको अपने रथसे गिरा हुआ देखकर भी शत्रुनाशी कुरुनन्दनने अपना गुरु जान उनका गौरव रखते हुए उन्हें छोड दिया ॥ १० ॥

स तु लब्ध्वा पुनः स्थानं गौतमः सव्यसाचिनम् ।
विव्याध दशभिर्बाणैस्त्वरितः कङ्कपत्रिभिः ॥ ११ ॥

गौतम गोत्रीय कृप फिर अपने रथपर आकर बैठ गए और उन्होंने शीघ्र ही कंकके पंखोंवाले दस बाणोंसे सव्यसाची अर्जुनको मारा ॥ ११ ॥

ततः पार्थो धनुस्तस्य भल्लेन निशितेन च ।
चिच्छेदैकेन भूयश्च हस्तावापमथाहरत् ॥ १२ ॥

तब अर्जुनने एक तीक्ष्ण बाणसे कृपाचार्यका धनुष काट दिया फिर एक बाणसे हस्ताच्छादन (दस्ताने) काट दिया ॥ १२ ॥

अथास्य कवचं बाणैर्निशितैर्मर्मभेदिभिः ।
व्यधमन्न च पार्थोऽस्य शरीरमवपीडयत् ॥ १३ ॥

फिर मर्मको भेदजानेवाले तीक्ष्ण बाणोंसे उनका कवच काट दिया । तथापि उनके शरीरको उन्होंने पीडा नहीं पहुंचाई ॥ १३ ॥

तस्य निर्मुच्यमानस्य कवचात्काय आबभौ ।
समये मुच्यमानस्य सर्पस्येव तनुर्यथा ॥ १४ ॥

कवच कटकर गिरते समय कृपाचार्यके शरीरकी ऐसी शोभा हुई जैसे केंचुलीसे निकले हुए सर्पके शरीरकी होती है ॥ १४ ॥

छिन्ने धनुषि पार्थेन सोऽन्यदादाय कार्मुकम् ।
चकार गौतमः सज्यं तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १५ ॥

अर्जुनने जब धनुष काट डाला तो कृपाचार्यने दूसरे धनुषको लेकर इतनी जल्दी रोदा चढाया कि सबको आश्चर्य होने लगा ॥ १५ ॥

स तदप्यस्य कौन्तेयश्चिच्छेद नतपर्वणा ।
एवमन्यानि चापानि बहूनि कृतहस्तवत् ।
शारद्वतस्य चिच्छेद पाण्डवः परवीरहा ॥ १६ ॥

अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणसे उस धनुषको भी काट दिया । इस प्रकार कृपाचार्यने अन्य अनेक धनुष लिये और शत्रुनाशन अर्जुनने अपने हाथोंकी कुशलाता दिखाकर सब काट दिये ॥ १६ ॥

स छिन्नधनुरादाय अथ शक्तिं प्रतापवान् ।
प्राहिणोत्पाण्डुपुत्राय प्रदीप्तामशनीमिव ॥ १७ ॥

जब प्रतापी कृपाचार्यके पास धनुष न रहे, तब जलते हुए वज्रके समान भयंकर शक्ति लेकर अर्जुनकी ओर चलाई ॥ १७ ॥

तामर्जुनस्तदायान्तीं शक्तिं हेमविभूषिताम् ।
वियद्गतां महोल्काभां चिच्छेद दशभिः शरैः ।
सापतद्दशधा छिन्ना भूमौ पार्थेन धीमता ॥ १८ ॥

अर्जुनने उस विजलीके समान तेजवाली सुवर्णभूषित शक्तिको आकाशमेंसे आते देख दस बाणोंसे उसे काट डाला और वह शक्ति भी बुद्धिमान् अर्जुनके द्वारा दस टुकडोंमें काटी जाकर पृथ्वीपर गिर पडी ॥ १८ ॥

युगमध्ये तु भल्लैस्तु ततः सा सधनुः कृपः ।
तमाशु निशितैः पार्थं बिभेद दशभिः शरैः ॥ १९ ॥

एकदम कृपाचार्यने अपने दूसरे धनुषपर रोदा चढा लिया और उस धनुषपर एकसाथ अनेक बाण चढा लिए और शीघ्र ही अर्जुनके शरीरमें दस तीक्ष्ण बाण मारे ॥ १९ ॥

ततः पार्थो महातेजा विशिखानग्नितेजसः ।
चिक्षेप समरे क्रुद्धस्त्रयोदश शिलाशितान् ॥ २० ॥

तब महातेजस्वी अर्जुनने भी क्रोधमें भरकर अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशित तेरह बाण कृपाचार्यके शरीरमें मारे ॥ २० ॥

अथास्य युगमेकेन चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
षष्ठेन च शिरः कायाच्छरेण रथसारथेः ॥ २१ ॥

अर्जुनने एक बाणसे कृपाचार्यके रथके पहिये, चारसे चारों घोडे और छठे बाणसे कृपाचार्यके रथके सारथिके धडसे सिर अलग कर दिया ॥ २१ ॥

त्रिभिस्त्रिवेणुं समरे द्वाभ्यामक्षौ महाबलः ।
द्वादशेन तु भल्लेन चकर्तास्य ध्वजं तथा ॥ २२ ॥

युद्धमें महाबलशाली अर्जुनने त्रिवेणु अर्थात रथके दण्डको काट गिराया । दो बाणोंसे रथके अक्षको तोड डाला और बारहवें बाणसे उनकी ध्वजा काटकर गिरा दी ॥ २२ ॥

ततो वज्रनिकाशेन फल्गुनः प्रहसन्निव ।
त्रयोदशेनेन्द्रसमः कृपं वक्षस्यताडयत् ॥ २३ ॥

फिर इन्द्रतुल्य अर्जुनने हंसकर वज्रके समान तेरहवें बाणको कृपाचार्यके हृदयमें मारा ॥ २३ ॥

×

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवप्लुत्य तूर्णं चिक्षेप तां गदाम् ॥ २४ ॥

जब कृपाचार्यके रथ, सारथी, घोडे और धनुष सब काट दिये गये, तब वे गदा हाथमें लेकर रथसे कूद गए और उन्होंने वह भारी गदा अर्जुनकी ओर फेंकी ॥ २४ ॥

सा तु मुक्ता गदा गुर्वी कृपेण सुपरिष्कृता।
अर्जुनेन शरैर्नुन्ना प्रतिमार्गमथागमत् ॥ २५ ॥

कृपाचार्यके द्वारा छोडी गई वह उत्तम रीतिसे निर्मित भारी गदा अर्जुनके बाणोंसे टकराकर फिर वापस लौट गई ॥ २५ ॥

ततो योधाः परीप्सन्तः शारद्वतममर्षणम्।
सर्वतः समरे पार्थं शरवर्षैरवाकिरन् ॥ २६ ॥

जब इस प्रकार कृपाचार्य और अर्जुनका युक्त होने लगा। तब अनेक योद्धा क्रोधयुद्ध कृपाचार्यकी रक्षाके लिये आये और अर्जुनके ऊपर बाण बरसाने लगे ॥ २६ ॥

ततो विराटस्य सुतः सव्यमावृत्य वाजिनः।
यमकं मण्डलं कृत्वा तान्योधान्प्रत्यवारयत् ॥ २७ ॥

उसी समय विराटपुत्र उत्तरने अपने रथको बांयीं ओर घुमाकर सब योद्धाओंका मार्ग रोक दिया ॥ २७ ॥

ततः कृपमुपादाय विरथं ते नरर्षभाः।
अपाजह्रुर्महावेगाः कुन्तीपुत्राद्धनंजयात् ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ १३६८ ॥

तब उन सब नरश्रेष्ठ योद्धाओंने रथरहित कृपाचार्यको वेगेसे एक रथपर बिठलाकर कुन्तीपुत्र अर्जुनके आगेसे हटा दिया ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५२ ॥ १३६८ ॥

: ५३ :

अर्जुन उवाच

यत्रैषा काञ्चनी वेदी प्रदीप्ताग्निशिखोपमा।
उच्छ्रिता काञ्चने दण्डे पताकाभिरलङ्कृता।
तत्र मां वह भद्रं ते द्रोणानीकाय मारिष ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे शत्रुनाशक ! तुम्हारा कल्याण हो। सोनेके दण्डपर बनाई गई पताकाओंसे अलंकृत प्रदीप्त ज्वालाओंवाली अग्निके समान तेजस्वी सोनेकी वेदी जहां दिखाई दे रही है। वहीं मुझे द्रोणकी सेनाके पास ले चलो ॥ १ ॥

अश्वा शोणाः प्रकाशन्ते बृहन्तश्चारुवाहिनः।
स्निग्धविद्रुमसंकाशास्ताम्रास्याः प्रियदर्शनाः।
युक्ता रथवरे यस्य सर्वशिक्षाविशारदाः ॥ २॥

जिसके रथश्रेष्ठमें सभी तरहकी शिक्षाओंमें कुशल, बडे बडे, अच्छीतरहसे ढोनेवाले, चिकने मुंगेके समान रंगवाले, ताम्बेके समान वर्णके मुखवाले, देखनेमें सुन्दर लाल घोडे जुडे हुए चमक रहे हैं ॥ २॥

दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः।
सर्वलोकेषु विख्यातो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥ ३॥

वे ही महाबाहु, महातेजस्वी, रूप और बलसे युक्त सब लोकोंमें विख्यात प्रतापी द्रोणाचार्य हैं ॥ ३॥

बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये।
वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ४॥

यह बुद्धिमें शुक्रके तुल्य, तथा नीतिमें बृहस्पतिके समान हैं, वेदविद्या और ब्रह्मचर्य इनमें निवास करते हैं ॥ ४॥

ससंहाराणि दिव्यानि सर्वाण्यस्त्राणि मारिष।
धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन्नित्यं प्रतिष्ठितः ॥ ५॥

हे शत्रुनाशक ! संहारकी विद्यासे युक्त सभी दिव्य अस्त्र और समस्त धनुर्वेद जिनमें पूरी तरह स्थित हैं ॥ ५॥

क्षमा दमश्च सत्यं च आनृशंस्यमथार्जवम्।
एते चान्ये च बहवो गुणा यस्मिन्द्विजोत्तमे ॥ ६॥

जिन द्विजश्रेष्ठमें क्षमा, दम (इन्द्रियोंको वशमें करना) सत्य, आनृशंस्य (सबसे यथा योग्य दयापूर्वक व्यवहार करना) और कोमलता ये तथा अन्य भी बहुतसे गुण रहते हैं ॥ ६॥

तेनाहं योद्‌धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे।
तस्मात्त्वं प्रापयाचार्यं क्षिप्रमुत्तर वाहय ॥ ७॥

उन्हीं महाभाग द्रोणाचार्यके साथ मैं युद्धमें लडना चाहता हूँ, इसलिये, हे उत्तर ! मेरे रथको शीघ्र उनके आगे ले चलो, मुझे वहां पहुंचा दो ॥ ७॥

वैशम्पायन उवाच

अर्जुनेनैवमुक्तस्तु वैराटिर्हेमभूषितान्।
चोदयामास तानश्वान्भारद्वाजरथं प्रति ॥ ८॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर उत्तरने सुवर्णभूषित उन घोडोंको द्रोणाचार्यके रथकी ओर हांका ॥ ८॥

तमापतन्तं वेगेन पाण्डवं रथिनां वरम् ।
द्रोणः प्रत्युद्ययौ पार्थं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ९ ॥

जब द्रोणाचार्यने रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनको अपनी ओर आते देखा, तब वे भी उनकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे मतवाला हाथी मतवाले हाथीकी ओर जाता है ॥ ९ ॥

ततः प्राध्मापयच्छङ्खं भेरीशतनिनादितम् ।
प्रचुक्षुभे बलं सर्वमुद्धूत इव सागरः ॥ १० ॥

तब द्रोणाचार्यने अपने सैंकडों नगाडोंके समान आवाज करनेवाले अपने शङ्खको बजाया। उस शब्दको सुनकर सब सैन्यके लोग समुद्रके समान क्षुब्ध होने लगे ॥ १० ॥

अथ शोणान्सदश्वांस्तान्हंसवर्णैर्मनोजवैः ।
मिश्रितान्समरे दृष्ट्वा व्यस्मयन्त रणे जनाः ॥ ११ ॥

जब द्रोणाचार्यके वे लालरंगके उत्तम घोडे मनके समान वेगवान और हंसके समान सफेद रंगके अर्जुनके घोडोंके साथ युद्धमें जा मिले, तब वहां उस युद्धभूमिमें स्थित सभी मनुष्य आश्चर्यचकित हो गये ॥ ११ ॥

तौ रथौ वीर्यसंपन्नौ दृष्ट्वा संग्राममूर्धनि ।
आचार्यशिष्यावजितौ कृतविद्यौ मनस्विनौ ॥ १२ ॥

समाश्लिष्टौ तदान्योन्यं द्रोणपार्थौ महाबलौ ।
दृष्ट्वा प्राकम्पत मुहुर्भरतानां महद्बलम् ॥ १३ ॥

समरभूमिमें रथी, वीर्यवान्, अजेय, शस्त्रविद्यामें कुशल मनस्वी महाबलशाली वे दोनों गुरु-शिष्य अर्थात् द्रोण-अर्जुन आपसमें भिड गए। तब उन्हें परस्पर युद्ध करते देखकर भारतोंकी वह विशालसेना भी कांप गई ॥ १२-१३ ॥

हर्षयुक्तस्तथा पार्थः प्रहसन्निव वीर्यवान् ।
रथं रथेन द्रोणस्य समासाद्य महारथः ॥ १४ ॥

तब हर्षसे युक्त होकर वीर्यवान् महारथी अर्जुन हंसते हुएसे अपने रथसे द्रोणके रथके पास जा पहुंचे ॥ १४ ॥

अभिवाद्य महाबाहुः सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा कौन्तेयः परवीरहा ॥ १५ ॥

तब शत्रुनाशी महाबाहु कुन्तीपुत्र अर्जुनने उन्हें प्रणाम किया फिर शान्तिपूर्वक स्निग्ध और मधुरवाणीसे वे द्रोणसे बोले ॥ १५ ॥

उषिताः स्म वने वासं प्रतिकर्म चिकीर्षवः ।
कोपं नार्हसि नः कर्तुं सदा समरदुर्जय ॥ १६ ॥

हे युद्धमें कठिनतासे जीते जानेके योग्य आचार्य ! हम लोगोंने बहुत दिन तक शत्रुओंसे प्रतिशोध लेनेके लिये वनमें वास किया है, इसलिये हे अविजेय ! आपको हमारे ऊपर क्रोध करना उचित नहीं है ॥ १६ ॥

अहं तु प्रहृते पूर्वं प्रहरिष्यामि तेऽनघ ।
इति मे वर्तते बुद्धिस्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

हे निष्पाप ! मेरा यह भी निश्चय है कि जब पहले आप मुझपर प्रहार करेंगे तभी मैं आप पर प्रहार करूंगा । इसलिये आपही मेरे ऊपर पहले बाण छोडिये ॥ १७ ॥

ततोऽस्मै प्राहिणोद्द्रोणः शरानधिकविंशतिम् ।
अप्राप्तांश्चैव तान्पार्थश्चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १८ ॥

अर्जुनके ऐसे वचन सुनकर द्रोणाचार्यने अर्जुनके बीससे अधिक बाण मारे । अर्जुनने अपनी कुशलतासे मार्गहीमें उन्हें काट दिया ॥ १८ ॥

ततः शरसहस्रेण रथं पार्थस्य वीर्यवान् ।
अवाकिरत्ततो द्रोणः शीघ्रमस्त्रं विदर्शयन् ॥ १९ ॥

तब वीर्यवान् द्रोणने शीघ्रतापूर्वक अस्त्र छोडनेकी कलामें अपनी कुशलता दिखाते हुए एक हजार बाणोंसे अर्जुनके रथको ढक दिया ॥ १९ ॥

एवं प्रववृते युद्धं भारद्वाजकिरीटिनोः ।
समं विमुञ्चतोः संख्ये विशिखान्दीप्ततेजसः ॥ २० ॥

जब द्रोणाचार्य और अर्जुनका युद्ध होने लगा, तब दोनों समान रूपसे तीक्ष्ण बाण युद्धमें छोडने लगे ॥ २० ॥

तावुभौ ख्यातकर्माणावुभौ वायुसमौ जवे ।
उभौ दिव्यास्त्रविदुषावुभावुत्तमतेजसौ ।
क्षिपन्तौ शरजालानि मोहयामासतुर्नृपान् ॥ २१ ॥

वे दोनों प्रसिद्ध कर्मवाले, दोनों ही वेगमें वायुके समान, दोनों ही दिव्य अस्त्रोंको जाननेवाले थे, दोनोंही उत्तम तेजस्वी थे, वे दोनों वीर अपने बाणोंके जालोंको छोडते हुए राजाओंको मोहित करने लगे ॥ २१ ॥

व्यस्मयन्त ततो योधाः सर्वे तत्र समागताः ।
शरान्विसृजतोस्तूर्णं साधु साध्विति पूजयन् ॥ २२ ॥

वहां आए हुए सभी योद्धा आश्चर्यचकित हो गए । और बाणोंको छोडनेवाले उनकी "साधु साधु" कहकर प्रशंसा करने लगे ॥ २२ ॥

द्रोणं हि समरे कोऽन्यो योद्धुमर्हति फल्गुनात् ।
रौद्रः क्षत्रियधर्मोऽयं गुरुणा यदयुध्यत ।
इत्यब्रुवञ्जनास्तत्र संग्रामशिरसि स्थिताः ॥ २३ ॥

समरभूमिमें खडे लोग कहने लगे कि अर्जुनको छोडकर द्रोणाचार्यसे और कौन युद्ध कर सकता है? क्षत्रियधर्म बडा कठिन है कि जिसके कारण शिष्यको भी गुरुसे युद्ध करना पडता है ॥ २३ ॥

वीरौ तावपि संरब्धौ संनिकृष्टौ महारथौ ।
छादयेतां शरव्रातैरन्योन्यमपराजितौ ॥ २४ ॥

वे दोनोंही वीर बहुत क्रोधी महारथी और अपराजित थे। जब वे दोनों आपसमें भिड गए, तब उन्होंने बाणोंके समूहसे एक दूसरेको ढक दिया ॥ २४ ॥

विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
संरब्धोऽथ भरद्वाजः फल्गुनं प्रत्ययुध्यत ॥ २५ ॥

तब महापराक्रमी द्रोणाचार्य क्रोधसे सोनेकी पीठवाले घोर धनुष खींचकर अर्जुनसे लडने लगे ॥ २५ ॥

स सायकमयैर्जालैरर्जुनस्य रथं प्रति ।
भानुमद्भिः शिलाधौतैर्भानोः प्रच्छादयत्प्रभाम् ॥ २६ ॥

द्रोणाचार्यने शिलापर घिसे हुए, महातेजस्वी, शीघ्र चलनेवाले, ऐसे बाण चलाये कि जिससे सूर्यकी प्रभा भी आच्छादित हो गई ॥ २६ ॥

पार्थं च स महाबाहुर्महावेगैर्महारथः ।
विव्याध निशितैर्बाणैर्मेघो वृष्ट्येव पर्वतम् ॥ २७ ॥

जैसे मेघ वृष्टिसे पर्वतको बींध देता है वैसेही महाबाहु और महारथी उन द्रोणने महा वेगवाले बाणोंसे अर्जुनको विद्ध कर दिया ॥ २७ ॥

तथैव दिव्यं गाण्डीवं धनुरादाय पाण्डवः ।
शत्रुघ्नं वेगवद्धृष्टो भारसाधनमुत्तमम् ॥ २८ ॥
विससर्ज शरांश्चित्रान्सुवर्णविकृतान्बहून् ।
नाशयञ्शरवर्षाणि भारद्वाजस्य वीर्यवान् ।
तूर्णं चापविनिर्मुक्तैस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥

इसी प्रकार प्रसन्नचित्तवाले अर्जुनने भी शत्रुनाशक, युद्ध करनेके योग्य, दिव्य गाण्डीव धनुष लेकर और सुनहरी विचित्र बाण चढाकर छोडे और वीर्यवान् अर्जुनने भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्यके सब बाणोंको काट दिया। अर्जुनको इतनी शीघ्रताके साथ बाणोंको चलाते देख सबको आश्चर्य होने लगा ॥ २८-२९ ॥

स रथेन चरन्पार्थः प्रेक्षणीयो धनंजयः ।
युगपद्दिक्षु सर्वासु सर्वशस्त्राण्यदर्शयत् ॥ ३० ॥

उस समय सुन्दर अर्जुन सब दिशाओंमें एक साथ बाणोंकी वर्षा करते हुए रथद्वारा घूमने फिरने लगे ॥ ३० ॥

एकच्छायमिवाकाशं बाणैश्चक्रे समन्ततः ।
नादृश्यत तदा द्रोणो नीहारेणेव संवृतः ॥ ३१ ॥

उनके बाण सब आकाशमें छा गये और उन्होंने आकाशको एक छायाके समान कर दिया उन बाणोंमें द्रोणाचार्य इस प्रकार छिप गये जैसे कुहरेमें सूर्य छिप जाता है ॥ ३१ ॥

तस्याभवत्तदा रूपं संवृतस्य शरोत्तमैः ।
जाज्वल्यमानस्य यथा पर्वतस्येव सर्वतः ॥ ३२ ॥

उस समय श्रेष्ठ बाणोंसे आच्छादित द्रोणाचार्यकी ऐसी शोभा बढी, जैसे सब ओरसे जलते हुए पर्वतकी होती है ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा तु पार्थस्य रणे शरैः स्वरथमावृतम् ।
स विस्फार्य धनुश्चित्रं मेघस्तनितनिस्वनम् ॥ ३३ ॥
अग्निचक्रोपमं घोरं विकर्षन्परमायुधम् ।
व्यशातयच्छरांस्तांस्तु द्रोणः समितिशोभनः ।
महानभूत्ततः शब्दो वंशानामिव दह्यताम् ॥ ३४ ॥

युद्धमें शोभा देनेवाले द्रोणने युद्धमें अपने रथको अर्जुनके बाणोंसे ढका हुआ देखा । तब उन्होंने मेघ और बिजलीकी सी गर्जवाले अग्निचक्रके समान भयंकर अत्यन्त श्रेष्ठशस्त्र अपने सुन्दर धनुषको फैलाया और उसे खींचकर अर्जुनके उन बाणोंको काट डाला । तब उनकी जलते हुए बांसोंके समान बहुत बडी आवाज हुई ॥ ३३-३४ ॥

जाम्बूनदमयैः पुङ्खैश्चित्रचापवरातिगैः ।
प्राच्छादयदमेयात्मा दिशः सूर्यस्य च प्रभाम् ॥ ३५ ॥

अमित आत्मशक्तिवाले द्रोणाचार्यने अद्भुत धनुषसे निकलनेवाले सुन्दर पंखवाले बाणोंसे सब दिशाएँ और सूर्यके तेजको ढक दिया ॥ ३५ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शराणां नतपर्वणाम् ।
वियच्चराणां वियति दृश्यन्ते बहुशः प्रजाः ॥ ३६ ॥

उस समय आकाशमें उडनेवाले, सोनेके पंखोंवाले, तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंमेंसे अनेक अन्य बाण निकलते हुए आकाशमें दिखाई देने लगे ॥ ३६ ॥

द्रोणस्य पुङ्खसक्ताश्च प्रभवन्तः शरासनात् ।
एको दीर्घ इवादृश्यदाकाशे संहतः शरः ॥ ३७ ॥

द्रोणके धनुषसे अनेक बाण निकल रहे थे और वे एक दूसरेकी पूंछमें लगे हुए थे, अतः प्रतीत ऐसा होता था कि मानो आकाशमें एक ही जुडा हुआ बडा लम्बा बाण हो ॥ ३७ ॥

एवं तौ स्वर्णविकृतान्विमुञ्चन्तौ महाशरान् ।
आकाशं संवृतं वीरावुल्काभिरिव चक्रतुः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वे दोनों शूरवीर सुवर्णचित्रित बडे बडे बाणोंको छोडने लगे, उनके बाणोंसे आकाश इस प्रकार आच्छादित हो गया, जैसे आकाश बिजलियोंसे भर गया हो ॥ ३८ ॥

शरास्तयोश्च विबभुः कङ्कबर्हिणवाससः ।
पङ्क्तयः शरदि खस्थानां हंसानां चरतामिव ॥ ३९ ॥

उन दोनोंके कंक और पक्षियोंके पंखोंसे युक्त विचित्र बाण आकाशमें शरत्कालमें आकाशमें उडते हुए हंसोंकी पंक्तियोंके समान शोभित होने लगे ॥ ३९ ॥

युद्धं समभवत्तत्र सुसंरब्धं महात्मनोः ।
द्रोणपाण्डवयोर्घोरं वृत्रवासवयोरिव ॥ ४० ॥

द्रोण और अर्जुन महात्माओंका ऐसा क्रोधपूर्ण घोर युद्ध हुआ, जैसे पहले वृत्रासुर और इन्द्रका हुआ था ॥ ४० ॥

तौ गजाविव चासाद्य विषाणाग्रैः परस्परम् ।
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ४१ ॥

जैसे दो हाथी अपने दांतोंके अग्रभागसे परस्पर आक्रमण करते हैं, उसीप्रकार पूरी तरह धनुष खींचकर छोडे गए बाणोंसे वे दोनों द्रोण अर्जुन एक दूसरेको मारने लगे ॥ ४१ ॥

तौ व्यवाहरतां शूरौ संरब्धौ रणशोभिनौ ।
उदीरयन्तौ समरे दिव्यान्यस्त्राणि भागशः ॥ ४२ ॥

अत्यन्त क्रोधित हुए और युद्धमें अत्यन्त शोभित होनेवाले वे दोनों वीर समय समय पर दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग करते हुए भी धर्मयुद्ध कर रहे थे ॥ ४२ ॥

अथ त्वाचार्यमुख्येन शरान्सृष्टाञ्शिलाशितान् ।
न्यवारयच्छितैर्बाणैरर्जुनो जयतां वरः ॥ ४३ ॥

जब श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने तीक्ष्ण किए गए बाणोंको चलाने आरम्भ किये, तब विजय करनेवालोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने उन सबको तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया ॥ ४३ ॥

दर्शयन्नैन्द्रिरात्मानमुग्रमुग्रपराक्रमः ।
इषुभिस्तूर्णमाकाशं बहुभिश्च समावृणोत् ॥ ४४ ॥

महापराक्रमी इन्द्र पुत्र अर्जुनने अपने पराक्रमको दिखलाकर शीघ्रही आकाशको असंख्य बाणोंसे ढक दिया ॥ ४४ ॥

जिघांसन्तं नरव्याघ्रमर्जुनं तिग्मतेजसम्
आचार्यमुख्यः समरे द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
अर्जुनेन सहाक्रीडच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५ ॥

नरव्याघ्र उग्रतेजस्वी अर्जुन यद्यपि आचार्यको मारना चाहते थे, तथापि शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ आचार्यमुख्य द्रोण तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंसे अर्जुनसे खेलते ही युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि मुञ्चन्तं भारद्वाजं महारणे ।
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य फल्गुनः समयोधयत् ॥ ४६ ॥

उस महारणमें दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करते हुए भरद्वाजके पुत्र द्रोणके अस्त्रोंका अपने अस्त्रोंसे निवारण करते हुए अर्जुनने युद्ध किया ॥ ४६ ॥

तयोरासीत्संप्रहारः क्रुद्धयोर्नरसिंहयोः ।
अमर्षिणोस्तदान्योन्यं देवदानवयोरिव ॥ ४७ ॥

उन दोनों क्रोधमें भरे हुए नरव्याघ्रोंका ऐसा घोर युद्ध हुआ जैसा कि एक दूसरेको सहन न करनेवाले देवता और दानवोंका होता है ॥ ४७ ॥

ऐन्द्रं वायव्यमाग्नेयमस्त्रमस्त्रेण पाण्डवः ।
द्रोणेन मुक्तं मुक्तं तु ग्रसते स्म पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

इन्द्र, वायु और अग्निके अस्त्रभी द्रोणाचार्यने चलाये, अर्जुनने उनको भी बार बार काट दिया ॥ ४८ ॥

एवं शूरौ महेष्वासौ विसृजन्तौ शिताञ्शरान् ।
एकच्छायं चक्रतुस्तावाकाशं शरवृष्टिभिः ॥ ४९ ॥

इस प्रकार शूरवीर, महाधनुर्धारी उन दोनोंने तीक्ष्ण बाणोंको छोडते हुए अपनी शरवृष्टिसे आकाशको छायाके समान कर दिया ॥ ४९ ॥

ततोऽर्जुनेन मुक्तानां पततां च शरीरिषु ।
पर्वतेष्विव वज्राणां शराणां श्रूयते स्वनः ॥ ५० ॥

अर्जुनके द्वारा छोडे गए बाण जब मनुष्यों पर जाकर गिरते थे, तब उन बाणोंकी आवाज पर्वतोंपर गिरनेवाले वज्रोंकी आवाजके समान सुनाई देती थी ॥ ५० ॥

*

ततो नागा रथाश्चैव सादिनश्च विशां पते ।
शोणिताक्ता व्यदृश्यन्त पुष्पिता इव किंशुकाः ॥ ५१ ॥

उस समय हाथीसवार, रथसवार और घुडसवार रुधिरसे भीगकर ऐसे दीखने लगे, जैसे फूले हुए टेसू (ढांकके) फूल ॥ ५१ ॥

बाहुभिश्च सकेयूरैर्विचित्रैश्च महारथैः ।
सुवर्णचित्रैः कवचैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ ५२ ॥

बाजूबन्दसे भूषित भुजायें, अनेक तरहके बडे बडे रथ, अनेक सोनेके कवच और ध्वजा पृथ्वीपर गिर गईं ॥ ५२ ॥

योधैश्च निहतैस्तत्र पार्थबाणप्रपीडितैः ।
बलमासीत्समुद्भ्रान्तं द्रोणार्जुनसमागमे ॥ ५३ ॥

अर्जुनके बाणोंसे अनेक योद्धा पीडित होकर पृथ्वीपर गिर गए। द्रोण और अर्जुनके ऐसे युद्धमें सब सैनिक भयभीत हो गये ॥ ५३ ॥

विधुन्वानौ तु तौ वीरौ धनुषी भारसाधने ।
आच्छादयेतामन्योन्यं तितक्षन्तौ रणेषुभिः ॥ ५४ ॥

द्रोणाचार्य और अर्जुन दृढ धनुषोंपर टंकार देते हुए परस्पर बाण चलाने लगे, और एक दूसरेके बाणोंको काटनेकी इच्छासे उन्होंने एक दूसरेको बाणोंसे ढक दिया ॥ ५४ ॥

अथान्तरिक्षे नादोऽभूद्द्रोणं तत्र प्रशंसताम् ।
दुष्करं कृतवान्द्रोणो यदर्जुनमयोधयत् ॥ ५५ ॥
प्रमाथिनं महावीर्यं दृढमुष्टिं दुरासदम् ।
जेतारं देवदैत्यानां सर्पाणां च महारथम् ॥ ५६ ॥

उसी समय वहां द्रोणकी प्रशंसा करनेवालोंका नाद अन्तरिक्षमें हुआ कि द्रोणने जो शत्रुओंको मथनेवाले, महावीर्यवान्, मजबूत मुट्ठीवाले, अजेय, सभी देवों और दैत्योंको जीतनेवाले महारथी अर्जुनसे युद्ध किया, वह उन्होंने बहुत दुष्कर कर्म किया ॥ ५५-५६ ॥

अविश्रमं च शिक्षां च लाघवं दूरपातिताम् ।
पार्थस्य समरे दृष्ट्वा द्रोणस्याभूच्च विस्मयः ॥ ५७ ॥

युद्धमें अर्जुनके उत्साह, तीक्ष्ण, शीघ्र और दूर बाण चलानेकी कुशलताको देखकर द्रोणाचार्य आश्चर्यमें पड गये ॥ ५७ ॥

अथ गाण्डीवमुद्यम्य दिव्यं धनुरमर्षणः ।
विचकर्ष रणे पार्थो बाहुभ्यां भरतर्षभ ॥ ५८ ॥

इसके बाद अत्यन्त क्रोधी अर्जुनने, हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! अपने दिव्य गाण्डीव धनुषको उठाया, और उसे अपने हाथोंसे युद्धसे खींचा ॥ ५८ ॥

तस्य बाणमयं वर्षं शलभानामिवायतम् ।
न च बाणान्तरे वायुरस्य शक्नोति सर्पितुम् ॥ ५९ ॥

अर्जुनने इस प्रकार बाण वर्षाये जैसे वृक्षोंपर टिड्डियां गिरती हैं। अर्जुनके बाणोंके बीचमें जानेकी वायुकी भी शक्ति न हुई ॥ ५९ ॥

अनिशं संदधानस्य शरानुत्सृजतस्तदा ।
ददृशे नान्तरं किञ्चित्पार्थस्याददतोऽपि च ॥ ६० ॥

अर्जुनके बाणोंको बार बार लेनेकी, उन्हें बार बार धनुष पर संधान करनेकी और उन्हें बार बार छोडनेकी क्रियामें कोई भी अन्तर नहीं दिखाई दिया ॥ ६० ॥

तथा शीघ्रास्त्रयुद्धे तु वर्तमाने सुदारुणे ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं पार्थः शरानन्यानुदीरयत् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार बहुत शीघ्रतासे वह भयंकर युद्ध चल रहा था कि अर्जुनने और अधिक शीघ्रतासे और बाण छोडे ॥ ६१ ॥

ततः शतसहस्राणि शराणां नतपर्वणाम् ।
युगपत्प्रापतंस्तत्र द्रोणस्य रथमन्तिकात् ॥ ६२ ॥

उसी समय अर्जुनके सैकडों सहस्रों बाण एक ही दम द्रोणाचार्यके रथपर आकर गिरे ॥ ६२ ॥

अवकीर्यमाणे द्रोणे तु शरैर्गाण्डीवधन्वना ।
हाहाकारो महानासीत्सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ६३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जिस समय गाण्डीवधनुर्धारी अर्जुनके बाणोंसे द्रोणाचार्य व्याकुल हो गए, तब कौरवोंकी सेनामें महान् हाहाकार होने लगा ॥ ६३ ॥

पाण्डवस्य तु शीघ्रास्त्रं मघवान्समपूजयत् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव ये च तत्र समागताः ॥ ६४ ॥

अस्त्र छोडनेमें अर्जुनकी इस शीघ्रताको देखकर अप्सरा, गन्धर्व और इन्द्र तथा जो भी वहां आए थे, वे सब उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६४ ॥

ततो वृन्देन महता रथानां रथयूथपः ।
आचार्यपुत्रः सहसा पाण्डवं प्रत्यवारयत् ॥ ६५ ॥

उसी समय रथसमूहोंके स्वामी आचार्यपुत्र अश्वत्थामाने बहुत भारी रथके समूहसे वहां आकर अर्जुनको रोक दिया ॥ ६५ ॥

अश्वत्थामा तु तत्कर्म हृदयेन महात्मनः ।
पूजयामास पार्थस्य कोपं चास्याकरोद्भृशम् ॥ ६६ ॥

अश्वत्थामाने भी अपने हृदयसे महात्मा अर्जुनके बाणोंकी प्रशंसा की, पर उन्हें अर्जुन पर बहुत क्रोध हो आया ॥ ६६ ॥

स मन्युवशमापन्नः पार्थमभ्यद्रवद्रणे ।
किरञ्शरसहस्राणि पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥ ६७ ॥

वे अश्वत्थामा महाक्रोध करके अर्जुनकी ओर दौडे और वे इस प्रकार बाण वर्षाने लगे जैसे मेघ जल बरसाता है ॥ ६७ ॥

आवृत्य तु महाबाहुर्यतो द्रौणिस्ततो हयान् ।
अन्तरं प्रददौ पार्थो द्रोणस्य व्यपसर्पितुम् ॥ ६८ ॥

उसी समय महाबाहु अर्जुनने घूमकर द्रोणाचार्यको जानेका समय देकर अपने रथको अश्वत्थामाकी ओर चलाया ॥ ६८ ॥

स तु लब्ध्वान्तरं तूर्णमपायाज्जवनैर्हयैः ।
छिन्नवर्मध्वजः शूरो निकृत्तः परमेषुभिः ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ १४३७ ॥

तब द्रोणाचार्य अवसर पाकर तेज घोडों द्वारा युद्धसे हट गये, परन्तु उनकी ध्वजा और कवच कट गये थे, तथा शरीरमें भी बहुत घाव लग गए थे ॥ ६९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तिरेपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५३ ॥ १४३७ ॥

: ५४ :

वैशम्पायन उवाच

तं पार्थः प्रतिजग्राह वायुवेगमिवोद्धतम् ।
शरजालेन महता वर्षमाणमिवाम्बुदम् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! अर्जुनने भी उनसे युद्ध करना ठान लिया । अर्जुनने अपनी बाण वर्षासे उद्धत हुए अश्वत्थामाको इस प्रकार रोका जैसे वर्षते हुए मेघको वायु रोक लेती है ॥ १ ॥

तयोर्देवासुरसमः संनिपातो महानभूत् ।
किरतोः शरजालानि वृत्रवासवयोरिव ॥ २ ॥

इन दोनोंका देवता और राक्षसोंके समान महान् युद्ध हुआ । इस युद्धमें ऐसे बाण चले, जैसे इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धमें चले थे ॥ २ ॥

न स्म सूर्यस्तदा भाति न च वाति समीरणः ।
शरगाढे कृते व्योम्नि छायाभूते समन्ततः ॥ ३ ॥

उस समय न सूर्य प्रकाशित हुआ और न वायु ही चल सकी, सब आकाश बाणोंसे पूरित हो गया और सर्वत्र छाया जैसी फैल गई ॥ ३ ॥

महांश्चटचटाशब्दो योधयोर्हन्यमानयोः ।
दह्यतामिव वेणूनामासीत्परपुरंजय ॥ ४ ॥

हे शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले जनमेजय ! युद्ध करते हुए उन दोनोंके बाणोंके परस्पर भिडनेसे ऐसा चट चट शब्द होने लगा जैसे जलते हुए बाँसोंका होता है ॥ ४ ॥

हयानस्यार्जुनः सर्वान्कृतवानल्पजीवितान् ।
स राजन्न प्रजानाति दिशं कांचन मोहितः ॥ ५ ॥

अर्जुनने अपने बाणोंसे अश्वत्थामाके घोडोंको नष्ट मा कर दिया, और मोहित हुए उनको कोई दिशा तक न दीखती थी ॥ ५ ॥

ततो द्रौणिर्महावीर्यः पार्थस्य विचरिष्यतः ।
विवरं सूक्ष्ममालोक्य ज्यां चिच्छेद क्षुरेण ह ।
तदस्यापूजयन्देवाः कर्म दृष्ट्वातिमानुषम् ॥ ६ ॥

तब महापराक्रमी अश्वत्थामाने अर्जुनके घूमते समय थोडासा प्रमाद पाकर अपने बाणोंसे उनकी धनुषका रोदा काट दिया । अश्वत्थामाके इस अमानुष कर्मको देखकर सब देवता उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ६ ॥

ततो द्रौणिर्धनूंष्यष्टौ व्यपक्रम्य नरर्षभम् ।
पुनरभ्याहनत्पार्थं हृदये कङ्कपत्रिभिः ॥ ७ ॥

उस समय अश्वत्थामाने अपने धनुषको खींचकर नरश्रेष्ठ अर्जुनके हृदयमें आठ बाण मारे ॥७॥

ततः पार्थो महाबाहुः प्रहस्य स्वनवत्तदा ।
योजयामास नवया मौर्व्या गाण्डीवमोजसा ॥ ८ ॥

तब महाबाहु अर्जुनने खिल खिलाकर हंसकर अपने गाण्डीव धनुषपर कडाकेके साथ शीघ्र दूसरा रोदा चढाया ॥ ८ ॥

ततोऽर्धचन्द्रमावृत्य तेन पार्थः समागमत् ।
वारणेनेव मत्तेन मत्तो वारणयूथपः ॥ ९ ॥

तब अर्जुन अर्धचन्द्राकृति मोड खाकर अश्वत्थामासे ऐसे भिड गए, जैसे मतवाला हाथी मतवाले हाथीसे भिडता है ॥ ९ ॥

ततः प्रववृते युद्धं पृथिव्यामेकवीरयोः ।
रणमध्ये द्वयोरेव सुमहल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥

इन दोनों जगत्विख्यात महावीरोंका रणभूमिमें ऐसा घोर युद्ध हुआ, कि उसको देखनेसे वीरोंके भी रोंवे खडे होने लगे ॥ १० ॥

तौ वीरौ कुरवः सर्वे ददृशुर्विस्मयान्विताः ।
युध्यमानौ महात्मानौ यूथपाविव सङ्गतौ ॥ ११ ॥
हाथियोंके समान युद्ध करते हुए इन दोनों महात्माओंको देखकर कौरव आश्चर्य करने लगे ॥ ११ ॥

तौ समाजघ्नतुर्वीरावन्योन्यं पुरुषर्षभौ ।
शरैराशीविषाकारैर्ज्वलद्भिरिव पन्नगैः ॥ १२ ॥
ये दोनों वीर परस्पर जलती हुई अग्नि और विषैले सर्पके समान एक दूसरेकी ओर बाण चलाने लगे ॥ १२ ॥

अक्षय्याविषुधी दिव्यौ पाण्डवस्य महात्मनः ।
तेन पार्थो रणे शूरस्तस्थौ गिरिरिवाचलः ॥ १३ ॥
महात्मा पाण्डुपुत्र अर्जुनके दोनों तूणीर अक्षय थे, अर्थात् उनके बाण कभी नहीं घटते थे, इसीकारण वीर अर्जुन रणमें पर्वतके समान अचल खडे रहे ॥ १३ ॥

अश्वत्थाम्नः पुनर्बाणाः क्षिप्रमभ्यस्यतो रणे ।
जग्मुः परिक्षयं शीघ्रमभूत्तेनाधिकोऽर्जुनः ॥ १४ ॥
और युद्धमें शीघ्र चलानेके कारण अश्वत्थामाके सब बाण समाप्त होगये, इसी कारण अर्जुन युद्धमें उनसे अधिक ही रहे ॥ १४ ॥

ततः कर्णो महच्चापं विकृष्याभ्यधिकं रुषा ।
अवाक्षिपत्ततः शब्दो हाहाकारो महानभूत् ॥ १५ ॥
उसी समय क्रोधित कर्ण उस महान् धनुषको जोरसे खींचकर अर्जुनके आगे युद्ध करनेको आये । तब कौरवोंकी सेनामें हाहाकपरका शब्द होने लगा ॥ १५ ॥

तत्र चक्षुर्दधे पार्थो यत्र विस्फार्यते धनुः ।
ददर्श तत्र राधेयं तस्य कोपोऽत्यवीवृधत् ॥ १६ ॥
जब अर्जुनने उस दिशाकी तरफ देखा कि जिसतरफसे धनुषकी टंकार आ रही थी तो वहां अर्जुनने कर्णको देखा । कर्णको देखकर अर्जुनका क्रोध बहुत बढ गया ॥ १६ ॥

स रोषवशमापन्नः कर्णमेव जिघांसया ।
अवैक्षत विवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां कुरुपुङ्गवः ॥ १७ ॥
क्रोधके वशमें होकर कर्णको मारनेकी इच्छासे कुरुश्रेष्ठ अर्जुनने फटी हुई आंखोंसे देखा ॥ १७ ॥

तथा तु विमुखे पार्थे द्रोणपुत्रस्य सायकान् ।
त्वरिताः पुरुषा राजन्नुपाजह्रुः सहस्रशः ॥ १८ ॥
जब अर्जुन युद्धसे विमुख हुए अर्थात् अश्वत्थामाको छोड कर्णसे युद्ध करने चले, तब, हे राजन् ! अनेकों पुरुष अश्वत्थामाके लिए फिरसे हजारों बाण ले आए ॥ १८ ॥

उत्सृज्य च महाबाहुर्द्रोणपुत्रं धनंजयः ।
अभिदुद्राव सहसा कर्णमेव सपत्नजित् ॥ १९ ॥

शत्रुनाशक महाबाहु अर्जुन द्रोणपुत्र अश्वत्थामाको छोड कर्णकी ओर वेगसे दौडे ॥ १९ ॥

तमभिद्रुत्य कौन्तेयः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
कामयन्द्वैरथे युद्धमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ १४५७ ॥

उस समय क्रोधके मारे अर्जुनके नेत्र लाल हो गये थे । तब अर्जुनने कर्णसे द्वैरथ युद्ध करनेकी इच्छासे उनके पास जाकर यह वचन कहा ॥ २० ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चोवनवां अध्याय समाप्त ॥ ५४ ॥ १४५७ ॥

: ५५ :

अर्जुन उवाच

कर्ण यत्ते सभामध्ये बहु वाचा विकत्थितम् ।
न मे युधि समोऽस्तीति तदिदं प्रत्युपस्थितम् ॥ १ ॥

अर्जुन बोले– हे कर्ण ! तुमने जो सभामें अपनी बढ बढ कर प्रशंसा की थी कि युद्धमें मेरे समान कोई नहीं है, लो वह दिन आज आ गया है ॥ १ ॥

अवोचः परुषा वाचो धर्ममुत्सृज्य केवलम् ।
इदं तु दुष्करं मन्ये यदिदं ते चिकीर्षितम् ॥ २ ॥

तुमने धर्मका त्याग करके कठोर वचन कहे थे । अब जो कर्म तुम करना चाहते हो, वह तुम्हारे लिए बहुत दुष्कर है ऐसा मैं मानता हूँ ॥ २ ॥

यत्त्वया कथितं पूर्वं मामनासाद्य किंचन ।
तदद्य कुरु राधेय कुरुमध्ये मया सह ॥ ३ ॥

हे राधापुत्र ! तुमने पहले मुझसे मुकाबला न करके जो कुछ कहा था, वह कर्म आज कौरवोंके बीचमें मेरे साथ करके दिखाओ ॥ ३ ॥

यत्सभायां स्म पाञ्चालीं क्लिश्यमानां दुरात्मभिः ।
दृष्टवानसि तस्याद्य फलमाप्नुहि केवलम् ॥ ४ ॥

सभामें दुष्ट लोगोंने द्रौपदीको जो दुःख दिया था और तुम देखते रहे, आज उसका फल तुमको प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

धर्मपाशनिबद्धेन यन्मया मर्षितं पुरा ।
तस्य राधेय कोपस्य विजयं पश्य मे मृधे ॥ ५ ॥

मैंने जो धर्मके वशमें होकर पहले तुम्हें क्षमा कर दिया था, उस क्रोधका फल तुम युद्धमें देखो । आज युद्धमें प्रगट करूंगा ॥ ५ ॥

एहि कर्ण मया सार्धं प्रतिपद्यस्व सङ्गरम् ।
प्रेक्षकाः कुरवः सर्वे भवन्तु सहसैनिकाः ॥ ६ ॥

हे कर्ण ! आओ, आज तुम मेरे साथ युद्ध करो और सब सैनिकोंके साथ ये सब कौरव लोग हमारे युद्धके दर्शक बनें ॥ ६ ॥

कर्ण उवाच

ब्रवीषि वाचा यत्पार्थ कर्मणा तत्समाचर ।
अतिशेते हि वै वाचं कर्मेति प्रथितं भुवि ॥ ७ ॥

कर्ण बोले– हे कुन्तीपुत्र । तुम जो कुछ वचनसे कहते हो उसे कर्मसे दिखाओ । संसारमें यह प्रसिद्ध है कि कर्म हमेशा वाणीसे बढकर होता है ॥ ७ ॥

यत्त्वया मर्षितं पूर्वं तदशक्तेन मर्षितम् ।
इति गृह्णामि तत्पार्थ तव दृष्ट्वा पराक्रमम् ॥ ८ ॥

तुमने जो पहले क्षमाकी थी, वह भी असमर्थ होकर ही की थी । आज मैं तुम्हारे पराक्रमको देखकर तुम्हारी बातको स्वीकार कर लूंगा ॥ ८ ॥

धर्मपाशनिबद्धेन यदि ते मर्षितं पुरा ।
तथैव बद्धमात्मानमबद्धमिव मन्यसे ॥ ९ ॥

तुमने जैसे पहले धर्मके बन्धनसे बंधे हुए होनेके कारण सब कुछ सहा था, वैसेही अब भी बंधे हुए हो तो भी तुम अपनेको मुक्त हुआ मानते हो ॥ ९ ॥

यदि तावद्वने वासो यथोक्तश्चरितस्त्वया ।
तत्त्वं धर्मार्थवित्क्लिष्टः समयं भेत्तुमिच्छसि ॥ १० ॥

यदि तुमने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वनवास धारण किया है तो तुम निश्चयसे धर्म और अर्थके जाननेवाले हो; तथा उसी क्लेशको स्मरण करके मुझसे युद्ध करना चाहते हो ॥१०॥

यदि शक्रः स्वयं पार्थ युध्यते तव कारणात् ।
तथापि न व्यथा काचिन्मम स्याद्विक्रमिष्यतः ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! यदि साक्षात् इन्द्र भी तुम्हारी ओर होकर मुझसे युद्ध करे तो भी पराक्रम करनेवाले मुझे कोई व्यथा नहीं होगी ॥ ११ ॥

अयं कौन्तेय कामस्ते नचिरात्समुपास्थितः ।
योत्स्यसे त्वं मया सार्धमद्य द्रक्ष्यसि मे बलम् ॥ १२ ॥

हे कुन्तीपुत्र ! मुझसे लडनेकी तुम्हारी इच्छा बहुतही जल्दी आकर उपास्थित हो गई है। आज तुम मेरे साथ लडोगे और मेरा बल देखोगे ॥ १२ ॥

अर्जुन उवाच

इदानीमेव तावत्त्वमपयातो रणान्मम ।
तेन जीवसि राधेय निहतस्त्वनुजस्तव ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले– हे राधापुत्र ! तुम अभी मेरे आगेसे युद्ध छोडकर भाग गये थे, इसीसे अभी तक जीते बचे हो। तुम्हारे भाईको तो मैंने युद्धमें मार डाला ॥ १३ ॥

भ्रातरं घातयित्वा च त्यक्त्वा रणशिरश्च कः ।
त्वदन्यः पुरुषः सत्सु ब्रूयादेवं व्यवस्थितः ॥ १४ ॥

जगत्में अपने निमित्त भाईका नाश कराकर और युद्धभूमिको छोडकर, तुम्हारे सिवा और कौन इस प्रकार सज्जनोंमें खडा होकर कह सकता है ? ॥ १४ ॥

वैशम्पायन उवाच

इति कर्णं ब्रुवन्नेव बीभत्सुरपराजितः ।
अभ्ययाद्विसृजन्बाणान्कायावरणभेदिनः ॥ १५ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! अपराजित अर्जुनने कर्णसे ऐसा कहकर अपने धनुषपर शरीर और कवचको भेदनेवाले बाण चढाकर कर्णके शरीरमें मारने आरम्भ किये ॥ १५ ॥

प्रतिजग्राह तान्कर्णः शरानग्निशिखोपमान् ।
शरवर्षेण महता वर्षमाण इवाम्बुदः ॥ १६ ॥

महारथी कर्ण भी अग्निकी ज्वालाओंके समान जलते हुए बाणोंको ग्रहण करने लगे, और अर्जुनके ऊपर इस प्रकार बाण बरसाने लगे जैसे महामेघ जल बरसाता है ॥ १६ ॥

उत्पेतुः शरजालानि घोररूपाणि सर्वशः ।
अविध्यदश्वान्बाह्वोश्च हस्तावापं पृथक्पृथक् ॥ १७ ॥

कर्णके घोररूपवाले बाणोंके जाल सब ओर छा गये। कर्णने अलग अलग रूपसे अर्जुनके घोडों, बाहुओं और हाथके कवचोंको बींध डाला ॥ १७ ॥

सोऽमृष्यमाणः कर्णस्य निषङ्गस्यालम्बनम् ।
चिच्छेद निशिताग्रेण शरेण नतपर्वणा ॥ १८ ॥

तब अर्जुनने क्रोधमें भरकर कर्णके तूणीरकी डोरीको तीक्ष्ण बाणसे काट दिया ॥ १८ ॥

उपासङ्गादुपादाय कर्णो बाणानथापरान् ।
विव्याध पाण्डवं हस्ते तस्य मुष्टिरशीर्यत ॥ १९ ॥

तब कर्णने तूणीरसे दूसरे बाणोंको निकालकर अर्जुनके हाथमें मारा । उन बाणोंके लगनेसे अर्जुनकी मुट्ठी शिथिल हो गई ॥ १९ ॥

ततः पार्थो महाबाहुः कर्णस्य धनुरच्छिनत् ।
स शक्तिं प्राहिणोत्तस्मै तां पार्थो व्यधमच्छरैः ॥ २० ॥

अनन्तर महाबाहु अर्जुनने कर्णके धनुषको काट दिया । तब कर्णने अर्जुनको मारनेके लिए शक्ति चलाई । अर्जुनने उसको भी बाणोंसे काट डाला ॥ २० ॥

ततोऽभिपेतुर्बहवो राधेयस्य पदानुगाः ।
तांश्च गाण्डीवनिर्मुक्तैः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ २१ ॥

तब कर्णके बहुतसे साथी अर्जुनपर टूट पडे, उन सबको अर्जुनने गाण्डीवसे बाण वरसाकर यमके घर भेज दिया ॥ २१ ॥

ततोऽस्याश्वाञ्शरैस्तीक्ष्णैर्बीभत्सुर्भारसाधनैः ।
आकर्णमुक्तैरभ्यघ्नंस्ते हताः प्रापतन्भुवि ॥ २२ ॥

तदनन्तर अर्जुनने अपने तीक्ष्ण और दृढ बाणोंको कान तक खींचकर छोडा और उनसे कर्णके घोडे मरकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २२ ॥

अथापरेण बाणेन ज्वलितेन महाभुजः ।
विव्याध कर्णं कौन्तेयस्तीक्ष्णेनोरसि वीर्यवान् ॥ २३ ॥

वीर्यवान् महाबाहु कुन्तीपुत्रने एक दूसरा जलता हुआ तीक्ष्ण बाण कर्णकी छातीमें मारा ॥ २३ ॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं कायमभ्यपतच्छरः ।
ततः स तमसाविष्टो न स्म किंचित्प्रजज्ञिवान् ॥ २४ ॥

वह बाण कर्णके कवचको काटकर उनके हृदयमें जा लगा । उसके लगनेसे कर्णको ऐसी मूर्च्छा हो आई कि उन्हें कुछ भी ज्ञान न रहा ॥ २४ ॥

स गाढवेदनो हित्वा रणं प्रायादुदङ्मुखः ।
ततोऽर्जुन उपाक्रोशदुत्तरश्च महारथः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि पंचपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५॥ १४८२॥

वह (कर्ण) रणस्थल छोडकर वेदना विह्वल होनेसे उत्तर दिशाको ओर चले गये, तब तब अर्जुन और महारथी उत्तर गर्जने लगे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पंचपनवां अध्याय समाप्त ॥ ५५ ॥ १४८२ ॥

५६

वैशम्पायन उवाच

ततो वैकर्तनं जित्वा पार्थो वैराटिमब्रवीत् ।
एतन्मां प्रापयानीकं यत्र तालो हिरण्मयः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! जब अर्जुनने विकर्तनपुत्र कर्णको जीत लिया, तब वे उत्तरसे बोले– हे उत्तर ! तुम मेरे रथको उस सेनाके आगे ले चलो जिसमें सोनेका ताड दीखता है ॥ १ ॥

अत्र शान्तनवो भीष्मो रथेऽस्माकं पितामहः ।
काङ्क्षमाणो मया युद्धं तिष्ठत्यमरदर्शनः ।
आदास्याम्यहमेतस्य धनुर्ज्यामपि चाहवे ॥ २ ॥

वहां हमारे पितामह मृत्युंजयी शन्तनुपुत्र भीष्म मेरे साथ युद्ध करनेकी इच्छा करते हुए रथमें बैठे हुए हैं । मैं युद्धमें उनके धनुष और डोरीको काट दूंगा ॥ २ ॥

अस्यन्तं दिव्यमस्त्रं मां चित्रमद्य निशामय ।
शतह्रदामिवायान्तीं स्तनयित्नोरिवाम्बरे ॥ ३ ॥
सुवर्णपृष्ठं गाण्डीवं द्रक्ष्यन्ति कुरवो मम ।
दक्षिणेनाथ वामेन कतरेण स्विदस्यति ।
इति मां सङ्गताः सर्वे तर्कयिष्यन्ति शत्रवः ॥ ४ ॥

आज मैं दिव्य अस्त्रोंका प्रयोग कैसा करता हूँ, उस चमत्कारको देखो । अन्तरिक्षके मेघसे निकलनेवाली बिजलीके समान सोनेकी पीठवाले मेरे गाण्डिवपर सब कौरवोंकी नजर पडेगी। वहां इकट्ठे हुए सभी शत्रु मेरे बारेमें सोचेंगे, कि यह दायें हाथसे, या बायें हाथसे अथवा किस हाथसे बाण मारता है ॥ ३–४ ॥

शोणितोदां रथावर्तां नागनक्रां दुरत्ययाम् ।
नदीं प्रस्यन्दयिष्यामि परलोकप्रवाहिनीम् ॥ ५ ॥

मैं अभी मरे हुए हाथी रूपी जलजन्तुओंसे भरी रथरूपी भंवरवाली परलोककी ओर बहनेवाली रुधिरकी अलङ्घनीय नदी बहा दूंगा ॥ ५ ॥

पाणिपादशिरःपृष्ठबाहुशाखानिरन्तरम् ।
वनं कुरूणां छेत्स्यामि भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६ ॥

मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे हाथ पैर शिर और कण्ठरूप शाखायुक्त कौरववंश रूपी वनको काट डालूँगा ॥ ६ ॥

जयतः कौरवीं सेनामेकस्य मम धन्विनः ।
शतं मार्गा भविष्यन्ति पावकस्येव कानने ।
मया चक्रमिवाविद्धं सैन्यं द्रक्ष्यसि केवलम् ॥ ७ ॥

जिस समय मैं धनुष धारण करके कौरवोंकी सेनाको जीतना प्रारम्भ करूंगा, उस समय मुझे सैकडों मार्ग इस प्रकार मिलने लगेंगे, जैसे वनमें अग्निको मिलते हैं ॥ ७ ॥

असंभ्रांतो रथे तिष्ठ समेषु विषमेषु च ।
दिवमावृत्य तिष्ठन्तं गिरिं भेत्स्यामि धारिभिः ॥ ८ ॥

सब सेनाको तुम मेरे बाणोंसे पीडित हुई देखोगे । तुम कठिन और साधारण स्थानोंमें सावधान होकर रथमें बैठे रहो । मैं आकाशको घेरकर खडे हुए पर्वतोंको भी अपने बाणोंसे काट सकता हूं ॥ ८ ॥

अहमिन्द्रस्य वचनात्संग्रामेऽभ्यहनं पुरा ।
पौलोमान्कालखञ्जांश्च सहस्राणि शतानि च ॥ ९ ॥

मैंने पहले इन्द्रकी आज्ञासे युद्धमें एक लाख पौलोम और कालखञ्ज नामक राक्षसोंको मारा था ॥ ९ ॥

अहमिन्द्राद्दृढां मुष्टिं ब्रह्मणः कृतहस्तताम् ।
प्रगाढं तुमुलं चित्रमतिविद्धं प्रजापतेः ॥ १० ॥

मैंने इन्द्रसे दृढमुष्टी और ब्रह्मासे शीघ्र बाण चलानेकी विद्या और प्रजापतिसे भयंकर युद्ध करनेकी विद्या प्राप्त की ॥ १० ॥

अहं पारे समुद्रस्य हिरण्यपुरमारुजम् ।
जित्वा षष्टिं सहस्राणि रथिनामुग्रधन्विनाम् ॥ ११ ॥

मैंने समुद्रके पार जाकर साठ हजार महाधनुर्धारी महारथियोंको जीतकर हिरण्यपुरको नष्ट किया था ॥ ११ ॥

ध्वजवृक्षं पत्तितृणं रथसिंहगणायुतम् ।
वनमादीपयिष्यामि कुरूणामस्त्रतेजसा ॥ १२ ॥

ध्वजारूपी वृक्ष, पदाति रूपी तिनके और रथरूपी सिंहसे भरे हुए, कौरवरूपी वनको अपनी अस्त्रकी अग्निसे जलाऊंगा ॥ १२ ॥

तानहं रथनीडेभ्यः शरैः सन्नतपर्वभिः ।
एकः संकालयिष्यामि वज्रपाणिरिवासुरान् ॥ १३ ॥

मैं अकेलाही रथमें बैठे हुए महाबलवान् युद्धोन्मुख कौरवोंके वीरोंको इस प्रकार गिराऊंगा जैसे वज्रधारी इन्द्र राक्षसोंको गिराते हैं ॥ १३ ॥

रौद्रं रुद्रादहं ह्यस्त्रं वारुणं वरुणादपि ।
अस्त्रमाग्नेयमग्नेश्च वायव्यं मातरिश्वनः ।
वज्रादीनि तथास्त्राणि शक्रादहमवाप्तवान् ॥ १४ ॥

मैंनें शिवसे रुद्रास्त्र, वरुणसे वारुणास्त्र, अग्निसे आग्नेयास्त्र, वायुसे वायव्यास्त्र और वज्र आदि सब शस्त्र इन्द्रसे सीखे हैं ॥ १४ ॥

धार्तराष्ट्रवनं घोरं नरसिंहाभिरक्षितम् ।
अहमुत्पाटयिष्यामि वैराटे व्येतु ते भयम् ॥ १५ ॥

मैं मनुष्यरूपी सिंहोंसे रक्षित धृतराष्ट्रपुत्ररूपी वनको उखाड डालूँगा; हे उत्तर ! तुम अपने भयको दूर करो ॥ १५ ॥

एवमाश्वासितस्तेन वैराटिः सव्यसाचिना ।
व्यगाहत रथानीकं भीमं भीष्मस्य धीमतः ॥ १६ ॥

जब अर्जुनने विराटपुत्र उत्तरको इस प्रकार धैर्य दिया, तब वह बुद्धिमान् भीष्मके द्वारा रक्षित भयंकर रथकी सेनामें प्रविष्ट हो गया ॥ १६ ॥

तमायान्तं महाबाहुं जिगीषन्तं रणे परान् ।
अभ्यवारयदव्यग्रः क्रूरकर्मा धनंजयम् ॥ १७ ॥

जब गंगापुत्र भीष्मने देखा कि युद्धमें कौरवोंको जीतता हुआ अर्जुन मेरी ओर चला आता है, तब किसी प्रकारकी व्यग्रताके बिनाही अपने बाणोंसे अर्जुनको रोका ॥ १७ ॥

तं चित्रमाल्याभरणाः कृतविद्या मनस्विनः ।
आगच्छन्भीमधन्वानं मौर्वीं पर्यस्य बाहुभिः ॥ १८ ॥
दुःशासनो विकर्णश्च दुःसहोऽथ विविंशतिः ।
आगत्य भीमधन्वानं बीभत्सुं पर्यवारयन् ॥ १९ ॥

उसी समय महाबाहु महाधनुर्धारी अर्जुनसे युद्ध करनेके लिए विचित्र माला और अलंकार धारण किये हुए विद्यामें प्रवीण तथा मनस्वी दुःशासन विकर्ण, दुःसह और विविंशति चार वीर आये। उन्होंने आकर महाधनुषधारी अर्जुनको घेर लिया ॥ १८-१९ ॥

दुःशासनस्तु भल्लेन विध्वा वैराटिमुत्तरम् ।
द्वितीयेनार्जुनं वीरः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ २० ॥

दुःशासनने विराट पुत्र उत्तरके शरीरमें एक बाण मारा और दूसरा बाण अर्जुनके दोनों स्तनोंके बीचके भागमें मारा ॥ २० ॥

तस्य जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम् ।
चकर्त गार्ध्रपत्रेण जातरूपपरिष्कृतम् । ॥ २१ ॥

तब अर्जुनने भी मुडकर तीव्रतासे चौडी धारवाले गीधके पंखसे युक्त बाणसे दुःशासनका सोनेसे भूषित धनुष काट दिया ॥ २१ ॥

अथैनं पञ्चभिः पश्चात्प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
सोऽपयातो रणं हित्वा पार्थबाणप्रपीडितः ॥ २२ ॥

फिर पांच बाण दुःशासनके स्तनोंके बीचके भागमें मारे । तब दुःशासन अर्जुनके बाणोंसे पीडित हो युद्ध छोडकर भाग गया ॥ २२ ॥

तं विकर्णः शरैस्तीक्ष्णैर्गार्ध्रपत्रैरजिह्मगैः ।
विव्याध परवीरघ्नमर्जुनं धृतराष्ट्रजः ॥ २३ ॥

तब धृतराष्ट्रपुत्र विकर्णने सीधे जानेवाले, गीधके पंखोंसे युक्त तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुनाशी अर्जुनको बींधा ॥ २३ ॥

ततस्तमपि कौन्तेयः शरेणानतपर्वणा ।
ललाटेऽभ्यहनत्तूर्णं स विद्धः प्रापतद्रथात् ॥ २४ ॥

तब कुन्तीपुत्र अर्जुनने भी अपना एकबाण विकर्णके ललाटपर मारा । विकर्ण उस बाणके लगते ही घायल होकर रथसे पर गिर पडा ॥ २४ ॥

ततः पार्थमभिद्रुत्य दुःसहः सविविंशतिः ।
अवाकिरच्छरैस्तीक्ष्णैः परीप्सन् भ्रातरं रणे ॥ २५ ॥

उसी समय दुःसह और विविंशति अर्जुनकी ओर दौडे । युद्धमें अपने भाईका बदला लेनेकी इच्छासे वे दोनों अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे ॥ २५ ॥

तावुभौ गार्ध्रपत्राभ्यां निशिताभ्यां धनंजयः ।
विद्ध्वा युगपदव्यग्रस्तयोर्वाहानसूदयत् ॥ २६ ॥

उसी समय निर्भीक अर्जुनने एक ही बारमें दो तीक्ष्ण और पंखवाले बाणोंसे दोनोंको व्याकुल कर दिया और उनके घोडोंको मार डाला ॥ २६ ॥

तौ हताश्वौ विविद्धांगौ धृतराष्ट्रात्मजावुभौ ।
अभिपत्य रथैरन्यैरपनीतौ पदानुगैः ॥ २७ ॥

जब उन दोनों धृतराष्ट्रपुत्रोंके घोडे मार डाले गए और उनके शरीर विद्ध हो गए, तब उनके सेवक उन्हें दूसरे रथों पर चढाकर भगा ले गए ॥ २७ ॥

सर्वा दिशश्चाभ्यपतद्बीभत्सुरपराजितः ।
किरीटमाली कौन्तेयो लब्धलक्षो महाबलः ॥ २८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षट्पंचाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ १५१० ॥

फिर वह मुकुट और माला धारण करनेवाले, महाबलशाली, अपराजित, लक्ष्य न चूकनेवाले कुन्तीका पुत्र अर्जुन चारों ओर से कौरवसेना पर टूट पडे ॥ २८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥ १५१० ॥

: ५७ :

वैशम्पायन उवाच

अथ संगम्य सर्वे ते कौरवाणां महारथाः ।
अर्जुनं सहिता यत्ताः प्रत्ययुध्यन्त भारत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे भारत जनमेजय ! तदनन्तर कुरुसेनाके सब महारथी इकट्ठे होकर अर्जुनसे युद्ध करने आये ॥ १ ॥

स सायकमयैर्जालैः सर्वतस्तान्महारथान् ।
प्राच्छादयदमेयात्मा नीहार इव पर्वतान् ॥ २ ॥

तब अपरिमित आत्मशक्तिवाले अर्जुनने अपने बाणोंके जालसे सब बीरोंको इस प्रकार इस ढक दिया जैसे कुहरेसे पर्वत ढक जाते हैं ॥ २ ॥

नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ ३ ॥

चिंघाडते हुए हाथियों, हिनहिनाते हुए घोडों तथा बजते हुए भेरी और शंखोंके कारण वहां महान् शब्द होने लगा ॥ २ ॥

नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च।
पार्थस्य शरजालानि विनिष्पेतुः सहस्रशः ॥ ४॥

अर्जुनके हजारों बाणोंके जाल मनुष्य और घोडोंके शरीरोंको काट काट कर तथा लोहेके कवचोंको काटकाट कर गिराने लगे ॥ ४॥

त्वरमाणः शरानस्यन्पाण्डवः स बभौ रणे।
मध्यन्दिनगतोऽर्चिष्माञ्शरदीव दिवाकरः ॥ ५॥

उस समय तीक्ष्ण बाण चलाते हुए अर्जुनकी ऐसी शोभा बढी जैसे शरद्ऋतुमें दोपहरके सूर्यकी बढती है ॥ ५॥

उपप्लवन्त वित्रस्ता रथेभ्यो रथिनस्तदा।
सादिनश्चाश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चापि पदातयः ॥ ६॥

अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होकर रथी रथ परसे गिर गए, घुडसवार घोडोंकी पीठ परसे नीचे आ पडे और पैदल खडे खडे ही जमीन पर गिर पडे ॥ ६॥

शरैः संताडयमानानां कवचानां महात्मनाम्।
ताम्रराजतलोहानां प्रादुरासीन्महास्वनः ॥ ७॥

उस युद्धमें अर्जुनके बाणों द्वारा कटते हुवे वीरोंके चांदी, सोने, तथा लोहेके कवचोंके घोर शब्द होने लगे ॥ ७॥

छन्नमायोधनं सर्वं शरीरैर्गतचेतसाम्।
गजाश्वसादिभिस्तत्र शितबाणात्तजीवितैः ॥ ८॥

समस्त युद्धभूमि, मरे हुए हाथी और घुडसवार और तीक्ष्णबाणोंके कारण मरे हुए पुरुषोंसे भर गई ॥ ८॥

रथोपस्थाभिपतितैरास्तृता मानवैर्मही।
प्रनृत्यदिव सङ्ग्रामे चापहस्तो धनंजयः ॥ ९॥

रथों पर जो पुरुष बैठे थे उनके मरकर गिरनेसे पृथ्वी भर गई। उस समय धनुर्धारी अर्जुन संग्राममें मानों नाच रहे थे ॥ ९॥

श्रुत्वा गाण्डीवनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः।
त्रस्तानि सर्वभूतानि व्यगच्छन्त महाहवात् ॥ १०॥

साक्षात् वज्रके समान अर्जुनके गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर सब प्राणी व्याकुल हो गए और सब सेना युद्धस्थलसे इधर उधर भागने लगी ॥ १०॥

कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपस्रजानि च ।
पतितानि स्म दृश्यन्ते शिरांसि रणमूर्धनि ॥ ११ ॥

युद्धभूमिमें कुण्डल, पगडी और सुवर्णमाला धारी सिर पडे हुए दिखाई देते थे ॥ ११ ॥

विशिखोन्मथितैर्गात्रैर्बाहुभिश्च सकार्मुकैः ।
सहस्ताभरणैश्चान्यैः प्रच्छन्ना भाति मेदिनी ॥ १२ ॥

बाणोंसे कटे हुए अंगों, धनुषोंसे युक्त हाथों तथा अन्य आभूषणोंसे सजे हुए हाथोंसे वह भूमि पटी हुई दिखाई देती थी ॥ १२ ॥

शिरसां पात्यमानानामन्तरा निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाकाशादभवद्भरतर्षभ ॥ १३ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! तीक्ष्णबाणोंके कारण क्षण क्षणमें कटकर गिरनेवाले सिर ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानों ओलोंकी बरसात हो रही हो ॥ १३ ॥

दर्शयित्वा तथात्मानं रौद्रं रुद्रपराक्रमः ।
अवरुद्धश्चरन्पार्थो दश वर्षाणि त्रीणि च ।
क्रोधाग्निमुत्सृजद्धोरं धार्तराष्ट्रेषु पाण्डवः ॥ १४ ॥

महापराक्रमी अर्जुनने जो बारह वर्षतक वनमें रहकर क्रोधको रोका था, वही क्रोध इस युद्धमें कौरवोंपर प्रकट किया ॥ १४ ॥

तस्य तद्दहतः सैन्यं दृष्ट्वा चैव पराक्रमम् ।
सर्वे शान्तिपरा योधा धार्तराष्ट्रस्य पश्यतः ॥ १५ ॥

इस प्रकार अपनी सेनाको जलते हुए और अर्जुनके पराक्रमको देखकर सब योद्धा दुर्योधनके देखते देखते शान्त हो गये ॥ १५ ॥

वित्रासयित्वा तत्सैन्यं द्रावयित्वा महारथान् ।
अर्जुनो जयतां श्रेष्ठः पर्यवर्तत भारत ॥ १६ ॥

हे भारत जनमेजय ! उस सेनाको भयभीत कर और महारथियोंको भगाकर महापराक्रमी अर्जुन वापिस लौटे ॥ १६ ॥

प्रावर्तयन्नदीं घोरां शोणितौघतरङ्गिणीम् ।
अस्थिशैवलसंबाधां युगान्ते कालनिर्मिताम् ॥ १७ ॥

अर्जुनने उस समय रुधिरकी महानदी बहा दी । उसमें हड्डी सिवारके स्थानमें थी । यह नदी इस प्रकारसे बही, जैसे यमके द्वारा बहाई जाकर प्रलयकालमें बहती है ॥ १७ ॥

×

शरचापप्लवां घोरां मांसशोणितकर्दमाम्।
महारथमहाद्वीपां शङ्खदुन्दुभिनिस्वनाम्।
चकार महतीं पार्थो नदीमुत्तरशोणिताम् ॥ १८ ॥

उसमें बाण धनुष जलजन्तु हो गये; उसमें मांस और खूनकी कीचड थी। बडे बडे रथ द्वीपके समान दीखने लगे, अनेक नगाडे बडे घोर शब्द करते हुए बजने लगे। उस खूनकी नदीको अर्जुनने बहा दिया ॥ १८ ॥

आददानस्य हि शरान्संधाय च विमुञ्चतः।
विकर्षतश्च गाण्डीवं न किंचिद्दृश्यतेऽन्तरम् ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ १५२९ ॥

उस समय कोई नहीं जान सका कि अर्जुन कब बाण चढाते हैं, कब निकालते हैं, और कब छोड देते हैं ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५७ ॥ १५२९ ॥

: ५८ :

वैशम्पायन उवाच

अथ दुर्योधनः कर्णो दुःशासनविविंशती।
द्रोणश्च सह पुत्रेण कृपश्चातिरथो रणे ॥ १ ॥
पुनरीयुः सुसंरब्धा धनञ्जयजिघांसया।
विस्फारयन्तश्चापानि बलवन्ति दृढानि च ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! (जब अर्जुनने अपने पराक्रमसे सब सेनाको जीत लिया) तब राजा दुर्योधनको आगेकर कर्ण, दुःशासन, विविंशति, महारथी कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा मिलकर अर्जुनको मारने आये। ये सब लोग अपने अपने दृढ धनुषोंपर टंकार देने लगे ॥ १–२ ॥

तान्प्रकीर्णपताकेन रथेनादित्यवर्चसा।
प्रत्युद्ययौ महाराज समस्तान्वानरध्वजः ॥ ३ ॥

तब, हे महाराज! वानरकी ध्वजावाले ऊंची पताकावाले, सूर्यके समान तेजस्वी अर्जुन अपने रथपर बैठकर उन सबसे युद्ध करने चले ॥ ३ ॥

ततः कृपश्च कर्णश्च द्रोणश्च रथिनां वरः ।
तं महास्त्रैर्महावीर्यं परिवार्य धनंजयम् ॥ ४ ॥
शरौघान्सम्यगस्यन्तो जीमूता इव वार्षिकाः ।
ववर्षुः शरवर्षाणि प्रपतन्तं किरीटिनम् ॥ ५ ॥

तब कृप, कर्ण और रथीश्रेष्ठ द्रोण उस महावीर्यशाली धनंजयको महान् अस्त्रोंसे घेरकर उस पर बाणोंके समूह बरसाने लगे । जिस प्रकार वर्षाकालके मेघ जल बरसाते हैं, उसी तरह आते हुए अर्जुनपर वे बाण बरसाने लगे ॥ ४-५ ॥

इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं समरे लोमवाहिभिः ।
अदूरात्पर्यवस्थाय पूरयामासुराहताः ॥ ६ ॥

समरमें पंखोंके सहारे उडनेवाले बहुतसे बाणोंसे उन वीरोंने पास ही स्थिर होकर अर्जुनको ढक दिया ॥ ६ ॥

तथावकीर्णस्य हि तैर्दिव्यैरस्त्रैः समन्ततः ।
न तस्य द्व्यङ्गुलमपि विवृतं समदृश्यत ॥ ७ ॥

उन वीरोंने अर्जुन पर दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी बरसात की कि अर्जुनके चारों ओर दो अंगुलकी जगह भी खाली नहीं रही ॥ ७ ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्दिव्यमैन्द्रं महारथः ।
अस्त्रमादित्यसंकाशं गाण्डीवे समयोजयत् ॥ ८ ॥

तब महारथी अर्जुनने हंसकर सूर्यके समान प्रकाशित दिव्य इन्द्रबाणको गाण्डीव धनुषपर चढाया ॥ ८ ॥

स रश्मिभिरिवादित्यः प्रतपन्समरे बली ।
किरीटमाली कौन्तेयः सर्वान्प्राच्छादयत्कुरून् ॥ ९ ॥

उस समय कुन्तीपुत्र किरीटधारी अर्जुनका तेज ऐसा बढा जैसे महातेज सूर्यका होता है । अर्जुनने अपने बाणोंसे सब कौरवोंको आच्छादित कर दिया ॥ ९ ॥

यथा बलाहके विद्युत्पावको वा शिलोच्चये ।
तथा गाण्डीवमभवदिन्द्रायुधमिवाततम् ॥ १० ॥

इन्द्रधनुषके समान झुका हुआ वह गांडीव धनुष मेघमें बिजलीके समान अथवा पत्थरमें अग्निके समान चमकीला हो गया ॥ १० ॥

यथा वर्षति पर्जन्ये विद्युद्विभ्राजते दिवि ।
तथा दश दिशः सर्वाः पतद्गाण्डीवमावृणोत् ॥ ११ ॥

जैसे बरसाते हुए मेघमें बिजली आकाशमें शोभा देती है उसी तरह बाण बरसाते हुए गांडीवने अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको ढक दिया ॥ ११ ॥

सर्वे शान्तिपरा भूत्वा स्वचित्तानि न लेभिरे ।
संग्रामविमुखाः सर्वे योधास्ते हतचेतसः ॥ १२ ॥

अर्जुनका तेज देखकर सभी सैनिक शान्त हो गए, वे सब मोहित हो गए। निरुत्साहित होकर वे सब योद्धा संग्रामसे विमुख हो गए ॥ १२ ॥

एवं सर्वाणि सैन्यानि भग्नानि भरतर्षभ ।
प्राद्रवन्त दिशः सर्वा निराशानि स्वजीविते ॥ १३ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ १५४२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इसप्रकार सभी सैनिक तितर बितर हो गए तथा अपने जीवनसे निराश होकर वे सभी दिशाओंमें भाग गए ॥ १३ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥ ५८ ॥ १५४२ ॥

: ५९ :

वैशंपायन उवाच

ततः शांतनवो भीष्मो दुराधर्षः प्रतापवान् ।
वध्यमानेषु योधेषु धनंजयमुपाद्रवत् ॥ १ ॥

प्रगृह्य कार्मुकश्रेष्ठं जातरूपपरिष्कृतम् ।
शरानादाय तीक्ष्णाग्रान्मर्मभेदप्रमाथिनः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले– जब इसप्रकार अर्जुन योधाओंको मार रहे थे, तब प्रतापशाली, अपराजेय शान्तनुपुत्र भीष्म सोनेसे विभूषित श्रेष्ठ धनुष और मर्मको भेदनेवाले, शत्रुओंको मथने वाले तथा तेज नोकवाले बाणोंको लेकर धनंजयकी ओर चले ॥ १-२ ॥

पाण्डुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्धनि ।
शुशुभे स नरव्याघ्रो गिरिः सूर्योदये यथा ॥ ३ ॥

अपने सिर पर सफेद छत्रको धारण करके भीष्म ऐसे शोभित हुए, जैसे सूर्यके उदय होनेसे पर्वत शोभित होता है ॥ ३ ॥

प्रध्माय शङ्खं गांगेयो धार्तराष्ट्रान्प्रहर्षयन् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्य बीभत्सुं समवारयत् ॥ ४ ॥

गङ्गापुत्र भीष्मने धृतराष्ट्रपुत्रोंको प्रसन्न करनेके लिये अपना शङ्ख बजाया और अर्जुनको दाहिनी ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

तमुद्वीक्ष्य तथायान्तं कौन्तेयः परवीरहा ।
प्रत्यगृह्णात्प्रहृष्टात्मा धाराधरमिवाचलः ॥ ५ ॥

जब शत्रुनाशक अर्जुनने देखा कि भीष्म मुझसे युद्ध करने आये हैं तब उनके बाणोंको अर्जुनने ऐसे ग्रहण किया जैसे मेघकी वर्षाको पर्वत ग्रहण करता है ॥ ५ ॥

ततो भीष्मः शरानष्टौ ध्वजे पार्थस्य वीर्यवान् ।
समर्पयन्महावेगाञ्श्वसमानानिवोरगान् ॥ ६ ॥

वीर्यवान् भीष्मने आठ बाण अर्जुनकी ध्वजामें मारे; वे महावेग युक्त बलवान बाण इस प्रकार चले, जैसे सांस लेते हुए सर्प उड रहे हों ॥ ६ ॥

ते ध्वजं पाण्डुपुत्रस्य समासाद्य पतत्रिणः ।
ज्वलन्तः कपिमाजघ्नुर्ध्वजाग्रनिलयांश्च तान् ॥ ७ ॥

वे बाण अर्जुनकी ध्वजामें लगकर ध्वजामें स्थित हनुमानको और सब ध्वजावासी भूतोंको दुःख देने लगे ॥ ७ ॥

ततो भल्लेन महता पृथुधारेण पाण्डवः ।
छत्रं चिच्छेद भीष्मस्य तूर्णं तदपतद्भुवि ॥ ८ ॥

तब अर्जुनने अपने एक विशाल धारवाले बाणसे भीष्मके छत्रको काट दिया और वह छत्र भी शीघ्रही पृथ्वीपर आ गिरा ॥ ८ ॥

ध्वजं चैवास्य कौन्तेयः शरैरभ्यहनद्दृढम् ।
शीघ्रकृद्रथवाहांश्च तथोभौ पार्ष्णिसारथी ॥ ९ ॥

शीघ्रतासे अस्त्र चलानेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुनने भीष्मकी दृढ ध्वजा, रथके घोडों तथा दोनों पार्श्वरक्षकोंको बाणोंसे विद्ध किया ॥ ९ ॥

तयोस्तदभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भीष्मस्य सह पार्थेन बलिवासवयोरिव ॥ १० ॥

भीष्मका अर्जुनके साथ भयंकर और रोंगटोंको खडा कर देनेवाला युद्ध बलि और इन्द्रके बीचमें हुए युद्धके समान हुआ ॥ १० ॥

भल्लैर्भल्लाः समागम्य भीष्मपाण्डवयोर्युधि ।
अन्तरिक्षे व्यराजन्त खद्योताः प्रावृषीव हि ॥ ११ ॥

युद्धमें भीष्म और अर्जुनके बाण बाणोंसे टकराकर अन्तरिक्षमें इस प्रकार चमकते थे, जैसे वर्षाकालमें जुगनु चमकते हैं ॥ ११ ॥

अग्निचक्रमिवाविद्धं सव्यदक्षिणमस्यतः ।
गाण्डीवमभवद्राजन्पार्थस्य सृजतः शरान् ॥ १२ ॥

उस समय दाहिनी और बाँई ओर बाण छोडनेसे अर्जुनका गाण्डीव धनुष अग्निचक्रके समान दीखने लगा ॥ १२ ॥

स तैः सञ्छादयामास भीष्मं शरशतैः शितैः ।
पर्वतं वारिधाराभिश्छादयन्निव तोयदः ॥ १३ ॥

फिर अर्जुनने अपने सहस्रों तीक्ष्ण बाणोंसे भीष्मको इस प्रकार ढक दिया जैसे मेघ अपने जलकी धाराओंसे पर्वतको ढक लेता है ॥ १३ ॥

तां स वेलामिवोद्धूतां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
व्यधमत्सायकैर्भीष्मो अर्जुनं संनिवारयत् ॥ १४ ॥

परन्तु अपने किनारोंका भी अतिक्रमण कर जानेवाले समुद्रके ज्वारके समान अचानकही शुरु हुए हुए उस बाणोंकी वृष्टिको भीष्मने अपने बाणोंसे नष्ट करके अर्जुनको रोका ॥ १४ ॥

ततस्तानि निकृत्तानि शरजालानि भागशः ।
समरेऽभिव्यशीर्यन्त फल्गुनस्य रथं प्रति ॥ १५ ॥

तब युद्धमें भीष्मके द्वारा तोडे गए वे बाणोंके समूह वापस अर्जुनके रथ पर आ गिरे ॥ १५ ॥

ततः कनकपुङ्खानां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
पाण्डवस्य रथात्तूर्णं शलभानामिवायतिम् ।
व्यधमत्तां पुनस्तस्य भीष्मः शरशतैः शितैः ॥ १६ ॥

उसके बाद ही अर्जुनके रथ परसे टिड्डी दलके समान उडकर आनेवाले सोनेके पंखवाले बाणोंकी वृष्टि भीष्मने फिर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे नष्ट कर डाली ॥ १६ ॥

ततस्ते कुरवः सर्वे साधु साध्विति चाब्रुवन् ।
दुष्करं कृतवान्भीष्मो यदर्जुनमयोधयत् ॥ १७ ॥

तब सब कौरव "शाबाश शाबाश" कहकर भीष्मकी प्रशंसा करके कहने लगे कि भीष्मने जो अर्जुनसे युद्ध किया वह एक बडा दुष्कर कार्य भीष्मने किया है ॥ १७ ॥

बलवांस्तरुणो दक्षः क्षिप्रकारी पाण्डवः ।
कोऽन्यः समर्थः पार्थस्य वेगं धारयितुं रणे ॥ १८ ॥
ऋते शांतनवाद्भीष्मात्कृष्णाद्वा देवकीसुतात् ।
आचार्यप्रवराद्वापि भारद्वाजान्महाबलात् ॥ १९ ॥

अर्जुन बलवान्, तरुण, फुर्तीला और बाण–विद्याको जाननेवाला है। युद्धमें अर्जुनके वेगको शन्तनुपुत्र भीष्म, देवकीपुत्र कृष्ण, भरद्वाज पुत्र महाबली और आचार्यश्रेष्ठ द्रोणको छोडकर और कौन सह सकता है ? ॥ १८–१९ ॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य क्रीडतः पुरुषर्षभौ ।
चक्षूंषि सर्वभूतानां मोहयन्तौ महाबलौ ॥ २० ॥

दोनों महाबलवान् नरसिंह भीष्म और अर्जुन शस्त्र और अस्त्रोंसे युद्ध करते हुए सब वीरोंको मोहित करने लगे ॥ २० ॥

प्राजापत्यं तथैवैन्द्रमाग्नेयं च सुदारुणम् ।
कौबेरं वारुणं चैव याम्यं वायव्यमेव च ।
प्रयुञ्जानौ महात्मानौ समरे तौ विचेरतुः ॥ २१ ॥

वे दोनों महात्मा कभी प्रजापति, कभी इन्द्र, कभी अग्नि, कभी वरुण, कभी कुबेर, कभी वायु और कभी यमके बाण चलाते हुए समरमें घूमने लगे ॥ २१ ॥

विस्मितान्यथ भूतानि तौ दृष्ट्वा संयुगे तदा ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भीष्मेति चाब्रुवन् ॥ २२ ॥

तब उन दोनोंको युद्धमें देखकर सभी प्राणी विस्मित हो गए और वे " महाबाहो अर्जुन ! शाबाश, भीष्म ! शाबाश " इस प्रकार कहने लगे ॥ २२ ॥

नेदं युक्तं मनुष्येषु योऽयं संदृश्यते महान् ।
महास्त्राणां संप्रयोगः समरे भीष्मपार्थयोः ॥ २३ ॥

वे यह भी कहते थे कि इस युद्धमें भीष्म और अर्जुनके बीच महास्त्रोंका यह जो प्रयोग दिखाई दे रहा है, वह साधारण मनुष्योंके युद्धमें कभी दिखाई नहीं दे सकता ॥ २३ ॥

एवं सर्वास्त्रविदुषोरस्त्रयुद्धमवर्तत ।
अथ जिष्णुरुपावृत्य पृथुधारेण कार्मुकम् ।
चकर्त भीष्मस्य तदा जातरूपपरिष्कृतम् ॥ २४ ॥

हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार सब शस्त्रविद्याके जाननेवाले भीष्म और अर्जुनका वह अस्त्र युद्ध शुरु हुआ, उसी समय अर्जुनने घूमकर एक तीक्ष्ण बाणसे भीष्मका सुवर्णचित्रित धनुष काट दिया ॥ २४ ॥

निमेषान्तरमात्रेण भीष्मोऽन्यत्कार्मुकं रणे ।
समादाय महाबाहुः सज्यं चक्रे महाबलः ।
शरांश्च सुबहून्क्रुद्धो मुमोचाशु धनञ्जये ॥ २५ ॥

उसी क्षण महाबाहु महाबली भीष्मने युद्धमें शीघ्रतासे एक दूसरा धनुष लेकर उस पर डोरी चढा ली और क्रोधसे अर्जुनके ऊपर बाण चलाने प्रारम्भ कर दिये ॥ २५ ॥

अर्जुनोऽपि शरांश्चित्रान्भीष्माय निशितान्बहून् ।
चिक्षेप सुमहातेजास्तथा भीष्मश्च पाण्डवे ॥ २६ ॥
उसी प्रकार महातेजस्वी अर्जुन भी भीष्मकी ओर अनेक विचित्र और तीक्ष्ण बाण छोडने लगे और भीष्म भी अर्जुनके ऊपर तीक्ष्ण बाण चलाने लगे ॥ २६ ॥

तयोर्दिव्यास्त्रविदुषोरस्यतोरनिशं शरान् ।
न विशेषस्तदा राजँल्लक्ष्यते स्म महात्मनोः ॥ २७ ॥
हे राजन् ! दिव्यास्त्रोंको जाननेवाले, तीक्ष्ण बाणोंको छोडनेवाले उन दोनों महात्माओंमें कोई विशेषता नहीं दिखाई दी ॥ २७ ॥

अथावृणोद्दश दिशः शरैरतिरथस्तदा ।
किरीटमाली कौन्तेयः शूरः शांतनवस्तथा ॥ २८ ॥
तब महारथी अर्जुनने और महाबलवान् शन्तनुपुत्र भीष्मने अपने बाणोंसे दसों दिशाओंको भर दिया ॥ २८ ॥

अतीव पाण्डवो भीष्मं भीष्मश्चातीव पाण्डवम् ।
बभूव तस्मिन्संग्रामे राजँल्लोके तदद्भुतम् ॥ २९ ॥
हे राजन् ! उस संग्राममें कभी अर्जुन भीष्मसे अधिक हो जाते थे, तो कभी भीष्म अर्जुनसे अधिक हो जाते थे, यह लोकमें बडा विस्मयजनक था ॥ २९ ॥

पाण्डवेन हताः शूरा भीष्मस्य रथरक्षिणः ।
शेरते स्म तदा राजन्कौन्तेयस्याभितो रथम् ॥ ३० ॥
हे राजन् ! उसी समय अर्जुनने अपने बाणोंसे भीष्मके रथकी रक्षा करनेवाले वीरोंको मार डाला । वे मरकर अर्जुनके रथके चारों ओर गिर गये ॥ ३० ॥

ततो गाण्डीवनिर्मुक्ता निरमित्रं चिकीर्षवः ।
आगच्छन्पुङ्खसंश्लिष्टाः श्वेतवाहनपत्रिणः ॥ ३१ ॥
उसी समय अर्जुनके धनुषसे छूटकर अनेक बाण शत्रुओंका नाश करनेके निमित्त युद्धमें घूमने लगे ॥ ३१ ॥

निष्पतन्तो रथात्तस्य धौता हैरण्यवाससः ।
आकाशे समदृश्यन्त हंसानामिव पङ्क्तयः ॥ ३२ ॥
वे सोनेके पंखवाले सफेद बाण अर्जुनके रथसे उडते हुए आकाशमें हंसकी पंक्तियोंके समान दिखाई देने लगे ॥ ३२ ॥

तस्य तद्दिव्यमस्त्रं हि प्रगाढं चित्रमस्यतः ।
प्रेक्षन्ते स्मान्तरिक्षस्थाः सर्वे देवाः सवासवाः　　॥ ३३ ॥
अद्भुत रीतिसे फेंके जाते हुए अर्जुनके दिव्य अस्त्रोंको आकाशमें खडे हुए इन्द्रादिक सब देवता देखने लगे ॥ ३३ ॥

तद्दृष्ट्वा परमप्रीतो गन्धर्वश्चित्रमद्भुतम् ।
शशंस देवराजाय चित्रसेनः प्रतापवान्　　॥ ३४ ॥
अर्जुनके इस अद्भुत कार्यको देखकर गन्धर्वराज प्रतापी चित्रसेन बहुत प्रसन्न होकर इन्द्रसे कहने लगे ॥ ३४ ॥

पश्येमानरिनिर्दारान्संसक्तानिव गच्छतः ।
चित्ररूपमिदं जिष्णोर्दिव्यमस्त्रमुदीर्यतः　　॥ ३५ ॥
दिव्य अस्त्रोंको प्रकट करते हुए अर्जुनके इस विचित्र कामको देखो । और शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन बाणोंको देखो, मानों ये एक दूसरेमें जुडते हुए उडे जा रहे हैं ॥ ३५ ॥

नेदं मनुष्याः श्रद्दध्युर्न हीदं तेषु विद्यते ।
पौराणानां महास्त्राणां विचित्रोऽयं समागमः　　॥ ३६ ॥
जैसे अर्जुन बाण चलाते हैं; वैसे कोई मनुष्य नहीं चला सकता है और इस बाणविद्याको भी कोई मनुष्य नहीं जानता । पुराने महास्त्रोंका यह विचित्र समागम है ॥ ३६ ॥

मध्यन्दिनगतं सूर्यं प्रतपन्तमिवाम्बरे ।
न शक्नुवन्ति सैन्यानि पाण्डवं प्रतिवीक्षितुम्　　॥ ३७ ॥
आकाशमें तपते हुए दोपहरके सूर्यके समान अर्जुनकी ओर कोई भी वीर नहीं देख सकता ॥ ३७ ॥

उभौ विश्रुतकर्माणावुभौ युद्धविशारदौ ।
उभौ सदृशकर्माणावुभौ युधि दुरासदौ　　॥ ३८ ॥
भीष्म और अर्जुन दोनों ही विख्यात कर्मवाले हैं । दोनों युद्धमें कुशल हैं । दोनोंके कर्म एक समान हैं और दोनों ही युद्धमें अजेय हैं ॥ ३८ ॥

इत्युक्तो देवराजस्तु पार्थभीष्मसमागमम् ।
पूजयामास दिव्येन पुष्पवर्षेण भारत　　॥ ३९ ॥
हे भारत जनमेजय ! भीष्मार्जुन युद्धके बारेमें चित्रसेनके ऐसे वचन सुनकर देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न होकर भीष्म और अर्जुनके ऊपर दिव्य फूल वर्षाने लगे ॥ ३९ ॥

*

ततो भीष्मः शान्तनवो वामे पार्श्वे समर्पयत् ।
अस्यतः प्रतिसंधाय विवृतं सव्यसाचिनः ॥ ४० ॥

उसी समय शान्तनुपुत्र भीष्मने सब वीरोंके बीचमें बाण चलाते हुए अर्जुनकी बाईं ओर एक बाण मारा ॥ ४० ॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुः पृथुधारेण कार्मुकम् ।
न्यकृन्तद्गार्ध्रपत्रेण भीष्मस्यामिततेजसः ॥ ४१ ॥

तब अर्जुनने हंसकर गीधके पंखवाले एक तेज बाणसे अत्यन्त तेजस्वी भीष्मका धनुष काट दिया ॥ ४१ ॥

अथैनं दशभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
यतमानं पराक्रान्तं कुन्तीपुत्रो धनंजयः ॥ ४२ ॥

बहुत शीघ्रतासे वीरता दिखलाते हुए कुन्तीपुत्र अर्जुनने पराक्रम प्रकट करते हुए तथा प्रयत्न करते हुए भीष्मकी छातीमें दस बाण मारे ॥ ४२ ॥

स पीडितो महाबाहुर्गृहीत्वा रथकूबरम् ।
गाङ्गेयो युधि दुर्धर्षस्तस्थौ दीर्घमिवातुरः ॥ ४३ ॥

तब युद्धमें दुर्जेय महाबाहु महातेजस्वी भीष्म पीडित होकर रथका डण्डा पकड कर इस तरह बैठ गए कि मानों वे बहुत लम्बे समयसे बीमार हों ॥ ४३ ॥

तं विसंज्ञमपोवाह संयन्ता रथवाजिनाम् ।
उपदेशमनुस्मृत्य रक्षमाणो महारथम् ॥ ४४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ १५८६ ॥

भीष्मको मूर्च्छित देख भीष्मके सारथीने अपने धर्मका स्मरण करके भीष्मकी रक्षाके निमित्त रथको युद्धसे हटा दिया ॥ ४४ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें उनसठवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५९ ॥ १५८६ ॥

: ६०

वैशम्पायन उवाच

भीष्मे तु संग्रामशिरो विहाय पलायमाने धृतराष्ट्रपुत्रः ।
उच्छ्रित्य केतुं विनदन्महात्मा स्वयं विगृह्यार्जुनमाससाद ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! जब भीष्म युद्धस्थल छोडकर भाग गये, तब महात्मा धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन अपने रथकी ध्वजा उडाते हुए और गर्जते हुए स्वयं धनुष धारण करके अर्जुनसे युद्ध करने आये ॥ १ ॥

स भीमधन्वानमुदग्रवीर्यं धनंजयं शत्रुगणे चरन्तम् ।
आकर्णपूर्णायतचोदितेन भल्लेन विव्याध ललाटमध्ये ॥ २ ॥

दुर्योधनने भयंकर धनुषवाले और अत्यन्त वीर्यवान् अर्जुनको शत्रुसेनामें घूमते हुए देखकर कानतक खींचकर अर्जुनके मस्तकमें बाण मारा ॥ २ ॥

स तेन बाणेन समर्पितेन जाम्बूनदाभेन सुसंशितेन ।
रराज राजन्महनीयकर्मा यथैकपर्वा रुचिरैकशृङ्गः ॥ ३ ॥

हे राजन् ! वह सुवर्णके अग्रभागवाला अत्यन्त तीक्ष्ण बाण उसके मस्तकमें जाकर धंस गया तब वह प्रशंसनीय कर्मवाले अर्जुन एक ही पर्ववाले तथा एक ही चोटीवाले सुन्दर पर्वतके समान शोभित हुए ॥ ३ ॥

अथास्य बाणेन विदारितस्य प्रादुर्बभूवासृगजस्रमुष्णम् ।
सा तस्य जाम्बूनदपुष्पचित्रा मालेव चित्राभिविराजते स्म ॥ ४ ॥

उस बाणके लगनेके कारण माथा फट जानेसे अर्जुनके माथेसे लगातार गरम रुधिर निकलने लगा और वह खून सोनेके फूलोंसे चित्रविचित्र मालाके समान शोभा देने लगा ॥ ४ ॥

स तेन बाणाभिहतस्तरस्वी दुर्योधनेनोद्धतमन्युवेगः ।
शरानुपादाय विषाग्निकल्पान्विव्याध राजानमदीनसत्त्वः ॥ ५ ॥

जब दुर्योधनके द्वारा छोडा गया वह बाण बलशाली अर्जुनके जाकर लगा, तब अर्जुनका क्रोध बहुत बढ गया और अत्यन्त बलशाली अर्जुनने विष और अग्निके समान भयंकर बाणोंको लेकर उनसे राजा दुर्योधनको बींध डाला ॥ ५ ॥

दुर्योधनश्चापि तमुग्रतेजाः पार्थश्च दुर्योधनमेकवीरः ।
अन्योन्यमाजौ पुरुषप्रवीरौ समं समाजघ्नतुराजमीढौ ॥ ६ ॥

इसके बाद उग्रतेजस्वी दुर्योधन अर्जुनसे और पूरे विश्वमें अद्वितीयवीर अर्जुन दुर्योधनसे ये दोनों अजमीढ कुलमें उत्पन्न पुरुषश्रेष्ठ युद्धमें एक दूसरेसे भिड गए ॥ ६ ॥

ततः प्रभिन्नेन महागजेन महीधराभेन पुनर्विकर्णः ।
रथैश्चतुर्भिर्गजपादरक्षैः कुन्तीसुतं जिष्णुमथाभ्यधावत् ॥ ७ ॥

उसी समय पर्वतके समान मतवाले मदयुक्त हाथीपर चढकर हाथीके पैरोंकी रक्षा करनेवाले रथोंके सहित विकर्ण पुनः कुन्तीपुत्र अर्जुनसे युद्ध करने आया ॥ ७ ॥

तमापतन्तं त्वरितं गजेन्द्रं धनंजयः कुम्भविभागमध्ये ।
आकर्णपूर्णेन दृढायसेन बाणेन विव्याध महाजवेन ॥ ८ ॥

तेजीसे उस मस्त हाथीको अपनी तरफ आते देखकर अर्जुनने उस मतवाले हाथीके कुम्भके बीचमें कानतक खींचकर एक महातेज बाण मारा ॥ ८ ॥

पार्थेन सृष्टः स तु गार्ध्रपत्र आ पुङ्खदेशात्प्रविवेश नागम्।
विदार्य शैलप्रवरप्रकाशं यथाशनिः पर्वतमिन्द्रसृष्टः ॥ ९ ॥

तब पर्वतको फोडनेवाले इन्द्रके द्वारा छोडे गए वज्रके समान वह अर्जुनके द्वारा छोडा गया गृध्रपिच्छबाण एक श्रेष्ठ पर्वतके समान विशाल हाथीका गण्डस्थल फोडकर पंखोंके साथ अन्दर घुस गया ॥ ९ ॥

शरप्रतप्तः स तु नागराजः प्रवेपिताङ्गो व्यथितान्तरात्मा।
संसीदमानो निपपात मह्यां वज्राहतं शृङ्गमिवाचलस्य ॥ १० ॥

उस बाणके लगनेसे हाथीका शरीर कांपने लगा और उसकी आत्मा व्यथित होगई। वह हाथी इस प्रकार चिल्लाकर पृथ्वीपर गिरा जैसे वज्रके लगनेसे पवर्तकी चोटी गिरती है ॥ १० ॥

निपातिते दन्तिवरे पृथिव्यां त्रासाद्विकर्णः सहसावतीर्य।
तूर्णं पदान्यष्टशतानि गत्वा विविंशतेः स्यन्दनमारुरोह ॥ ११ ॥

जब अर्जुनने विकर्णका हाथी पृथ्वीपर गिरा दिया, तब वह विकर्ण डरके मारे अचानक हाथीपरसे कूद गया और आठसौ कदम चलकर विविंशतिके रथपर चढ गया ॥ ११ ॥

निहत्य नागं तु शरेण तेन वज्रोपमेनाद्रिवराम्बुदाभम्।
तथाविधेनैव शरेण पार्थो दुर्योधनं वक्षसि निर्बिभेद ॥ १२ ॥

इस प्रकार वज्रके समान भयंकर उस बाणसे पहाडके समान विशाल और मेघके समान काले उस हाथीको मारकर अर्जुनने उसी तरहके एक दूसरे बाणको दुर्योधनकी छातीमें मारा ॥ १२ ॥

ततो गजे राजनि चैव भिन्ने भग्ने विकर्णे च सपादरक्षे।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैः प्रणुन्नास्ते योधमुख्याः सहसापजग्मुः ॥ १३ ॥

जब अपने पादरक्षकोंके साथ विकर्ण युद्धको छोडके भाग गया और हाथी मारा गया तथा राजा दुर्योधन हार गये, तब गाण्डीव धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे पीडित होकर सब वीर भाग गये ॥ १३ ॥

दृष्ट्वैव पार्थेन हतं तु नागं योधांश्च सर्वान्द्रवतो निशम्य।
रथं समावृत्य कुरुप्रवीरो रणात्प्रदुद्राव यतो न पार्थः ॥ १४ ॥

जब राजा दुर्योधनने देखा कि हाथी मारा गया; और यह भी देखा कि सारे योद्धा भागे जा रहे हैं, तो कुरुश्रेष्ठ दुर्योधन अपने रथको घुमाकर ऐसे स्थानपर भाग गये जहां अर्जुन न देख सके ॥ १४ ॥

तं भीमरूपं त्वरितं द्रवन्तं दुर्योधनं शत्रुसहो निषङ्गी।
प्राक्ष्वेडयद्योद्धुमनाः किरीटी बाणेन विद्धं रुधिरं वमन्तम् ॥ १५ ॥

उस पराजित हुए उग्ररूप दुर्योधनको बाणसे घायल होनेके कारण रक्तका वमन करते हुए भागे जाते हुए देखकर अर्जुनने युद्धकी इच्छासे अपने भुजदण्ड ठोके (और वे बोले) ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच

विहाय कीर्तिं विपुलं यशश्च युद्धात्परावृत्य पलायसे किम् ।
न तेऽद्य तूर्याणि समाहतानि यथावदुद्यान्ति गतस्य युद्धे ॥ १६ ॥

अर्जुन बोले– हे दुर्योधन ! तुम यशोराशि छोडकर कातरतामे युद्धसे क्यों भागे जाते हो ? अभी तो जैसे युद्धकी समाप्ति पर बाजे बजाये जाते हैं, वैसे तुम्हारी भेरियां नहीं बजाई गई हैं, अर्थात् अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ है ॥ १६ ॥

युधिष्ठिरस्यास्मि निदेशकारी पार्थस्तृतीयो युधि च स्थिरोऽस्मि ।
तदर्थमावृत्य मुखं प्रयच्छ नरेन्द्रवृत्तं स्मर धार्तराष्ट्र ॥ १७ ॥

मैं राजा युधिष्ठिरका आज्ञाकारी तीसरा पांडव युद्ध करनेके लिए अभी खडा हुआ हूं । हे धृतराष्ट्रपुत्र ! तुम क्षत्रियोंके धर्मको याद करो और लौटकरके मेरा मुकाबला करो ॥ १७ ॥

मोघं तवेदं भुवि नामधेयं दुर्योधनेतीह कृतं पुरस्तात् ।
नहीह दुर्योधनता तवास्ति पलायमानस्य रणं विहाय ॥ १८ ॥

संसारमें पहले जो दुर्योधन (जिसके साथ युद्ध करना बहुत कठिन है) के नामसे तुम विख्यात थे, वह तुम्हारा नाम आज व्यर्थ हो गया । रणको छोडकर भागे जानेवाले तुम्हारे अन्दर दुर्योधनता कहां है ?॥ १८ ॥

न ते पुरस्तादथ पृष्ठतो वा पश्यामि दुर्योधन रक्षितारम् ।
परैहि युद्धेन कुरुप्रवीर प्राणान्प्रियान्पाण्डवतोऽद्य रक्ष ॥ १९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ १६०५ ॥

हे दुर्योधन ! मैं तुम्हारे आगे, पीछे कोई रक्षा करनेवाला नहीं देखता इसलिए, हे कुरुश्रेष्ठ ! तुम युद्धसे दूर भाग जाओ और आज पाण्डुपुत्र अर्जुनसे अपने प्रिय प्राणोंकी रक्षा कर लो ॥ १९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें साठवांअध्याय समाप्त ॥ ६० ॥ १६०५ ॥

: ६१ :

वैशम्पायन उवाच

आहूयमानस्तु स तेन संख्ये महामना धृतराष्ट्रस्यपुत्रः ।
निवर्तितस्तस्य गिराङ्कुशेन गजो यथा मत्त इवाङ्कुशेन ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार उन महामनस्वी अर्जुनके द्वारा युद्धमें बुलाये जानेपर वह धृतराष्टपुत्र दुर्योधन उन अर्जुनके वचनरूपी अंकुशसे पीडित होकर उसी प्रकार लौट आए, जिस प्रकार कोई मत्त गज अंकुशके कारण लौट आता है ॥ १ ॥

सोऽमृष्यमाणो वचसाभिमृष्टो महारथेनातिरथस्तरस्वी।
पर्याववर्ताथ रथेन वीरो भोगी यथा पादतलाभिमृष्टः ॥ २ ॥
महावेगवान् महारथी दुर्योधन उस कठोर बाणोंको सहन कर अर्जुनसे इस प्रकार युद्ध करने लौट आया, जैसे लात लगनेसे विषैला साँप लौटता है ॥ २ ॥

तं प्रेक्ष्य कर्णः परिवर्तमानं निवर्त्य संस्तभ्य च विद्धगात्रः।
दुर्योधनं दक्षिणतोऽभ्यगच्छत्पार्थं नृवीरो युधि हेममाली ॥ ३ ॥
घायल शरीरवाला होनेपर भी सोनेकी माला धारण किया हुआ नरश्रेष्ठ कर्ण दुर्योधनको लौटकर आता हुआ देखकर स्वयं भी लौट आया और दुर्योधनकी दाहिनी तरफसे अर्जुनकी तरफ दौडा ॥ ३ ॥

भीष्मस्ततः शांतनवो निवृत्य हिरण्यकक्ष्यांस्त्वरयंस्तुरंगान्।
दुर्योधनं पश्चिमतोऽभ्यरक्षत्पार्थान्महाबाहुरधिज्यधन्वा ॥ ४ ॥
तब महाबाहु और उत्तम डोरीवाले धनुषको धारण करनेवाले शान्तनुपुत्र भीष्म भी लौटकर सोनेसे भूषित अपने घोडोंको शीघ्र हांकते हुए अर्जुनसे दुर्योधनकी पीछेसे रक्षा करने लगे ॥ ४ ॥

द्रोणः कृपश्चैव विविंशतिश्च दुःशासनश्चैव निवृत्य शीघ्रम्।
सर्वे पुरस्ताद्वितत्तेषुचापा दुर्योधनार्थं त्वरिताभ्युपेयुः ॥ ५ ॥
उसी समय द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विविंशति और दुःशासनादि वीर लौट आए और दुर्योधनकी रक्षाके लिए अपने धनुषोंको फैलाकर दुर्योधनके पास आ पहुंचे ॥ ५ ॥

स तान्यनीकानि निवर्तमानान्यालोक्य पूर्णौघनिभानि पार्थः।
हंसो यथा मेघमिवापतन्तं धनंजयः प्रत्यपतत्तरस्वी ॥ ६ ॥
जब अर्जुनने उस पूर्ण भरे हुए समुद्रके समान उस सेनाको लौटते हुए देखा, तब उसकी ओर इस प्रकार दौडे जैसे मेघकी ओर हंस दौडता है ॥ ६ ॥

ते सर्वतः संपरिवार्य पार्थमस्त्राणि दिव्यानि समाददानाः।
ववर्षुरभ्येत्य शरैः समन्तान्मेघा यथा भूधरमम्बुवेगैः ॥ ७ ॥
उन सबने चारों ओरसे अर्जुनको घेरकर दिव्य बाण चलाने आरम्भ किये। वे लोग इस प्रकार अर्जुनके ऊपर बाण छोडने लगे जैसे मेघ पर्वतके ऊपर जल बरसाते हैं ॥ ७ ॥

ततोऽस्त्रमस्त्रेण निवार्य तेषां गाण्डीवधन्वा कुरुपुङ्गवानाम्।
संमोहनं शत्रुसहोऽन्यदस्त्रं प्रादुश्चकारैन्द्रिरपारणीयम् ॥ ८ ॥
उस समय गांडीव धनुष धारण करनेवाले, शत्रुनाशी इन्द्रपुत्र अर्जुनने उन सब कौरवोंके अस्त्रोंको अपने अस्त्रसे काटकर सम्मोहन नामक एक दुर्धर अस्त्र चलाया ॥ ८ ॥

ततो दिशश्चानुदिशो विवृत्य शरैः सुधारैर्निशितैः सुपुङ्खैः ।
गाण्डीवघोषेण मनांसि तेषां महाबलः प्रव्यथयांचकार ॥ ९ ॥

इसके उपरान्त अर्जुनने अपने तीक्ष्ण धारवाले पंखवाले बाणोंसे दिशा और कोनोंको भर दिया तथा अपने धनुषके टङ्कारसे वीरोंके अंतःकरणोंको व्यथित कर दिया ॥ ९ ॥

ततः पुनर्भीमरवं प्रगृह्य दोर्भ्यां महाशङ्खमुदारघोषम् ।
व्यनादयत्स प्रदिशो दिशः खं भुवं च पार्थो द्विषतां निहन्ता ॥ १० ॥

तब फिर शत्रुनाशी अर्जुनने अपने दोनों हाथोंमें लेकर घोर शब्दवाला महाशंख बजाया । उसके शब्दसे सब दिशायें उपदिशायें आकाश और पृथ्वी पूरित हो गई ॥ १० ॥

ते शङ्खनादेन कुरुप्रवीराः संमोहिताः पार्थसमीरितेन ।
उत्सृज्य चापानि दुरासदानि सर्वे तदा शान्तिपरा बभूवुः ॥ ११ ॥

उस अर्जुनके बजाये शंखके शब्दको सुनकर सब कौरव मोहित हो गये, और सब अपने अपने दुर्जेय धनुषोंको रखकर शान्तिसे बैठ गये ॥ ११॥

तथा विसंज्ञेषु परेषु पार्थः स्मृत्वा तु वाक्यानि तथोत्तरायाः ।
निर्याहि मध्यादिति मत्स्यपुत्रमुवाच यावत्कुरवो विसंज्ञाः ॥ १२ ॥

जब सब कौरव संज्ञारहित हो गये, तब आनेके समय उत्तराकी कही हुई बातका स्मरण करके अर्जुनने उत्तरसे कहा, हे उत्तर ! जबतक कौरव मूर्च्छित हैं, तबतक उनके बीचमें चलो ॥ १२ ॥

आचार्यशारद्वतयोः सुशुक्ले कर्णस्य पीतं रुचिरं च वस्त्रम् ।
द्रौणेश्च राज्ञश्च तथैव नीले वस्त्रे समादत्स्व नरप्रवीर ॥ १३ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! तुम द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके सफेद, कर्णके सुन्दर पीले, अश्वत्थामा और दुर्योधनके नीले वस्त्र उतार कर शीघ्र ले आओ ॥ १३ ॥

भीष्मस्य संज्ञां तु तथैव मन्ये जानाति मेऽस्त्रप्रतिघातमेषः ।
एतस्य वाहान्कुरु सव्यतस्त्वमेवं हि यातव्यममूढसंज्ञैः ॥ १४ ॥

मैं जानता हूं कि भीष्म मूर्च्छित नहीं हुए हैं क्योंकि ये इस बाणको काटना जानते हैं । अतः तुम उनके घोडोंको बाईं तरफ कर दो, क्योंकि होशसे युक्त लोगोंको इसी ढंगसे चलना चाहिए ॥ १४ ॥

रश्मीन्समुत्सृज्य ततो महात्मा रथादवप्लुत्य विराटपुत्रः ।
वस्त्राण्युपादाय महारथानां तूर्णं पुनः स्वं रथमारुरोह ॥ १५ ॥

बिराटपुत्र महात्मा उत्तर घोडोंकी लगाम छोडकर रथसे नीचे उतरे और सब वीरोंके वस्त्र उतारकर फिर शीघ्र अपने रथपर आ बैठे ॥ १५ ॥

ततोऽन्वशासच्चतुरः सदश्वान्पुत्रो विराटस्य हिरण्यकक्ष्यान्।
ते तद्व्यतीयुर्ध्वजिनामनीकं श्वेता वहन्तोऽर्जुनमाजिमध्यात् ॥ १६ ॥
तब विराटपुत्र उत्तर अपने रथपर आकर सुवर्णालङ्कारोंसे भूषित अपने चारों अच्छे घोडोंको हांकने लगे। उसी समय वे सफेद घोडे क्षणमात्रमें अर्जुनको लेकर सेनासे बाहर आ गये ॥ १६ ॥

तथा तु यान्तं पुरुषप्रवीरं भीष्मः शरैरभ्यहनत्तरस्वी।
स चापि भीष्मस्य हयान्निहत्य विव्याध पार्श्वे दशभिः पृषत्कैः ॥ १७ ॥
जब पुरुषसिंह अर्जुन युद्धको जीतकर चलने लगे, तब भीष्मने वेगसे उनके ऊपर अनेक बाण मारे। अर्जुनने भी भीष्मके घोडोंको मार डाला और दस बाणोंसे भीष्मको भी बींध डाला ॥ १७ ॥

ततोऽर्जुनो भीष्ममपास्य युद्धे विद्ध्वस्य यन्तारमरिष्टधन्वा।
तस्थौ विमुक्तो रथवृन्दमध्याद्राहुं विदार्येव सहस्ररश्मिः ॥ १८ ॥
उसी समय धनुर्धर अर्जुनने भीष्मको छोडकर सारथीके शरीरमें बाण मारा और रथोंके समूहमेंसे निकलकर ऐसे खडे हो गये जैसे राहुको तोडकर सूर्य दीखते हैं ॥ १८ ॥

लब्ध्वा तु संज्ञां च कुरुप्रवीरः पार्थं समीक्ष्याथ महेन्द्रकल्पम्।
रणाद्विमुक्तं स्थितमेकमाजौ स धार्तराष्ट्रस्त्वरितो बभाषे ॥ १९ ॥
उसी समय सब कौरवोंकी मूर्च्छा खुली और सबने इन्द्रके समान अर्जुनको रणसे मुक्त और रणक्षेत्रमें अकेले खडे हुए देखा। तब राजा दुर्योधनने कहा ॥ १९ ॥

अयं कथंस्विद्भवतां विमुक्तस्तं वै प्रबध्नीत यथा न मुच्येत्।
तमब्रवीच्छांतनवः प्रहस्य क्व ते गता बुद्धिरभूत्क्व वीर्यम् ॥ २० ॥
तुम लोगोंने अर्जुनको क्यों छोड दिया? इसको इस तरह बांध दो कि यह छूटने न पाये। तब शन्तनुपुत्र भीष्म हंसकर बोले– अभी अभी तुम्हारी बुद्धि और बल कहां चले गये थे? ॥ २० ॥

शान्तिं पराश्वस्य यथा स्थितोऽभूरुत्सृज्य बाणांश्च धनुश्च चित्रम्।
न त्वेव बीभत्सुरलं नृशंसं कर्तुं न पापेऽस्य मनो निविष्टम् ॥ २१ ॥
अभी तुम धनुषबाण रखकर क्यों शान्त हो गये थे? अर्जुन पापी नहीं है, इसलिये वह बुरा कर्म नहीं करता है ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यहेतोर्न जहेत्स्वधर्मं तस्मान्न सर्वे निहता रणेऽस्मिन्।
क्षिप्रं कुरून्याहि कुरुप्रवीर विजित्य गाश्च प्रतियातु पार्थः। ॥ २२ ॥
वह तीनों लोकोंके राज्यके लोभसे भी धर्मको नहीं छोडेगा; इसीलिये उसने हम सबको ऐसी अवस्थामें नहीं मारा। हे कुरुश्रेष्ठ! अब तुम शीघ्र हस्तिनापुरको लौट जाओ और अर्जुन भी गौओंको जीतकर विराट नगरको लौट जाये ॥ २२ ॥

दुर्योधनस्तस्य तु तन्निशम्य पितामहस्यात्महितं वचोऽथ ।
अतीतकामो युधि सोऽत्यमर्षी राजा विनिःश्वस्य बभूव तूष्णीम् ॥ २३ ॥

भीष्म पितामहके ऐसे आत्महितकारी वचन सुनकर राजा दुर्योधनने अर्जुनको जीतनेकी आशा छोड दी और अपने संतापको कम करके लम्बी सांस लेकर चुप हो गया ॥ २३ ॥

तद्भीष्मवाक्यं हितमीक्ष्य सर्वे धनञ्जयाग्निं च विवर्धमानम् ।
निवर्तनायैव मनो निदध्युर्दुर्योधनं ते परिरक्षमाणाः ॥ २४ ॥

सब वीरोंने भीष्मके वचनको अपने लिए हितकारी समझा और अर्जुनरूपी अग्निको बढते हुए देखा, तब दुर्योधनकी रक्षा करनेके निमित्त उन्होंने लौटनेका ही निश्चय किया ॥२४॥

तान्प्रस्थितान्प्रीतमनाः स पार्थो धनञ्जयः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीरान् ।
आभाषमाणोऽनुययौ मुहूर्तं सम्पूजयंस्तत्र गुरून्महात्मा ॥ २५ ॥

वापस लौटकर जाते हुए उन कुरुवीरोंको प्रसन्न मनसे देखकर थोडी देर तक कुछ न बोलते हुए उन महात्मा अर्जुनने गुरुओंकी पूजा करते हुए उनसे विनय दिखाने लगे ॥ २५ ॥

पितामहं शान्तनवं स वृद्धं द्रोणं गुरुं च प्रतिपूज्य मूर्ध्ना ।
द्रौणिं कृपं चैव गुरूंश्च सर्वाञ्शरैर्विचित्रैरभिवाद्य चैव ॥ २६ ॥

शान्तनुपुत्र पितामह भीष्म, बूढे गुरु द्रोणाचार्यको सिर झुकाकर प्रणाम किया और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सब मान्य बूढोंको विचित्र बाणोंसे प्रणाम किया ॥ २६ ॥

दुर्योधनस्योत्तमरत्नचित्रं चिच्छेद पार्थो मुकुटं शरेण ।
आमन्त्र्य वीरांश्च तथैव मान्यान्गाण्डीवघोषेण विनाद्य लोकान् ॥ २७ ॥

और दुर्योधनका रत्नजटित मुकुट बाणसे काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया, तथा सब अन्य माननीय वीरोंसे अनुमति लेकर फिर धनुषपर टंकार दी ॥ २७ ॥

स देवदत्तं सहसा विनाद्य विदार्य वीरो द्विषतां मनांसि ।
ध्वजेन सर्वानभिभूय शत्रून्स हेमजालेन विराजमानः ॥ २८ ॥

फिर अचानक देवदत्त शङ्खको बजाकर सब शत्रुओंके हृदयोंको दहला दिया । इस प्रकार सब शत्रुओंका पूरी तरह पराभव करके सोनेकी मालासे युक्त ध्वजावाले अर्जुन अपने तेजसे चमकने लगे ॥ २८ ॥

×

दृष्ट्वा प्रयातांस्तु कुरून्किरीटी हृष्टोऽब्रवीत्तत्र स मत्स्यपुत्रम् ।
आवर्तयाश्वान्पशवो जितास्ते याताः परे याहि पुरं प्रहृष्टः ॥ २९ ॥

इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ १६३४ ॥

कौरवोंको लौटकर जाते हुए देखकर प्रसन्न हुए अर्जुन वहां मत्स्यराजके पुत्र उत्तरसे बोले– हे उत्तर ! तुम अब रथको लौटाओ, तुमने गौवोंको जीत लिया; अब प्रसन्न होकर अपने नगरको लौटो ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें इकसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६१ ॥ १६३४ ॥

६२

वैशम्पायन उवाच

तता विजित्य संग्रामे कुरून्गोवृषभेक्षणः ।
समानयामास तदा विराटस्य धनं महत् ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! जब विशालनेत्र अर्जुन इस प्रकार सब कौरवोंको जीत चुके और विराटका धन छीन चुके तब अपने नगरको लौटे ॥ १ ॥

गतेषु च प्रभग्नेषु धार्तराष्ट्रेषु सर्वशः ।
वनान्निष्क्रम्य गहनाद्बहवः कुरुसैनिकाः ॥ २ ॥

जब धृतराष्ट्रपुत्र हरतरहसे हारकर लौट गए; तब छिपे हुए कौरवोंकी सेनाके अनेक लोग वनसे निकले ॥ २ ॥

भयात्संत्रस्तमनसः समाजग्मुस्ततस्ततः ।
मुक्तकेशा व्यदृश्यन्त स्थिताः प्राञ्जलयस्तदा ॥ ३ ॥

इन सभीके हृदय भयसे कांप रहे थे । वे सब इधर उधरसे आकर इकट्ठे हुए । वे सभी बाल खोलकर आए और हाथ जोडकर अर्जुनके आगे खडे हो गए ॥ ३ ॥

क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता विदेशस्था विचेतसः ।
ऊचुः प्रणम्य संभ्रान्ताः पार्थ किं करवाम ते ॥ ४ ॥

वे सब परदेशी भूख प्याससे व्याकुल, चेतनारहित और भ्रान्त हो गए थे । वे प्रणाम करके अर्जुनसे बोले– हे अर्जुन ! हम आपके लिए क्या करें ? ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच

स्वस्ति व्रजत भद्रं वो न भेतव्यं कथंचन।
नाहमार्ताञ्जिघांसामि भृशमाश्वासयामि वः ॥ ५ ॥

अर्जुन बोले– तुम लोगोंका कल्याण हो, सुखमे अपने अपने घरको चले जाओ तुम डरो मत। मैं निश्चयपूर्वक तुम्हें सान्त्वना देता हूँ कि मैं डरे हुए मनुष्योंको नहीं मारता ॥ ५ ॥

वैशंपायन उवाच

तस्य तामभयां वाचं श्रुत्वा योधाः समागताः।
आयुःकीर्तियशोदाभिस्तमाशीर्भिरनन्दयन् ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुनकी ऐसी अभयवाणी सुनकर आए हुए सब योद्धा उन्हें दीर्घ आयुष्य, कीर्ति और यश प्राप्त हो ऐसा आशीर्वाद देने लगे ॥ ६ ॥

ततो निवृत्ताः कुरवः प्रभग्ना वशमास्थिताः।
पन्थानमुपसङ्गम्य फल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥

तब कौरवगण निरुत्साहित होकर अर्जुनसे पराजित होकर लौट गए। इधर विराटनगर जाते हुए अर्जुन रास्तेमें उत्तरसे यह वचन बोले ॥ ७ ॥

राजपुत्र प्रत्यवेक्ष समानीतानि सर्वशः।
गोकुलानि महाबाहो वीर गोपालकैः सह ॥ ८ ॥

हे राजपुत्र ! हे महाबाहो ! देखो, इन सब गौ और ग्वालोंको मैं जीत लाया हूं ॥ ८ ॥

ततोऽपराह्णे यास्यामो विराटनगरं प्रति।
आश्वास्य पाययित्वा च परिप्लाव्य च वाजिनः ॥ ९ ॥

अब हम दूसरे पहरमें विराट नगरकी ओर चलेंगे। अभी घोडोंको टहलाकर पानी पिलाकर उन्हें शान्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

गच्छन्तु त्वरिताश्चैव गोपालाः प्रेषितास्त्वया।
नगरे प्रियमाख्यातुं घोषयन्तु च ते जयम् ॥ १० ॥

तुम्हारे द्वारा भेजे गए गोपाल नगरमें यह प्रिय समाचार देनेके लिए शीघ्र ही जायें और वहां जाकर तुम्हारे विजयकी घोषणा करें ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

उत्तरस्त्वरमाणोऽथ दूतानाज्ञापयत्ततः ।
वचनादर्जुनस्यैव आचक्षध्वं जयं मम ॥ ११ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ समाप्तं गोग्रहणपर्व ॥ १६४५ ॥

वैशम्पायन बोले– उत्तरने अर्जुनके वचन सुनकर शीघ्रता करते हुए अहीरोंको आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र नगरमें जाकर महाराजसे विजयका समाचार कहो ॥ ११ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें बासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥ गोग्रहणपर्व समाप्त ॥ १६४५ ॥

६३

वैशम्पायन उवाच

अवजित्य धनं चापि विराटो वाहिनीपतिः ।
प्राविशन्नगरं हृष्टश्चतुर्भिः सह पाण्डवैः ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! इस प्रकार सेनाके स्वामी विराट युधिष्ठिर, भीम नकुल और सहदेवके सहित अपने नगरमें आये ॥ १ ॥

जित्वा त्रिगर्तान्संग्रामे गाश्चैवादाय केवलाः ।
अशोभत महाराजः सह पार्थैः श्रिया वृतः ॥ २ ॥

संग्राममें सुशर्माको और गौओंको जीतकर राजा विराट पाण्डवोंके सहित अत्यन्त शोभासे युक्त हुए ॥ २ ॥

तमासनगतं वीरं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ।
उपतस्थुः प्रकृतयः समस्ता ब्राह्मणैः सह ॥ ३ ॥

मित्रोंको सुख देनेवाले, महातेजस्वी राजा विराट जब अपनी सभामें बैठे, तब उनकी प्रजायें ब्राह्मणोंके सहित वहां आकर उपस्थित हुई ॥ ३ ॥

सभाजितः ससैन्यस्तु प्रतिनन्द्याथ मत्स्यराट् ।
विसर्जयामास तदा द्विजांश्च प्रकृतीस्तथा ॥ ४ ॥

राजा विराटने सेनाके सहित अपनी सभाको अभिनंदन कर ब्राह्मण और प्रजाका विसर्जन किया ॥ ४ ॥

तत: स राजा मत्स्यानां विराटो वाहिनीपतिः।
उत्तरं परिपप्रच्छ क यात इति चाब्रवीत् ॥ ५ ॥
इसके बाद सेनाके स्वामी, मत्स्यदेशके राजा विराटने उत्तरके बारेमें पूछा और कहा कि वह कहां चला गया ? ॥ ५ ॥

आचख्युस्तस्य संहृष्टाः स्त्रियः कन्याश्च वेश्मनि।
अन्तःपुरचराश्चैव कुरुभिर्गोधनं हृतम् ॥ ६ ॥
तब उसके महलमें रहनेवाली कन्याओं, स्त्रियों और अन्य अन्तःपुरवासियोंने प्रसन्न होकर कौरवोंके द्वारा गौहरणका समाचार कह सुनाया ॥ ६ ॥

विजेतुमभिसंरब्ध एक एवातिसाहसात्।
बृहन्नडासहायश्च निर्यातः पृथिवींजयः ॥ ७ ॥
उपयातानतिरथान्द्रोणं शांतनवं कृपम्।
कर्णं दुर्योधनं चैव द्रोणपुत्रं च षड्रथान् ॥ ८ ॥
कौरवोंके द्वारा गौओंको हरे जानेके कारण राजपुत्र बहुत क्रोधित हो गए, इसलिए बृहन्नडा को साथमें लेकर वे पृथिवींजय अकेले ही बहुत साहससे, आक्रमण करनेवाले भीष्म, कृप, कर्ण, दुर्योधन द्रोण और अश्वत्थामा इन महारथियोंको जीतनेके लिए गए हैं ॥ ७–८ ॥

राजा विराटोऽथ भृशं प्रतप्तः श्रुत्वा सुतं ह्येकरथेन यातम्।
बृहन्नडासारथिमाजिवर्धनं प्रोवाच सर्वानथ मन्त्रिमुख्यान् ॥ ९ ॥
जब राजा विराटने सुना कि मेरा पुत्र बृहन्नडाको साथ लेकर अकेलाही युद्ध करनेको चला गया है, तब घबडाकर मुख्यमंत्रियोंसे कहने लगे ॥ ९ ॥

सर्वथा कुरवस्ते हि ये चान्ये वसुधाधिपाः।
त्रिगर्तान्निर्जितान्श्रुत्वा न स्थास्यन्ति कदाचन ॥ १० ॥
मुझे निश्चय है कि राजा सुशर्माको पराभूत हुआ सुनकर सब राजा और कौरव शान्त नहीं बैठेंगे ॥ १० ॥

तस्माद्गच्छन्तु मे योधा बलेन महता वृताः।
उत्तरस्य परीप्सार्थं ये त्रिगर्तैरविक्षताः ॥ ११ ॥
इसलिए मेरे वे योधा, जो त्रिगर्तोंके साथ हुए युद्धमें घायल नहीं हुए हैं, बहुत भारी सेना लेकर उत्तरकी रक्षाके लिए जायें ॥ ११ ॥

हयांश्च नागांश्च रथांश्च शीघ्रं पदातिसंघांश्च ततः प्रवीरान्।
प्रस्थापयामास सुतस्य हेतोर्विचित्रशस्त्राभरणोपपन्नान् ॥ १२ ॥
राजाने अपने पुत्रकी रक्षाके लिए घोंडे, हाथी, रथ और पदातियोंके झुण्ड अनेक शस्त्र और आभूषणोंको धारण करनेवाले वीरोंको भजा ॥ १२ ॥

एवं स राजा मत्स्यानां विराटोऽक्षौहिणीपतिः ।
व्यादिदेशाथ तां क्षिप्रं वाहिनीं चतुरङ्गिणीम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार अक्षौहिणी सेनाके पति राजा विराटने अपनी चतुरंगिणी सेनाको आज्ञा देकर कहा ॥ १३ ॥

कुमारमाशु जानीत यदि जीवति वा न वा ।
यस्य यन्ता गतः षण्ढो मन्येऽहं न स जीवति ॥ १४ ॥

कि पता लगाओ कि मेरा पुत्र जीता भी है या मर गया ? नपुंसक जिसका सारथी बनकर गया है वह उत्तर अवश्य मर गया होगा, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ १४ ॥

तमब्रवीद्धर्मराजः प्रहस्य विराटमार्तं कुरुभिः प्रतप्तम् ।
बृहन्नडा सारथिश्चेन्नरेन्द्र परे न नेष्यन्ति तवाद्य गास्ताः ॥ १५ ॥

कुरुओंके कारण संतप्त और व्याकुल राजा विराटके ऐसे वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर हंसकर बोले– हे नरनाथ ! जब बृहन्नडा सारथी बनकर गया है, तो फिर आपकी गायें शत्रु नहीं ले जा सकेंगे ॥ १५ ॥

सर्वान्महीपान्सहितान्कुरूंश्च तथैव देवासुरयक्षनागान् ।
अलं विजेतुं समरे सुतस्ते स्वनुष्ठितः सारथिना हि तेन ॥ १६ ॥

आपके पुत्र बृहन्नडा सारथीकी सहायतासे सब राजा, कौरव, देवता, असुर, यक्ष और नागों-को भी युद्धमें जीत सकते हैं ॥ १६ ॥

अथोत्तरेण प्रहिता दूतास्ते शीघ्रगामिनः ।
विराटनगरं प्राप्य जयमावेदयंस्तदा ॥ १७ ॥

इसी बीच उत्तरके भेजे हुए तीव्रगतिवाले दूत राजा विराटके नगर पहुंचे और उन्होंने उत्तरकी बिजयकी घोषणा की ॥ १७ ॥

राज्ञस्ततः समाचख्यौ मन्त्री विजयमुत्तमम् ।
पराजयं कुरूणां चाप्युपायान्तं तथोत्तरम् ॥ १८ ॥

उसी समय मन्त्रीने आकर राजासे उत्तरकी विजय, कौरवोंकी पराजयकी सूचना दी और यह भी कहा कि उत्तर आ रहे हैं ॥ १८ ॥

सर्वा विनिर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।
उत्तरः सह सूतेन कुशली च परन्तपः ॥ १९ ॥

शत्रुनाशक उत्तर कौरवोंको जीतकर और गौओंको छीनकर अपने सारथीके सहित कुशलसे हैं ॥ १९ ॥

कङ्क उवाच

दिष्ट्या ते निर्जिता गावः कुरवश्च पराजिताः ।
दिष्ट्या ते जीवितः पुत्रः श्रूयते पार्थिवर्षभ ॥ २० ॥

कंक बोले— सौभाग्यसे ही आपके पुत्रने गायें जीती हैं। सौभाग्यसे ही कौरवोंको पराजित किया है। हे राजश्रेष्ठ! सौभाग्यसे ही हम अपने पुत्रको जीवित सुन रहे हैं ॥ २० ॥

नाद्भुतं त्वेव मन्येऽहं यत्ते पुत्रोऽजयत्कुरून् ।
ध्रुव एव जयस्तस्य यस्य यन्ता बृहन्नडा ॥ २१ ॥

जो आपके पुत्रने कौरवोंको जीत लिया, उसमें मैं कुछ आश्चर्य नहीं मानता, क्योंकि जिसका बृहन्नडा सारथी हो, उसकी विजय निश्चित ही है ॥ २१ ॥

वैशंपायन उवाच

ततो विराटो नृपतिः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
श्रुत्वा तु विजयं तस्य कुमारस्यामितौजसः ।
आच्छादयित्वा दूतांस्तान्मन्त्रिणः सोऽभ्यचोदयत् ॥ २२ ॥

वैशम्पायन बोले— अत्यन्त तेजस्वी कुमार उत्तरकी उस विजयको सुनकर प्रसन्नताके कारण राजा विराटके रोंगटे खडे हो गए। उसने दूतोंको वस्त्रादियोंसे आच्छादित करके मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥ २२ ॥

राजमार्गाः क्रियन्तां मे पताकाभिरलंकृताः ।
पुष्पोपहारैरर्च्यन्तां देवताश्चापि सर्वशः ॥ २३ ॥

कि मेरे राजमार्गोंको पताकाओंसे सजाया जाये। पुष्पादिकोंसे सब देवताओंकी पूजा हो ॥ २३ ॥

कुमारा योधमुख्याश्च गणिकाश्च स्वलंकृताः ।
वादित्राणि च सर्वाणि प्रत्युद्यान्तु सुतं मम ॥ २४ ॥

राजकुमार, सेनापति और वेश्या अपने अपने आभूषण पहिनकर उत्तरके पास जायें; नगरमें चारों ओर बाजे बजाये जायें ॥ २४ ॥

घण्टापणवकः शीघ्रं मत्तमारुह्य वारणम् ।
शृङ्गाटकेषु सर्वेषु आख्यातु विजयं मम ॥ २५ ॥

एक दूत मतवाले हाथीपर बैठकर सब चौराहोंमें घण्टा बजा कर मेरी विजयका समाचार कह आवे ॥ २५ ॥

उत्तरा च कुमारीभिर्बह्वीभिरभिसंवृता।
शृंगारवेषाभरणा प्रत्युद्यातु बृहन्नडाम् ॥ २६ ॥

उत्तरा अन्य बहुतसी कन्याओंके सहित शृंगार और उत्तम वेष धारण कर बृहन्नडाका स्वागत करे ॥ २६ ॥

श्रुत्वा तु तद्वचनं पार्थिवस्य सर्वे पुनः स्वस्तिकपाणयश्च।
भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च वेषैः परार्ध्यैः प्रमदाः शुभाश्च ॥ २७ ॥

राजाकी आज्ञा सुनतेही सब नगरमें शान्तिपूर्वक कर्म होने लगे। भेरी, शंख और नगाडे बजने लगे। वेश्यायें शृंगार करके नाचने लगीं ॥ २७ ॥

तथैव सूताः सह मागधैश्च नन्दीवाद्याः पणवास्तूर्यवाद्याः।
पुराद्विराटस्य महाबलस्य प्रत्युद्ययुः पुत्रमनन्तवीर्यम् ॥ २८ ॥

और महाबलवान् विराटके सामनेही उत्तरके पास अनेक सूत, मागध और बंदी जाकर तथा पणव तूर्य आदि बाजे बजाकर स्तुति गाने लगे ॥ २८ ॥

प्रस्थाप्य सेनां कन्याश्च गणिकाश्च स्वलंकृताः।
मत्स्यराजो महाप्राज्ञः प्रहृष्ट इदमब्रवीत्।
अक्षानाहर सैरन्ध्रि कङ्क द्यूतं प्रवर्तताम् ॥ २९ ॥

सेना और अलंकृत गणिकाओं और कन्याओंको अपने पुत्रके पास भेजकर बुद्धिमान् राजा विराट प्रसन्न होकर यह बोला– हे सैरन्ध्री ! पांसे ले आ, हे कंक ! जुवा शुरु होने दो ॥ २९ ॥

तं तथा वादिनं दृष्ट्वा पाण्डवः प्रत्यभाषत।
न देवितव्यं हृष्टेन कितवेनेति नः श्रुतम् ॥ ३० ॥

राजाके ऐसे वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिर बोले– हे पृथ्वीनाथ ! हमने सुना है कि प्रसन्न पुरुषको जुवा नहीं खेलना चाहिये ॥ ३० ॥

न त्वामद्य मुदा युक्तमहं देवितुमुत्सहे।
प्रियं तु ते चिकीर्षामि वर्ततां यदि मन्यसे ॥ ३१ ॥

इसलिये मैं आज प्रसन्नतासे युक्त आपको जुवा खिलाना नहीं चाहता। साथही आपका प्रिय भी करना चाहता हूँ। अतः यदि आप कहें तो खेल शुरु हो ॥ ३१ ॥

विराट उवाच

स्त्रियो गावो हिरण्यं च यच्चान्यद्वसु किंचन।
न मे किंचित्त्वया रक्ष्यमन्तरेणापि देवितुम् ॥ ३२ ॥

विराट बोला– स्त्री, गाय, सोना, अथवा इतर जितना भी कुछ धन है, उसमेंसे मेरा कुछ भी नहीं है। द्यूतके बिना भी वह सब कुछ तुम्हारा ही है ॥ ३२ ॥

कंक उवाच

किं ते द्यूतेन राजेन्द्र बहुदोषेण मानद।
देवने बहवो दोषास्तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

कङ्क बोला– हे पृथ्वीनाथ ! जुवेमें अनेक दोष हैं, इसलिये जुवासे आपका क्या प्रयोजन है ? जुवेमें बहुतसे दोष हैं, इसलिए उसे मनुष्य त्याग दे ॥ ३३ ॥

श्रुतस्ते यदि वा दृष्टः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः।
स राज्यं सुमहत्स्फीतं भ्रातॄंश्च त्रिदशोपमान् ॥ ३४ ॥
द्यूते हारितवान्सर्वं तस्माद्द्यूतं न रोचये।
अथवा मन्यसे राजन्दीव्याव यदि रोचते ॥ ३५ ॥

आपने कभी राजा युधिष्ठिरको देखा वा सुना होगा, वे अपने सब राष्ट्रसमेत महान् सम्पन्न राज्यको हार कर देवतुल्य भाईयोंको भी जुवेमें हार गये। इसलिये मुझे जुवा अच्छा नहीं लगता। परन्तु, हे राजन् ! आपकी आज्ञा हो तो खेलें ॥ ३४-३५ ॥

वैशंपायन उवाच

प्रवर्तमाने द्यूते तु मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत्।
पश्य पुत्रेण मे युद्धे तादृशाः कुरवो जिताः ॥ ३६ ॥

वैशम्पायन बोले– जब जुवा होने लगा, तब राजा विराटने महाराज युधिष्ठिरसे कहा– हे कंक ! देखो, मेरे पुत्रने उन जैसे वीर कौरवोंको भी जीत लिया ? ॥ ३६ ॥

ततोऽब्रवीन्मत्स्यराजं धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
बृहन्नडा यस्य यन्ता कथं स न विजेष्यति ॥ ३७ ॥

राजाके वचन सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर मत्स्यराजासे बोले– हे महाराज ! जिसका सारथी साक्षात् बृहन्नडा हो, वह युद्धमें क्यों न जीते ? ॥ ३७ ॥

इत्युक्तः कुपितो राजा मत्स्यः पाण्डवमब्रवीत्।
समं पुत्रेण मे षण्ढं ब्रह्मबन्धो प्रशंससि ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिरके ऐसे वचन सुनकर राजा विराट क्रोधसे बोला– रे ब्राह्मणाधम ! मेरे पुत्रके समान नपुंसक बृहन्नडाको बताता है ॥ ३८ ॥

वाच्यावाच्यं न जानीषे नूनं मामवमन्यसे।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्कस्मान्न स विजेष्यति ॥ ३९ ॥

तू कहने और न कहने योग्य बातें नहीं जानता है; बार बार मेरा निरादर किये जाता है। मेरा पुत्र भीष्म और द्रोणाचार्य आदि सबको कैसे नहीं जीत सकता ? ॥ ३९ ॥

×

वयस्यत्वात्तु ते ब्रह्मन्नपराधमिमं क्षमे ।
नेदृशं ते पुनर्वाच्यं यदि जीवितुमिच्छसि ॥ ४० ॥

हे ब्राह्मण ! मैं तुझे अपना मित्र समझकर यह तेरा अपराध क्षमा करता हूं। यदि तू जीनेकी इच्छा रखता है तो फिर कभी ऐसा वचन मत कहना ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच

यत्र द्रोणस्तथा भीष्मो द्रौणिर्वैकर्तनः कृपः ।
दुर्योधनश्च राजेन्द्र तथान्ये च महारथाः ॥ ४१ ॥

युधिष्ठिर बोले– हे राजेन्द्र ! जहां महापराक्रमी द्रोणाचार्य, भीष्म, अश्वत्थामा सूतपुत्र कर्ण, कृपाचार्य, दुर्योधन तथा अन्य महारथी हों ॥ ४१ ॥

मरुद्गणैः परिवृतः साक्षादपि शतक्रतुः ।
कोऽन्यो बृहन्नडायास्तान्प्रतियुध्येत संगतान् ॥ ४२ ॥

जहां मरुद्गणोंसे घिरकर साक्षात् इंद्र युद्ध करते हों, वहां बृहन्नडाको छोडकर और कौन युद्ध कर सकता है ? ॥ ४२ ॥

विराट उवाच

बहुशः प्रतिषिद्धोऽसि न च वाचं नियच्छसि ।
नियन्ता चेन्न विद्येत न कश्चिद्धर्ममाचरेत् ॥ ४३ ॥

विराट बोले– हमने तुझे कई वार मना किया, परन्तु तू अपने वचनोंको वशमें नहीं रखता। यदि नियन्त्रण करनेवाला न हो तो जगत्में कोई मनुष्य धर्म न करे ? ॥ ४३ ॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रकुपितो राजा तमक्षेणाहनद्भृशम् ।
मुखे युधिष्ठिरं कोपान्नैवमित्येव भर्त्सयन् ॥ ४४ ॥

वैशम्पायन बोले– तदनन्तर राजाने क्रोधित हो करके युधिष्ठिरके मुखपर पांसा मारा और डपटके कहा कि अब ऐसा न कहना ॥ ४४ ॥

बलवत्प्रतिविद्धस्य नस्तः शोणितमागमत् ।
तदप्राप्तं महीं पार्थः पाणिभ्यां प्रत्यगृह्णत ॥ ४५ ॥

जोरसे पांसे मारनेके कारण राजा युधिष्ठिरकी नाकसे रुधिर बहने लगा। पर महाराजने उसे पृथ्वीपर न गिरने दिया, प्रत्युत रुधिरको अपने हाथमें ले लिया ॥ ४५ ॥

अवैक्षत च धर्मात्मा द्रौपदीं पार्श्वतः स्थिताम् ।
सा वेद तमभिप्रायं भर्तुश्चित्तवशानुगा ॥ ४६ ॥

धर्मात्मा युधिष्ठिरने पासमें खडी द्रौपदीकी ओर देखा । अपने पतिके चित्तके अभिप्रायोंको जाननेवाली द्रौपदी उनका अभिप्राय जान गई ॥ ४६ ॥

पूरयित्वा च सौवर्णं पात्रं कांस्यमनिन्दिता ।
तच्छोणितं प्रत्यगृह्णाद्यत्प्रसुस्राव पाण्डवात् ॥ ४७ ॥

अथोत्तरः शुभैर्गन्धैर्माल्यैश्च विविधैस्तथा ।
अवकीर्यमाणः संहृष्टो नगरं स्वैरमागमत् ॥ ४८ ॥

अनिन्दिता द्रौपदी सोनेके बरतनमें पानी ले आई और उसीमें नाकसे बहते हुए रुधिरको ले लिया । उसी समय उत्तर अनेक माला और फूलोंको ग्रहण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने नगरमें आ पहुंचे ॥ ४७-४८ ॥

सभाज्यमानः पौरैश्च स्त्रीभिर्जानपदैस्तथा ।
आसाद्य भवनद्वारं पित्रे स प्रत्यहारयत् ॥ ४९ ॥

पुरवासी, स्त्रियों और पुरुषोंसे सत्कृत होता हुआ उत्तर राजमहलके द्वारपर आया और उत्तरने अपने आनेका समाचार अपने पिताको कहला भेजा ॥ ४९ ॥

ततो द्वाःस्थः प्रविश्यैव विराटमिदमब्रवीत् ।
बृहन्नडासहायस्ते पुत्रो द्वार्युत्तरः स्थितः ॥ ५० ॥

द्वारपालने जाकर विराट राजासे यह कहा कि बृहन्नडाके सहित आपके पुत्र द्वारपर खडे हैं ॥ ५० ॥

ततो हृष्टो मत्स्यराजः क्षत्तारमिदमब्रवीत् ।
प्रवेश्यतामुभौ तूर्णं दर्शनेप्सुरहं तयोः ॥ ५१ ॥

राजाने प्रसन्न होकर द्वारपालसे यह कहा कि उन दोनोंको शीघ्र ले आवो; मैं उन दोनोंको देखना चाहता हूं ॥ ५१ ॥

क्षत्तारं कुरुराजस्तु शनैः कर्ण उपाजपत् ।
उत्तरः प्रविशत्वेको न प्रवेश्या बृहन्नडा ॥ ५२ ॥

तब महाराज युधिष्ठिरने धीरेसे पुरुषके कानमें कह दिया कि केवल उत्तरको भेज दो, बृहन्नडा न आने पावे ॥ ५२ ॥

एतस्य हि महाबाहो व्रतमेतत्समाहितम् ।
यो ममाङ्गे व्रणं कुर्याच्छोणितं वापि दर्शयेत् ।
अन्यत्र संग्रामगतान्न स जीवेदसंशयम् ॥ ५३ ॥

हे महाबाहो ! उस बृहन्नडाकी यह प्रतिज्ञा है कि जो युद्धभूमिको छोडकर और कहीं मेरे शरीरमें घाव करेगा या रुधिर निकालेगा वह किसी भी तरह जीवित नहीं रह सकता ॥५३॥

न मृष्याद्भृशसंक्रुद्धो मां दृष्ट्वैव सशोणितम् ।
विराटमिह सामात्यं हन्यात्सबलवाहनम् ॥ ५४ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ १६९९ ॥

जब वे मेरे शरीरसे रुधिर निकलता देखेंगे तब क्षमा नहीं करेंगे । उसी समय सेना और वाहनोंके सहित राजा विराटको मार डालेंगे ॥ ५४ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें तिरेसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६३ ॥ १६९९ ॥

६४

वैशम्पायन उवाच

ततो राज्ञः सुतो ज्येष्ठः प्राविशत्पृथिवींजयः ।
सोऽभिवाद्य पितुः पादौ धर्मराजमपश्यत ॥ १ ॥

वैशम्पायन बोले– उसी समय राजा विराटका बडा पुत्र पृथिवींजय उत्तर सभामें आया और अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके उसने कंकको देखा ॥ १ ॥

स तं रुधिरसंसिक्तमनेकाग्रमनागसम् ।
भूमावासीनमेकान्ते सैरन्ध्र्या समुपस्थितम् ॥ २ ॥

निरपराध महाराज युधिष्ठिर रुधिरमें भीगे, घबराये हुए और द्रौपदीके सहित एकान्तमें बैठे हुए थे ॥ २ ॥

ततः पप्रच्छ पितरं त्वरमाण इवोत्तरः ।
केनायं ताडितो राजन्केन पापमिदं कृतम् ॥ ३ ॥

यह देखकर उत्तरने झट पिताजीसे पूछा हे राजन् ! इनको किसने मारा है ? यह महापाप किसने किया है ? ॥ ३ ॥

विराट उवाच

मयायं ताडितो जिह्मो न चाप्येनावदर्हति।
प्रशस्यमाने यः शूरे त्वयि षण्ढं प्रशंसति ॥ ४ ॥

विराट बोला– इस पापीको मैंने मारा है, इसे यह दण्ड कम ही है। मैं तुम्हारी प्रशंसा करता था तब यह नपुंसक बृहन्नडाकी प्रशंसा करने लगा ॥ ४ ॥

उत्तर उवाच

अकार्यं ते कृतं राजन्क्षिप्रमेव प्रसाद्यताम्।
मा त्वा ब्रह्मविषं घोरं समूलमपि निर्दहेत् ॥ ५ ॥

उत्तर बोला– हे राजन् ! आपने बहुत बुरा काम किया। आप शीघ्र इनको प्रसन्न करें। कहीं पुत्र और वाहनोंके सहित घोर ब्राह्मण आपका विनाश न कर दे ॥ ५ ॥

वैशम्पायन उवाच

स पुत्रस्य वचः श्रुत्वा विराटो राष्ट्रवर्धनः।
क्षमयामास कौन्तेयं भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले– हे राजन् जनमेजय ! राजा अपने पुत्रके ऐसे वचन सुनकर राखमें छिपी हुई अग्निके समान युधिष्ठिरसे क्षमा मांगने लगे ॥ ६ ॥

क्षमयन्तं तु राजानं पाण्डवः प्रत्यभाषत।
चिरं क्षान्तमिदं राजन्न मन्युर्विद्यते मम ॥ ७ ॥

तब राजा युधिष्ठिरने क्षमायाचना करते हुए राजा विराटसे कहा– हे राजन् ! मैं पहिले ही क्षमा कर चुका हूं। मुझे अब जरा भी क्रोध नहीं है ॥ ७ ॥

यदि ह्येतत्पतेद्भूमौ रुधिरं मम नस्ततः।
सराष्ट्रस्त्वं महाराज विनश्येथा न संशयः ॥ ८ ॥

यदि मेरी नाकसे बहता यह रुधिर पृथ्वीपर गिर जाता, तो आपका राज्यके सहित नाश हो जाता, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥

न दूषयामि ते राजन्यच्च हन्याददूषकम्।
बलवन्तं महाराज क्षिप्रं दारुणमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

हे राजन् ! बलवान् तथा शासन करनेवालेको शीघ्र ही क्रोध आ जाता है। इसलिए वह निरपराधीको भी मार बैठता है। इसलिए, हे राजन् ! मैं आपको दोष नहीं देता ॥ ९ ॥

शोणिते तु व्यतिक्रान्ते प्रविवेश बृहन्नडा ।
अभिवाद्य विराटं च कङ्कं चाप्युपातिष्ठत ॥ १० ॥

जब महाराज युधिष्ठिरका रुधिर सूख गया तब बृहन्नडा राजसभामें आयी। उसने राजा विराटको प्रणाम करके राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया ॥ १० ॥

क्षमयित्वा तु कौरव्यं रणादुत्तरमागतम् ।
प्रशशंस ततो मत्स्यः शृण्वतः सव्यसाचिनः ॥ ११ ॥

उसी समय राजा विराटने बृहन्नडाकी बहुत प्रशंसा की और अर्जुनके सामने ही रणसे आये उत्तरकी प्रशंसा करने लगा ॥ ११ ॥

त्वया दायादवानस्मि कैकेयीनन्दिवर्धन ।
त्वया मे सदृशः पुत्रो न भूतो न भविष्यति ॥ १२ ॥

राजा बोला– हे कैकेयीके आनन्दको बढानेवाले ! तुम्हारे जन्म लेनेसे मैं पुत्रवान् हुआ, तुम्हारे समान न मेरा कोई पुत्र है, और न कोई होगा ॥ १२ ॥

पदं पदसहस्रेण यश्चरन्नापराध्नुयात् ।
तेन कर्णेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ १३ ॥

जो एक समयमें सहस्र स्थानोंमें बाण छोडनेकी इच्छा करता है तथापि उनमेंसे एक भी स्थान ऐसा नहीं रहता कि जो उसके बाणसे विद्ध न हो, ऐसे कर्णसे तुमने कैसे युद्ध किया ? ॥ १३ ॥

मनुष्यलोके सकले यस्य तुल्यो न विद्यते ।
यः समुद्र इवाक्षोभ्यः कालाग्निरिव दुःसहः ।
तेन भीष्मेण ते तात कथमासीत्समागमः ॥ १४ ॥

जो समस्त मनुष्य लोकमें अपने तुल्य वीर नहीं रखते, जो सागर जैसे क्षुब्ध न होनेवाले और प्रलयकालके अग्नि जैसे दुःसह हैं, उन भीष्मसे तुमने कैसे युद्ध किया ? ॥ १४ ॥

आचार्यो वृष्णिवीराणां पाण्डवानां च यो द्विजः ।
सर्वक्षत्रस्य चाचार्यः सर्वशस्त्रभृतां वरः
तेन द्रोणेन ते तात कथमासीत्समागमः । ॥ १५ ॥

द्रोणाचार्य सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा जो वृष्णिवीर, पाण्डव, सब ब्राह्मण और क्षत्रियोंके गुरु हैं, हे तात ! उनसे तुमने किस प्रकार युद्ध किया ? ॥ १५ ॥

आचार्यपुत्रो यः शूरः सर्वशस्त्रभृतामपि ।
अश्वत्थामेति विख्यातः कथं तेन समागमः ॥ १६ ॥

जो सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पुत्र महापराक्रमी अश्वत्थामाके नामसे प्रसिद्ध हैं उनसे तुम्हारा युद्ध कैसा हुआ ? ॥ १६ ॥

रणे यं प्रेक्ष्य सीदन्ति हृतस्वा वणिजो यथा ।
कृपेण तेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ १७ ॥

हे तात ! जिसको देखकर क्षत्रिय सर्वस्व लुटे हुए बनियोंके समान युद्ध छोडकर भाग जाते हैं, उन कृपाचार्यसे तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ ? ॥ १७ ॥

पर्वतं योऽभिविध्येत राजपुत्रो महेषुभिः ।
दुर्योधनेन ते तात कथमासीत्समागमः ॥ १८ ॥

हे तात ! जो राजपुत्र क्रोधित होकर अपने बाणोंसे पर्वतोंको भी तोड सकते हैं, उन दुर्योधनके साथ तुम्हारा युद्ध कैसे हुआ ? ॥ १८ ॥

उत्तर उवाच

न मया निर्जिता गावो न मया निर्जिताः परे ।
कृतं तु कर्म तत्सर्वं देवपुत्रेण केनचित् ॥ १९ ॥

उत्तर बोला– मैंने गौओंको नहीं जीता । मैंने कौरवोंसे युद्ध नहीं किया । ये सब कर्म किसी देवपुत्रने किये हैं ॥ १९ ॥

स हि भीतं द्रवन्तं मां देवपुत्रो न्यवारयत् ।
स चातिष्ठद्रथोपस्थे वज्रहस्तनिभो युवा ॥ २० ॥

जब मैं युद्धसे डरकर भागने लगा, तब उस देवपुत्रने मुझे रोका । और वह तरुण देवपुत्र स्वयं रथके अन्दरके भागमें बैठ गया ॥ २० ॥

तेन ता निर्जिता गावस्तेन ते कुरवो जिताः ।
तस्य तत्कर्म वीरस्य न मया तात तत्कृतम् ॥ २१ ॥

हे तात ! उसीने कौरवोंको जीत कर गौयें छीनी, उसी वीरने युद्ध किया है, मैंने नहीं किया ॥ २१ ॥

स हि शारद्वतं द्रोणं द्रोणपुत्रं च वीर्यवान् ।
सूतपुत्रं च भीष्मं च चकार विमुखाञ्शरैः ॥ २२ ॥

उसी वीरने अपने बाणोंसे कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण और भीष्मके मुँह फेर दिये ॥ २२ ॥

दुर्योधनं च समरे सनागमिव यूथपम् ।
प्रभग्नमब्रवीद्भीतं राजपुत्रं महाबलम् ॥ २३ ॥

जिस समय युद्धमें उसके आगेसे मतवाले हाथीके समान दुर्योधन और महाबलवान् विकर्ण डर कर भागे, तब उसने कहा ॥ २३ ॥

न ह्यास्तिनपुरे त्राणं तव पश्यामि किंचन ।
व्यायामेन परीप्सस्व जीवितं कौरवात्मज ॥ २४ ॥

कि तुम हस्तिनापुरमें रहकर भी हमसे जीते नहीं बचोगे; इसलिये, हे कुरुपुत्र ! अब तो पराक्रम दिखाकर ही अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ २४ ॥

न मोक्ष्यसे पलायंस्त्वं राजन्युद्धे मनः कुरु ।
पृथिवीं भोक्ष्यसे जित्वा हतो वा स्वर्गमाप्स्यसि ॥ २५ ॥

हे राजन् । तुम भागकर जीते नहीं बचोगे, इसलिये युद्ध करो । यदि हमको जीत लोगे तो पृथ्वीका राज्य करोगे और जो मर जाओगे तो स्वर्ग पाओगे ॥ २५ ॥

स निवृत्तो नरव्याघ्रो मुञ्चन्वज्रनिभाञ्शरान् ।
सचिवैः संवृतो राजा रथे नाग इव श्वसन् ॥ २६ ॥

परन्तु राजा दुर्योधन उनके वचन सुनकर विषैले सांपके समान सांस लेते हुए और वज्रके समान बाण छोडते हुए मन्त्रियोंके सहित युद्धसे भाग गया ॥ २६ ॥

तत्र मे रोमहर्षोऽभूदूरुस्तम्भश्च मारिष ।
यदभ्रघनसंकाशमनीकं व्यधमच्छरैः ॥ २७ ॥

हे शत्रुनाशन ! उस देवपुत्रके देखनेसे मेरे रोवें खडे हो गये और मेरे पैर भी स्थिर हो गए फिर उस देवपुत्रने बादलोंके समान अपने बाणोंसे उस महासेनाको व्याकुल कर दिया ॥२७॥

तत्प्रणुद्य रथानीकं सिंहसंहननो युवा ।
कुरूंस्तान्प्रहसन्राजन्वासांस्यपहरद्बली ॥ २८ ॥

सिंहके समान तरुण बलवान् देवपुत्रने रथकी सेनाको तथा उन कौरवोंको जीतकर हंसते हुए कौरवोंके वस्त्र उतार लिये ॥ २८ ॥

एकेन तेन वीरेण षड्रथाः परिवारिताः ।
शार्दूलेनेव मत्तेन मृगास्तृणचरा वने ॥ २९ ॥

उस एक वीरने छः महारथियोंको इस प्रकार जीत लिया, जैसे मतवाला शार्दूल वनमें रहकर घास खानेवाले हरिणोंको जीत लेता है ॥ २९ ॥

विराट उवाच

क स वीरो महाबाहुर्देवपुत्रो महायशाः ।
यो मे धनमवाजैषीत्कुरुभिर्ग्रस्तमाहवे ॥ ३० ॥

विराट बोले– हे पुत्र ! जिस महात्माने युद्धमें कौरवोंसे हमारा धन छुडाया है, वह महायशस्वी महाबाहु वीर देवपुत्र कहां है ? ॥ ३० ॥

इच्छामि तमहं द्रष्टुमर्चितुं च महाबलम् ।
येन मे त्वं च गावश्च रक्षिता देवसूनुना ॥ ३१ ॥

मैं उस महापराक्रमी देवपुत्रको देखना और पूजना चाहता हूं, क्योंकि उसीने तुम्हारी और गौओंकी रक्षा की है ॥ ३१ ॥

उत्तर उवाच

अन्तर्धानं गतस्तात देवपुत्रः प्रतापवान् ।
स तु श्वो वा परश्वो वा मन्ये प्रादुर्भविष्यति ॥ ३२ ॥

उत्तर बोला— युद्धके पश्चात् वह महाप्रतापी देवपुत्र अन्तर्धान हो गया । मुझे निश्चय है कि कल या परसों वह प्रत्यक्ष होगा ॥ ३२ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवमाख्यायमानं तु छन्नं सत्रेण पाण्डवम् ।
वसन्तं तत्र नाज्ञासीद्विराटः पार्थमर्जुनम् ॥ ३३ ॥

वैशम्पायन बोले— उत्तरके ऐसे वचन सुनकर भी राजा विराटने छिपकर वहाँ रहते हुए पाण्डव अर्जुनको न जाना ॥ ३३ ॥

ततः पार्थोऽभ्यनुज्ञातो विराटेन महात्मना ।
प्रददौ तानि वासांसि विराटदुहितुः स्वयम् ॥ ३४ ॥

तब स्वयं अर्जुनने महात्मा राजाकी आज्ञा पाकर वे सब वस्त्र विराटकी पुत्री उत्तराको दे दिये ॥ ३४ ॥

उत्तरा तु महार्हाणि विविधानि तनूनि च ।
प्रतिगृह्याभवत्प्रीता तानि वासांसि भामिनी ॥ ३५ ॥

उत्तरा उन नवीन, महीन और महामूल्य वस्त्रोंको पाकर बहुत प्रसन्न हुई ॥ ३५ ॥

मन्त्रयित्वा तु कौन्तेय उत्तरेण रहस्तदा ।
इतिकर्तव्यतां सर्वां राजन्यथ युधिष्ठिरे ॥ ३६ ॥

तदनन्तर अर्जुनने उत्तरसे एकान्तमें सम्मति करके राजा युधिष्ठिरके निमित्त सब प्रबन्ध कर लिया ॥ ३६ ॥

ततस्तथा तद्व्यदधाद्यथावत्पुरुषर्षभ ।
सह पुत्रेण मत्स्यस्य प्रहृष्टो भरतर्षभः ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ १७३६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! उस समय जो करनेके योग्य था वह सब करके भरतकुल श्रेष्ठ पांडव विराट पुत्र उत्तरके साथ प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें चौसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६४ ॥ १७३६ ॥

: ६५ :

वैशम्पायन उवाच

ततस्तृतीये दिवसे भ्रातरः पञ्च पाण्डवाः।
स्नाताः शुक्लाम्बरधराः समये चरितव्रताः ॥ १ ॥
युधिष्ठिरं पुरस्कृत्य सर्वाभरणभूषिताः।
अभिपद्मा यथा नागा भ्राजमाना महारथाः ॥ २ ॥

वैशम्पायन बोले— तीसरे दिन पांचों भाई पाण्डवोंने अपने समयको समाप्त जानकर, स्नान किया और सफेद वस्त्र तथा सब आभूषण पहनकर, मतवाले हाथीके समान तेजस्वी और प्रकाशित होते हुए राजा विराटकी सभामें गए ॥ १-२ ॥

विराटस्य सभां गत्वा भूमिपालासनेष्वथ।
निषेदुः पावकप्रख्याः सर्वे धिष्ण्येष्विवाग्नयः ॥ ३ ॥

विराटकी सभामें आकर महाराज युधिष्ठिर राजाके सिंहासनपर बैठ गये; और चारों पाण्डव यथा योग्य आसनोंपर बैठे। उस समय पाण्डवोंकी ऐसी शोभा बढी, जैसी जलती हुई अग्निकी होती है ॥ ॥३ ॥

तेषु तत्रोपविष्टेषु विराटः पृथिवीपतिः।
आजगाम सभां कर्तुं राजकार्याणि सर्वशः ॥ ४ ॥

उन पाण्डवोंके वहां बैठ जानेपर राजा विराट भी अपने राजकार्य करने सभामें आया ॥ ४ ॥

श्रीमतः पाण्डवान्दृष्ट्वा ज्वलतः पावकानिव।
अथ मत्स्योऽब्रवीत्कङ्कं देवरूपमवस्थितम्।
मरुद्गणैरुपासीनं त्रिदशानामिवेश्वरम् ॥ ५ ॥

वहां जलती हुई अग्निके समान पाण्डवोंको बैठेदेखा। मरुद्गणोंसे घिरे हुए देवेन्द्रके समान बैठे हुए देवरूप कंकसे मत्स्यराज बोला ॥ ५ ॥

स किलाक्षातिवापस्त्वं सभास्तारो मया कृतः।
अथ राजासने कस्मादुपविष्टोऽस्यलंकृतः ॥ ६ ॥

हे कंक ! मैंने तुमको जुवा खिलानेके लिये अपना सभासद् बनाया था, आज तुम राजाके वस्त्र पहनकर मेरे सिंहासनपर क्यों बैठे हो ? ॥ ६ ॥

परिहासेप्सया वाक्यं विराटस्य निशम्य तत्।
स्मयमानोऽर्जुनो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

हे राजन् ! विराटके ऐसे वचन सुनकर परिहास करनेकी इच्छासे अर्जुन हंसके यह वचन बोले ॥ ७ ॥

इन्द्रस्याप्यासनं राजन्नयमारोढुमर्हति ।
ब्रह्मण्यः श्रुतवांस्त्यागी यज्ञशीलो दृढव्रतः ॥ ८ ॥

हे राजन् ! ये इन्द्रके भी आधे आसन पर बैठ सकते हैं । ये ब्राह्मणोंके भक्त, पण्डित, त्यागी योग्य, यज्ञ करनेवाले, महाव्रतधारी हैं ॥ ८ ॥

अयं कुरूणामृषभः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अस्य कीर्तिः स्थिता लोके सूर्यस्येवोद्यतः प्रभा ॥ ९ ॥

येही कुरुकुलसिंह साक्षात् कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं । इनका यश लोकमें उदय होते हुए सूर्यके तेजके समान फैला हुआ है ॥ ९ ॥

संसरन्ति दिशः सर्वा यशसोऽस्य गभस्तयः ।
उदितस्येव सूर्यस्य तेजसोऽनु गभस्तयः ॥ १० ॥

इनके यशकी किरणें जगत्में इस प्रकार फैल रही हैं, जैसे उदय होते हुए सूर्यके तेजकी किरणें फैलती हैं ॥ १० ॥

एनं दश सहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
अन्वयुः पृष्ठतो राजन्यावदध्यावसत्कुरून् ॥ ११ ॥

हे राजन् ! जब ये कौरवों पर शासन करते थे, तब इनके पीछे महाबलशाली दस हजार हाथी चलते थे ॥ ११ ॥

त्रिंशदेनं सहस्राणि रथाः काञ्चनमालिनः ।
सदश्वैरुपसंपन्नाः पृष्ठतोऽनुययुः सदा ॥ १२ ॥

इनके पीछे उस समय दश सहस्र सुवर्ण मालाधारी घोड़ोंसे युक्त रथ चलते थे ॥ १२ ॥

एनमष्टशताः सूताः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ।
अस्तुवन्मागधैः सार्धं पुरा शक्रमिवर्षयः ॥ १३ ॥

इनकी स्तुति मणि-कुण्डलधारी आठ सौ सूत और मागध इस प्रकार करते थे, जैसे ऋषि इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

एनं नित्यमुपासन्त कुरवः किंकरा यथा ।
सर्वे च राजन्राजानो धनेश्वरमिवामराः ॥ १४ ॥

सब कौरव इनके दासके समान रहते थे । हे राजन् ! सब राजा इनकी इस प्रकार सेवा करते थे, जैसे देवता कुबेरकी सेवा करते हैं ॥ १४ ॥

एष सर्वान्महीपालान्करमाहारयत्तदा ।
वैश्यानिव महाराज विवशान्स्ववशानपि ॥ १५ ॥

हे महाराज ! इन्होंने समस्त स्वतन्त्र राजाओंसे कर लेकर उनको बनियोंके समान पराधीन बना दिया था ॥ १५ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां महात्मनाम् ।
उपजीवन्ति राजानमेनं सुचरितव्रतम् ॥ १६ ॥

इन महाव्रतधारीके घरमें प्रति दिन अठासी सहस्र महात्मा वेदपाठी ब्राह्मण भोजन करते थे ॥ १३ ॥

एष वृद्धाननाथांश्च व्यङ्गान्पङ्गूंश्च मानवान् ।
पुत्रवत्पालयामास प्रजा धर्मेण चाभिभो ॥ १७ ॥

हे राजन् ! ये धर्मराज बूढे, अनाथ, लंगडे और अन्धे मनुष्योंको पुत्रके समान धर्मपूर्वक पालते थे ॥ १७ ॥

एष धर्मे दमे चैव क्रोधे चापि यतव्रतः ।
महाप्रसादो ब्रह्मण्यः सत्यवादी च पार्थिवः ॥ १८ ॥

ये धर्मात्मा इन्द्रियजित् हैं; क्रोधमें भी अपने धर्मको नहीं छोडते, ये शीघ्र प्रसन्न होते हैं; ये ब्राह्मणोंके भक्त और सत्यवादी हैं ॥ १८ ॥

श्रीप्रतापेन चैतस्य तप्यते स सुयोधनः ।
सगणः सह कर्णेन सौबलेनापि वा विभुः ॥ १९ ॥

इन्हींके भयसे राजा दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और मन्त्रियोंके सहित कांपता रहता है ॥ १९ ॥

न शक्यन्ते ह्यस्य गुणाः प्रसंख्यातुं नरेश्वर ।
एष धर्मपरो नित्यमानृशंस्यश्च पाण्डवः ॥ २० ॥

हे राजन् ! इनके गुण वर्णन करनेकी हममें शक्ति नहीं है। येही साक्षात् धर्मात्मा पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर हैं ॥ २० ॥

एवंयुक्तो महाराजः पाण्डवः पार्थिवर्षभः ।
कथं नार्हति राजार्हमासनं पृथिवीपतिः ॥ २१ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वाणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ १७५७ ॥

इन गुणोंसे युक्त ये राजसिंह पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर राजाके आसनपर क्यों नहीं बैठ सकते ? ॥ २१ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें पैंसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६५ ॥ १७५७ ॥

: ६६ :

विराट उवाच

यद्येष राजा कौरव्यः कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कतमोऽस्यार्जुनो भ्राता भीमश्च कतमो बली ॥ १ ॥

नकुलः सहदेवो वा द्रौपदी वा यशस्विनी ।
यदा द्यूते जिताः पार्था न प्राज्ञायन्त ते क्वचित् ॥ २ ॥

विराट बोले– यदि ये ही कुरुकुल श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर हैं तो इनके भाई अर्जुन कौन हैं ? बलवान् भीम कौन हैं ? नकुल, सहदेव और यशस्विनी द्रौपदी कहां हैं ? जबसे पाण्डव जुवेमें हार गये हैं, तबसे न जाने किधर गये ? ॥ १-२ ॥

अर्जुन उवाच

य एष बल्लवो ब्रूते सूदस्तव नराधिप ।
एष भीमो महाबाहुर्भीमवेगपराक्रमः ॥ ३ ॥

अर्जुन बोले– हे राजन् ! तुम्हारे यहां ये जो बल्लव नामक रसोइया हैं, वही महापराक्रमी महाबाहु भीमसेन हैं ॥ ३ ॥

एष क्रोधवशान्हत्वा पर्वते गन्धमादने ।
सौगन्धिकानि दिव्यानि कृष्णार्थे समुपाहरत् ॥ ४ ॥

ये ही गन्धमादन पर्वतपर अनेक क्रोधवश नामक राक्षसोंको मार कर द्रौपदीके लिये कमलके फूल लाये थे ॥ ४ ॥

गन्धर्व एष वै हन्ता कीचकानां दुरात्मनाम् ।
व्याघ्रानृक्षान्वराहांश्च हतवान्स्त्रीपुरे नव ॥ ५ ॥

इन्होंनेही गन्धर्वका रूप धारण करके दुरात्मा कीचकोंका नाश किया था। इन्होंने तुम्हारे अन्तःपुरमें अनेक सिंह, रीछ और बराहोंको मारा था ॥ ५ ॥

यश्चासीदश्वबन्धस्ते नकुलोऽयं परन्तपः ।
गोसंख्यः सहदेवश्च माद्रीपुत्रौ महारथौ ॥ ६ ॥

ये जो तुम्हारे यहां घोडोंकी रक्षा करते थे, ये ही शत्रुनाशक नकुल हैं। जो तुम्हारी गौओंके गिननेका कार्य करते थे, ये ही माद्रीपुत्र सहदेव हैं ॥ ६ ॥

शृङ्गारवेषाभरणौ रूपवन्तौ यशस्विनौ ।
नानारथसहस्राणां समर्थौ पुरुषर्षभौ ॥ ७ ॥

ये दोनों पुरुषश्रेष्ठ महायशस्वी, महासुन्दर, शृंगारधारी वीर एक सहस्र महारथियोंसे युद्ध कर सकते हैं ॥ ७ ॥

एषा पद्मपलाशाक्षी सुमध्या चारुहासिनी ।
सैरन्ध्री द्रौपदी राजन्यत्कृते कीचका हताः ॥ ८ ॥

ये राजन् ! ये कमलनयनी पतली कमरवाली चारुहासिनी सुन्दरी सैरन्ध्री ही द्रौपदी है जिसके कारण कीचक मारे गये ॥ ८ ॥

अर्जुनोऽहं महाराज व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः ।
भीमादवरजः पार्थो यमाभ्यां चापि पूर्वजः ॥ ९ ॥

हे महाराज ! आप जिसका नाम सुनते थे, वह अर्जुन मैं ही हूं। मैं भीमसे छोटा तथा नकुल और सहदेवसे बडा पाण्डुपुत्र हूं ॥ ९ ॥

उषिताः स्म महाराज सुखं तव निवेशने।
अज्ञातवासमुषिता गर्भवास इव प्रजाः ॥ १० ॥

हे महाराज! हम लोग आपके घरमें इस प्रकार सुखसे छिपकर रहे हैं जैसे बालक गर्भमें रहते हैं ॥ १० ॥

वैशम्पायन उवाच

यदार्जुनेन ते वीराः कथिताः पञ्च पाण्डवाः।
तदार्जुनस्य वैराटिः कथयामास विक्रमम् ॥ ११ ॥

वैशम्पायन बोले– जब अर्जुन पांचों पाण्डवोंके विषयमें कह कर चुप हो गये, तब विराटपुत्र उत्तरने अर्जुनके पराक्रमकी कहानी सुनाई ॥ ११ ॥

अयं स द्विषतां मध्ये मृगाणामिव केसरी।
अचरद्रथवृन्देषु निघ्नंस्तेषां वरान्वरान् ॥ १२ ॥

इन्होंने उस कौरवोंकी सेनाका इस प्रकार नाश किया था, जैसे सिंह हरिणोंका नाश करता है। ये ही शत्रुनाशक अर्जुन उस सेनामेंसे मुख्य मुख्य वीरोंको मारते हुए रथ पर चढकर घूमते थे ॥ १२ ॥

अनेन विद्धो मातङ्गो महानेकेषुणा हतः।
हिरण्यकक्ष्यः संग्रामे दन्ताभ्यामगमन्महीम् ॥ १३ ॥

इन्होंने एकही बाणसे मतवाला हाथी मार कर पृथ्वीपर गिरा दिया था और वह हाथी अपने दोनों दांतोंके बल पृथ्वी पर जा गिरा था ॥ १३ ॥

अनेन विजिता गावो जिताश्च कुरवो युधि।
अस्य शङ्खप्रणादेन कर्णौ मे बधिरीकृतौ ॥ १४ ॥

इन्होंने युद्धमें हा कौरवोंको जीतकर गौओंको छीना है। इनके शंखके शब्दको सुनकर मेरे कान बहरे हो गये थे ॥ १४ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मत्स्यराजः प्रतापवान्।
उत्तरं प्रत्युवाचेदमभिपन्नो युधिष्ठिरे ॥ १५ ॥

उत्तरके ऐसे वचन सुनकर प्रतापवान् राजा विराट उत्तरसे बोले– हमने राजा युधिष्ठिरका बहुत अपराध किया है ॥ १५ ॥

प्रसादनं पाण्डवस्य प्राप्तकालं हि रोचये।
उत्तरां च प्रयच्छामि पार्थाय यदि ते मतम् ॥ १६ ॥

इसलिये पाण्डवोंको प्रसन्न करना ही मैं अच्छा समझता हूँ। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं अर्जुनके साथ उत्तराका विवाह कर दूं ॥ १६ ॥

उत्तर उवाच

अर्च्याः पूज्याश्च मान्याश्च प्राप्तकालं च मे मतम् ।
पूज्यन्तां पूजनार्हाश्च महाभागाश्च पाण्डवाः ॥ १७ ॥

उत्तर बोला– मेरी समझमें पाण्डव महात्मा, पूजाके योग्य और माननीय हैं। आप इनको जैसे चाहें वैसेही प्रसन्न कर लीजिये ॥१७॥

विराट उवाच

अहं खल्वपि संग्रामे शत्रूणां वशमागतः ।
मोक्षितो भीमसेनेन गावश्च विजितास्तथा ॥ १८ ॥

विराट बोला– मुझे भी युद्धमें शत्रुओंने पकड लिया था, परन्तु भीमसेनने छुडाया था और उनसे गौएं भी छीन ली थीं ॥१८॥

एतेषां बाहुवीर्येण यदस्माकं जयो मृधे ।
वयं सर्वे सहामात्याः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
प्रसादयामो भद्रं ते सानुजं पाण्डवर्षभम् ॥ १९ ॥

इन्हींके बाहुबलसे युद्धमें हमारी विजय हुई है। आपका कल्याण हो। हम सब अपने मंत्रियोंके साथ भाइयों सहित पाण्डवश्रेष्ठ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरको प्रसन्न करते हैं ॥ १९ ॥

यदस्माभिरजानद्भिः किंचिदुक्तो नराधिपः ।
क्षन्तुमर्हति तत्सर्वं धर्मात्मा ह्येष पाण्डवः ॥ २० ॥

हमने जो कुछ विना जाने आपका अपराध किया हो वह ये राजा युधिष्ठिर क्षमा कर सकते हैं, क्योंकि ये पाण्डुपुत्र धर्मात्मा हैं ॥ २० ॥

वैशम्पायन उवाच

ततो विराटः परमाभितुष्टः समेत्य राज्ञा समयं चकार ।
राज्यं च सर्वं विससर्ज तस्मै सदण्डकोशं सपुरं महात्मा ॥ २१ ॥

वैशम्पायन बोले– महात्मा विराटने ऐसा कह कर राजा युधिष्ठिरसे विचार विमर्श किया और दण्ड, धन, नगर सहित अपना सब राज्य महाराज युधिष्ठिरको दे दिया ॥ २१ ॥

पाण्डवांश्च ततः सर्वान्मत्स्यराजः प्रतापवान् ।
धनंजयं पुरस्कृत्य दिष्ट्या दिष्ट्येति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

तब वह प्रतापशाली विराट राजा सब पाण्डवोंको विशेष करके अर्जुनको लक्ष्य करके बोला मैं कितना भाग्यवान् हूँ। मैं कितना भाग्यवान् हूँ ॥ २२ ॥

समुपाघ्राय मूर्धानं संश्लिष्य च पुनः पुनः ।
युधिष्ठिरं च भीमं च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ २३ ॥
नातृप्यद्दर्शने तेषां विराटो वाहिनीपतिः ।
संप्रीयमाणो राजानं युधिष्ठिरमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥

फिर युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे मिले और उनका शिर सूंघा । महासेनाके स्वामी राजा विराट उनके दर्शनसे तृप्त न हुए । तदनन्तर राजा विराट प्रसन्न होकर महाराज युधिष्ठिरसे बोले ॥ २३-२४ ॥

दिष्ट्या भवन्तः संप्राप्ताः सर्वे कुशलिनो वनात् ।
दिष्ट्या च पारितं कृच्छ्रमज्ञातं वै दुरात्मभिः ॥ २५ ॥

आप सब लोग सौभाग्यसे वनसे कुशल पूर्वक यहां आए । सौभाग्यहीसे उन दुष्टोंसे छिपकर आपने यहां निवास किया है ॥ २५ ॥

इदं च राज्यं नः पार्था यच्चान्यद्वसु किंचन ।
प्रतिगृह्णन्तु तत्सर्वं कौन्तेया अविशङ्कया ॥ २६ ॥

हे कुन्तीपुत्रो ! यह राज्य तथा और भी जो कुछ धन है, उन्हें, हे कुन्तीपुत्रो ! आप बिना किसी शंकाके स्वीकार करें ॥ २६ ॥

उत्तरां प्रतिगृह्णातु सव्यसाची धनंजयः ।
अयं ह्यौपयिको भर्ता तस्याः पुरुषसत्तमः ॥ २७ ॥

सव्यसाची अर्जुन उत्तराको स्वीकार करें, क्योंकि ये पुरुषश्रेष्ठ उत्तराके योग्य तथा समान पति होंगे ॥ २७ ॥

एवमुक्तो धर्मराजः पार्थमैक्षद्धनंजयम् ।
ईक्षितश्चार्जुनो भ्रात्रा मत्स्यं वचनमब्रवीत् ॥ २८ ॥

विराटके ऐसे वचन सुनकर महाराज धर्मराजने अर्जुनकी ओर देखा । महाराजके देखने पर अर्जुन विराटसे बोले ॥ २८ ॥

प्रतिगृह्णाम्यहं राजन्स्नुषां दुहितरं तव ।
युक्तश्चावां हि संबन्धो मत्स्यभारतसत्तमौ ॥ २९ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ १७८६ ॥

हे राजन् ! आपका और महाराजका सम्बन्ध होना ही उचित है, क्योंकि आप मत्स्य और महाराज भरतवंशी हैं; मैं आपकी पुत्रीको अपनी पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार कर सकूंगा ॥ २९ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सासठवां अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥ १७८६ ॥

: ६७ :

विराट उवाच

किमर्थं पाण्डवश्रेष्ठ भार्यां दुहितरं मम ।
प्रतिग्रहीतुं नेमां त्वं मया दत्तामिहेच्छसि ॥ १ ॥

विराटने पूछा– हे पाण्डवश्रेष्ठ ! स्वयं मेरे द्वारा दी जाती हुई मेरी इस पुत्रीको तुम अपनी पत्नीके रूपमें क्यों नहीं स्वीकार करना चाहते ? ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच

अन्तःपुरेऽहमुषितः सदा पश्यन्सुतां तव ।
रहस्यं च प्रकाशं च विश्वस्ता पितृवन्मयि ॥ २ ॥

अर्जुन बोले– हे राजन् ! मैं तुम्हारे रनवासमें एक वर्षतक रहा हूँ । तुम्हारी पुत्रीके सब प्रगट और गुप्त भावोंको जानता हूँ, और वह भी मुझपर पिताके समान विश्वास करती रही है ॥ २ ॥

प्रियो बहुमतश्चाहं नर्तको गीतकोविदः ।
आचार्यवच्च मां नित्यं मन्यते दुहिता तव ॥ ३ ॥

गायनकलामें अत्यन्त निपुण मैं उसके नृत्यका शिक्षक रहा हूँ । इसलिए तुम्हारी कन्याका मुझपर अत्यन्त प्रेम रहा है । वह भी मुझे गुरुके रूपमें मानती रही है ॥ ३ ॥

वयःस्थया तया राजन्सह संवत्सरोषितः ।
अतिशंका भवेत्स्थाने तव लोकस्य चाभिभो ॥ ४ ॥

हे राजन् ! युवावस्थामें आई हुई तुम्हारी कन्याके साथ मैं एक वर्षतक रहा हूँ । इसलिए (यदि मैं तुम्हारी कन्याको भार्याके रूपमें स्वीकार कर लूं तो) तुम्हारे मनमें अथवा लोगोंके मनोंमें भी बुरी शंका पैदा हो जाएगी ॥ ४ ॥

तस्मान्निमन्त्रये त्वाहं दुहितुः पृथिवीपते ।
शुद्धो जितेन्द्रियो दान्तस्तस्याः शुद्धिः कृता मया ॥ ५ ॥

इसीलिए, हे राजन् ! मैं तुम्हारी पुत्रीको अपनी पुत्रवधूके रूपमें मांगता हूँ । इस प्रकार करनेसे मैं भी शुद्ध, जितेन्द्रिय और पवित्र सिद्ध हो सकूंगा और तुम्हारी पुत्रीके चरित्रको भी पवित्र सिद्ध कर सकूंगा ॥ ५ ॥

स्नुषाया दुहितुर्वापि पुत्रे चात्मनि वा पुनः ।
अत्र शङ्कां न पश्यामि तेन शुद्धिर्भविष्यति ॥ ६ ॥

पुत्र और पितामें तथा स्नुषा और दुहितामें कुछ भेद नहीं होता, इस सम्बन्धमें मैं किसी तरहकी शंका भी नहीं देखता । इस सम्बन्धसे दोनों कुलोंकी पवित्रता सिद्ध हो जाएगी ॥६॥

अभिषङ्गादहं भीतो मिथ्याचारात्परंतप।
स्नुषार्थमुत्तरां राजन्प्रतिगृह्णामि ते सुताम् ॥ ७ ॥

हे शत्रुनाशन ! मैं अपयश और मिथ्याचारसे बहुत डरता हूं। इसलिए, हे राजन् ! आपकी पुत्री उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करूंगा ॥ ७ ॥

स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षाद्देवशिशुर्यथा।
दयितश्चक्रहस्तस्य बाल एवास्त्रकोविदः ॥ ८ ॥

मेरा पुत्र चक्रधारी कृष्णका भानजा मानो साक्षात् देवपुत्र है और कृष्णका बहुत प्यारा तथा सब अस्त्रोंको जाननेवाला है ॥ ८ ॥

अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशां पते।
जामाता तव युक्तो वै भर्ता च दुहितुस्तव ॥ ९ ॥

हे राजन् ! अभिमन्यु नामक मेरा महाबाहु पुत्र तुम्हारा दामाद और तुम्हारी पुत्री उत्तराका पति होने योग्य है ॥ ९ ॥

विराट उवाच

उपपन्नं कुरुश्रेष्ठे कुन्तीपुत्रे धनञ्जये।
य एवं धर्मनित्यश्च जातज्ञानश्च पाण्डवः ॥ १० ॥

विराट बोला– कुरुओंमें श्रेष्ठ कुन्तीपुत्र धनञ्जय अर्जुनके यह योग्य ही है। पाण्डुपुत्र अर्जुन ही इस तरह धर्मपरायण और ज्ञानी हो सकते हैं ॥ १० ॥

यत्कृत्यं मन्यसे पार्थ क्रियतां तदनन्तरम्।
सर्वे कामाः समृद्धा मे सम्बन्धी यस्य मेऽर्जुनः ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसे ही करो। अर्जुन जिसके सम्बन्धी हैं, उस मेरे सब मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे ॥ ११ ॥

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्रे कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
अन्वजानात्स संयोगं समये मत्स्यपार्थयोः ॥ १२ ॥

वैशम्पायन बोले– अर्जुन और विराटके ऐसे वचन सुनकर महाराज युधिष्ठिरने भी इस विवाहको स्वीकार कर लिया ॥ १२ ॥

ततो मित्रेषु सर्वेषु वासुदेवे च भारत।
प्रेषयामास कौन्तेयो विराटश्च महीपतिः ॥ १३ ॥

हे भारत ! उसी समय विराट और धर्मराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्ण और अपने अपने सम्बधियोंके पास दूत भेजे ॥ १३ ॥

ततस्त्रयोदशे वर्षे निवृत्ते पञ्च पाण्डवाः ।
उपप्लव्ये विराटस्य समपद्यन्त सर्वशः ॥ १४ ॥

और अज्ञातवास समाप्त होनेपर पाण्डव द्रौपदीके सहित विराट नगरके समीप ही उपप्लव्य नामक नगरमें जा बसे ॥ १४ ॥

तस्मिन्वसंश्च बीभत्सुरानिनाय जनार्दनम् ।
आनर्तेभ्योऽपि दाशार्हानभिमन्युं च पाण्डवः ॥ १५ ॥

वहां रहते हुए अर्जुनने अभिमन्यु और श्रीकृष्णके सहित सब यादवोंको द्वारिकासे बुला भेजा। वे लोग सुनते ही विराटनगरमें पहुंच गये ॥ १५ ॥

काशिराजश्च शैब्यश्च प्रीयमाणौ युधिष्ठिरे ।
अक्षौहिणीभ्यां सहितावागतौ पृथिवीपते ॥ १६ ॥

हे राजन् ! इस समाचारके सुनते ही काशीके राजा और राजा शैब्य एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर प्रसन्न होते हुए महाराज युधिष्ठिरके पास आये ॥ १६ ॥

अक्षौहिण्या च तेजस्वी यज्ञसेनो महाबलः ।
द्रौपद्याश्च सुता वीराः शिखण्डी चापराजितः ॥ १७ ॥

उसी समय महावीर द्रौपदीके पांचों पुत्र और महापराक्रमी शिखण्डीको लेकर एक अक्षौहिणी सेनाके सङ्ग महापराक्रमी धृष्टद्युम्न विराटनगरमें पहुंचे ॥ १७ ॥

धृष्टद्युम्नश्च दुर्धर्षः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
समस्ताक्षौहिणीपाला यज्वानो भूरिदक्षिणाः ।
सर्वे शस्त्रास्त्रसम्पन्नाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः ॥ १८ ॥

सब शस्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, महावीर धृष्टद्युम्नके सङ्ग, अनेक वेदपाठी, महाशूरवीर, युद्धमें मरनेकी इच्छावाले दानी अनेक सेनापति क्षत्रिय भी आये ॥ १८ ॥

तानागतानभिप्रेक्ष्य मत्स्यो धर्मभृतां वरः ।
प्रीतोऽभवद्दुहितरं दत्त्वा तामभिमन्यवे ॥ १९ ॥

उनको आया देखकर और अभिमन्युके साथ अपनी पुत्रीका विवाह करके धार्मिकोंमें श्रेष्ठ मत्स्यराज विराट बहुत प्रसन्न हुए ॥ १९ ॥

ततः प्रत्युपयातेषु पार्थिवेषु ततस्ततः ।
तत्रागमद्वासुदेवो वनमाली हलायुधः ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यो युयुधानश्च सात्यकिः ॥ २० ॥

जब सब राजा लोग अपने अपने डेरोंमें चले गये तब महाराज युधिष्ठिरसे मिलनेके लिए वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, हलधारी बलदेव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, युयुधान, सात्यकि ॥ २० ॥

अनाधृष्टिस्तथाक्रूरः साम्बो निशठ एव च ।
अभिमन्युमुपादाय सह मात्रा परन्तपाः ॥ २१ ॥

अनाधृष्टि अक्रूर, साम्ब और निशठ आदि सभी शत्रुनाशी यादव अभिमन्युको उसकी माता सुभद्राके साथ लेकर आए ॥ २१ ॥

इन्द्रसेनादयश्चैव रथैस्तैः सुसमाहितैः ।
आययुः सहिताः सर्वे परिसंवत्सरोषिताः ॥ २२ ॥

उसी समय इन्द्रसेन आदि पाण्डवोंके पाँचों सारथी एक वर्ष तक पाण्डवोंसे अलग रहनेके बाद रथ लेकर विराट नगरमें पहुंचे ॥ २२ ॥

दश नागसहस्राणि हयानां च दशायुतम् ।
रथानामर्बुदं पूर्णं निखर्वं च पदातिनाम् ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णके साथ दस सहस्र हाथी, एकलाख घोडे, अर्बुद रथ और पूरे एक खर्व पैदल थे ॥२३॥

वृष्ण्यन्धकाश्च बहवो भोजाश्च परमौजसः ।
अन्वयुर्वृष्णिशार्दूलं वासुदेवं महाद्युतिम् ॥ २४ ॥

महातेजस्वी वृष्णिश्रेष्ठ श्रीकृष्णके पीछे अनेक वृष्णि, अन्धक और महावीर भोजवंशी क्षत्रिय भी आये थे ॥ २४ ॥

पारिबर्हं ददौ कृष्णः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
स्त्रियो रत्नानि वासांसि पृथक्पृथगनेकशः
ततो विवाहो विधिवद्ववृते मत्स्यपार्थयोः । ॥ २५ ॥

श्रीकृष्णने महात्मा पाण्डवोंको अलग अलग रूपसे अनेकों तरहके रत्न और उत्तम उत्तम वस्त्र उपहारमें दिये। तब मत्स्यों और पाण्डवोंका यथाविधि विवाहसंस्कार प्रारम्भ हुआ ॥ २५ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च गोमुखाडम्बरास्तथा ।
पार्थैः संयुज्यमानस्य नेदुर्मत्स्यस्य वेश्मनि ॥ २६ ॥

मत्स्यराजके पाण्डवोंसे सम्बन्ध स्थापित करते समय विराटके महलोंमें शंख, नगाडे और गोमुख बजने लगे ॥ २६ ॥

उच्चावचान्मृगाञ्जघ्नुर्मेध्यांश्च शतशः पशून् ।
सुरामैरेयपानानि प्रभूतान्यभ्यहारयन् ॥ २७ ॥

भोजन बनानेवाले अनेक प्रकारके हरिन आदि खाने योग्य पशुओंका मांस पकाने लगे। राजा विराटने सब राजाओंके डेरोंमें अनेक प्रकारकी मदिरा भेज दी ॥ २७ ॥

गायनाख्यानशीलाश्च नटा वैतालिकास्तथा ।
स्तुवन्तस्तानुपातिष्ठन्सूताश्च सह मागधैः ॥ २८ ॥

विवाहका समाचार सुनकर अनेक देशोंसे नाचने गानेवाले और स्तुति करते हुए भाट लोग आये ॥ २८ ॥

सुदेष्णां च पुरस्कृत्य मत्स्यानां च वरस्त्रियः ।
आजग्मुश्चारुसर्वाङ्ग्यः सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ २९ ॥

राजा विराटकी सब रूपवती स्त्रियां कुण्डल आदि आभूषण पहनके सुदेष्णाके सहित उस स्थानमें बैठीं, जहां विवाह हो रहा था ॥ २९ ॥

वर्णोपपन्नास्ता नार्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः ।
सर्वाश्चाभ्यभवत्कृष्णा रूपेण यशसा श्रिया ॥ ३० ॥

उन सब रूपसम्पन्न और सदलङ्कृत तरुण स्त्रियोंको द्रौपदीने अपने रूप, यश और तेजसे दबा दिया ॥ ३० ॥

परिवार्योत्तरां तास्तु राजपुत्रीमलंकृताम् ।
सुतामिव महेन्द्रस्य पुरस्कृत्योपतस्थिरे ॥ ३१ ॥

वे सब स्त्रियां इन्द्रकी पुत्रीके समान उत्तराको आभूषण पहनाकर और उसे चारों ओरसे घेर कर ले आईं ॥ ३१ ॥

तां प्रत्यगृह्णात्कौन्तेयः सुतस्यार्थे धनंजयः ।
सौभद्रस्यानवद्याङ्गीं विराटतनयां तदा ॥ ३२ ॥

कुन्तीपुत्र अर्जुनने उस अनिन्दित अंगोंवाली विराटपुत्री उत्तराको सुभद्रासे उत्पन्न अपने पुत्र अभिमन्युके लिए स्वीकार किया ॥ ३२ ॥

तत्रातिष्ठन्महाराजो रूपमिन्द्रस्य धारयन् ।
स्नुषां तां प्रतिजग्राह कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३३ ॥

उन सब राजाओंके बीचमें महाराज युधिष्ठिरने इन्द्रके समान बैठकर उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार दिया ॥ ३३ ॥

प्रतिगृह्य च तां पार्थः पुरस्कृत्य जनार्दनम् ।
विवाहं कारयामास सौभद्रस्य महात्मनः ॥ ३४ ॥

महाराज युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी संमतिसे सुभद्रापुत्र महात्मा अभिमन्युका विवाह कराया ॥ ३४ ॥

तस्मै सप्त सहस्राणि हयानां वातरंहसाम् ।
द्वे च नागशते मुख्ये प्रादाद्बहु धनं तदा ॥ ३५ ॥

इस विवाहमें राजा विराटने महाराज युधिष्ठिरको वायुके समान शीघ्र चलनेवाले सात सहस्र घोडे, दो सौ मतवाले हाथी और बहुत सा धन दिया ॥ ३५ ॥

कृते विवाहे तु तदा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं यदुपाहरदच्युतः ॥ ३६ ॥

विवाह होनेके पश्चात् महाराज युधिष्ठिरने वह सब धन जो श्रीकृष्ण लाये थे, ब्राह्मणोंको दे दिया ॥ ३६ ॥

गोसहस्राणि रत्नानि वस्त्राणि विविधानि च ।
भूषणानि च मुख्यानि यानानि शयनानि च ॥ ३७ ॥

महाराजने सहस्रों गौ, रत्न अनेक प्रकारके वस्त्र, भूषण, सवारियां, बिस्तरे, स्वादु भोजन और अनेक प्रकारकी पीनेकी वस्तुयें दान कीं ॥ ३७ ॥

तन्महोत्सवसंकाशं हृष्टपुष्टजनावृतम् ।
नगरं मत्स्यराजस्य शुशुभे भरतर्षभ ॥ ३८ ॥

॥ इति श्रीमहाभारते विराटपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

॥ समाप्तं वैवाहिकपर्व ॥ १८२४ ॥

हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय ! महोत्सवसे युक्त, हृष्ट और पुष्ट मनुष्योंसे सम्पन्न मत्स्यराज विराटका वह नगर बहुत सुशोभित हुआ ॥ ३८ ॥

॥ महाभारतके विराटपर्वमें सडसठवां अध्याय समाप्त ॥ ६७ ॥

॥ वैवाहिकपर्व समाप्त ॥ १८२४ ॥

॥ विराटपर्व समाप्त ॥